धारा...97 ग्रन्थाङ्क ...310

परमात्मा गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

: पुण्य-स्मरण :

भीलूड़ा में दीर्घकालीन प्रवास व स्वाध्याय के उपलक्ष्य में

स्वप्रेरित अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्रीमती प्रतिभा ध.प. श्री अशोकजी टुकावत की पुत्रवधू श्रीमती उर्वशी ध.प. श्री हिमांक के शिक्षिका पद पर नियुक्ति के उपलक्ष्य में ग्राम भीलूड़ा, तह. सागवाड़ा, जिला डूंगरपुर (राज.)
2. प्रो. डॉ. पारसमलजी अग्रवाल, सेक्टर-3, उदयपुर (राज.)

ग्रन्थाङ्क-310 प्रतियाँ-500
संस्करण-प्रथम 2018 मूल्य-101/- रु.

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/ मो. 082337-34502
(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

वीतराग विज्ञान यथार्थ धर्म

वाग्वर अञ्चल के जैन-अजैन में सद्भावना युक्त भीलूड़ा ग्राम में प्रवासरत प.पू. स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुवर ससंघ निश्रा में आचार्यश्री के वैज्ञानिक शिष्यों ने विशेष आध्यात्मिक विज्ञान का बोध प्राप्त किया। प्रातःकालीन सत्र में आचार्य श्री ने क्वाण्टम, स्ट्रींग, प्रकाश सिद्धान्त, अनन्त सप्तभंगी, ज्ञान चेतना आदि बहुआयामी विषयों का समीक्षात्मक बोध देते हुए कहा कि विज्ञान सत्यपथ पर होते हुए अभी पूर्ण सत्य को प्राप्त नहीं किया है। गुरुदेव ने शाश्वतिक सत्य का ज्ञान देते हुए कहा कि वीतराग विज्ञान ही यथार्थ धर्म है।

माध्याह्निक सत्र में उपस्थित ग्राम व अञ्चल के भक्त-शिष्यों व वैज्ञानिक जनों ने भी गुरुदेव के प्रति श्रद्धा भक्तिभाव अभिव्यक्ति के माध्यम से गुरुदेव के आध्यात्मिक गुणों की पूजा प्रशंसा अनुमोदना की। क्वांटम मैकेनिक्स के वैज्ञानिक डॉ. पी.एम. अग्रवाल ने कहा कि गुरुदेव श्रीसंघ की पवित्र लक्ष्य युक्त उत्तम साधना आदर्श है एवं आपके अभी के साहित्य से अध्यात्म की गहराई मिल रही है। कृषि वैज्ञानिक डॉ. एस.एल. गोदावत ने आचार्य श्री को शान्त, उदार, अद्वितीय सन्तप्रवर बताते हुए आस्ट्रेलिया के सिडनी शहर में समयसार के स्वाध्याय का संस्मरण सुनाते हुए प्रभावी स्वरचित आध्यात्मिक कविता सुनाई, जिसे सुनकर आचार्य श्रीसंघ व श्रोता भाव विभोर हुए। वैज्ञानिक डॉ. एन.एल. कछारा ने विश्वधर्म संसद के शिखर सम्मेलन का संस्मरण सुनाया। उनकी स्व रचित कृति "Living System in Jainism" का विमोचन भी आचार्य श्रीसंघ के कर कमलों से हुआ। आचार्य श्री सृजित साहित्य के ग्रंथालय के कार्यभारकर्त्ता श्री छोटूलालजी चित्तौड़ा ने भी अपने भाव व्यक्त किए। अन्त में सभा को सम्बोधित करते हुए आचार्य श्री ने क्रान्तिकारी अध्यात्मबोध देते हुए कहा कि मैं स्वयं अमृत कलश हूँ, सम्पूर्ण धर्म-पञ्चपरमेष्ठी स्वयं में स्थित है, शक्ति की अभिव्यक्ति होने पर शाश्वत सुख प्राप्त होता है। गुरुदेव ने बताया जो स्व-आत्मा को नहीं जानते ऐसे न्यायाधीश, दार्शनिक, वैज्ञानिक का भी आध्यात्मिक आयाम वृक्ष कीट पतंग जैसा ही है। गुरुदेव ने कहा कि स्वउद्धार से परउद्धार भी सहज होता है। उपस्थित भव्य जीवों को आशीर्वाद देते हुए कहा कि आपकी भावना-भक्ति-शक्ति उत्तरोत्तर वृद्धि हो, शाश्वत आनन्द प्राप्त हो, ऐसी मंगल भावना करता हूँ।

– श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

हे! आत्मज्ञानी कनक गुरुवर मुझे भी आत्मज्ञान दो!

(चाल : हे वीर तुम्हारे चरणों में एक दर्श...) कवयित्री-बा.ब्र. पल्लवी भगिनी

हे! कनक गुरु तव चरणों में, मैं शत-शत वन्दन करता हूँ।
भव भ्रमणमिटाने हेतु, सत्-पथ दिखाया हे! यतिवर।।
अनादि काल से मैं भटक रहा हूँ चौरासी लक्ष योनि में।
पंचपरावर्तन कर रही हूँ चतुर्गति रूपघनघोर वन में।
मोह माया की परतंत्रता में निज का बोध नहीं पाया।
कषायों के वशीभूत होकर, अनन्त कर्मों का आस्रव किया।। (1)
कभी एक बार न चिन्तन किया, मैं कौन हूँ कहाँ से आया।
कहाँ जाना है क्या करना है लक्ष्य क्या है कैसे पाना है।
पर चिन्तन पर निन्दा में ही व्यर्थ गँवाया जीवन को।
दुर्लभ मनुष्य पर्याय का मूल्य नहीं समझ पाया।। (2)
अब तक मैंने आत्म पतन का ही कार्य किया बहु चाव से।
विभाव भाव में ही रहकर संकल्प-विकल्प-संक्लेश किया।
अनात्म क्रिया को ही करके, स्व की हत्या स्वयं किया।
अब ऐसी गलती मैं नहीं करूँ आत्म उन्नति सतत करूँ।। (3)
हे! गुरुवर मुझे नव जन्म दिया, स्वयं का बोध कराया।
बहिरात्मा से परमात्मा बनने हेतु, मार्ग मेरा प्रशस्त किया।
हे! महाउपकारी आध्यात्म योगी, तव चरण शरण में आया हूँ।
तव चरण शरण में रहकर ही, ज्ञान चेतना को पाऊँ।। 4)
तेरी दिव्य देशना ने मेरी अन्तःचेतना को जगाया है।
तव वाणी से 'अमृत' का उपदेश अति आनंदित करता है।
जो भी आते तब निश्रा में 'स्व' का बोध करते है।
बाह्य प्रपंच को त्यजकर, 'आत्मा' में ही रम जाते है।। (5)
गुरुदेव आप हो महाविज्ञानी मुझे भी बना दो सद्ज्ञानी।
भेद-विज्ञान का रहस्य बताकर मुझे भी बनाओ सुदृष्टि।
हे! गुरुवर आप हो महा दार्शनिक मुझे भी स्व-दर्शन कराओ।
'स्व' का दर्शन मैं भी करूँ स्वयं में स्वयं को ही पाऊँ।। (6)

नन्दौड़, दि. 16/9/2018, मध्याह्न 1.20

आचार्य कनकनन्दी का व्यापक रूप

(चाल :- चलो दिलदार चलो...) रचयित्री-मधुबाला जैन (भूतपूर्व शिक्षिका)

चलो नन्दौड़ चलो...गुरु के पास चलो, पाद प्रक्षालन करो...पूजा भक्ति भी करो
गुरुवर को आहार दो...गुरु की सेवा करो, वैयावृत्ति करो...गुरु की आरती करो (ध्रुव) ।।

गुरुमूल धर्म है...गुरु मूल ग्रन्थ है, गुरु मूल मन्त्र है...गुरु अरिहन्त है।
गुरु से उर्जा मिले...गुरु से शक्ति मिले, गुरु की भक्ति करो...गुरु से ज्ञान मिले।। (1) चलो नन्दौड़...

महावीर का सन्देश गुरु...राग-द्वेष मिटाते गुरु, भक्तों का विश्वास गुरु...दिव्य प्रकाश गुरु
गुरु बिन ज्ञान नहीं...गुरु बिन ध्यान नहीं, गुरु के पास चलो...कर्म निर्जरा करो।। (2) चलो नन्दौड़...

गुरु स्वाध्याय कराते...मन में विश्वास जगाते, मैं का बोध कराते...मुझे मुझसे मिलाते।
मैंने स्वाध्याय किया...मेरा मन खूब खिला, गुरु प्रवचनसार...गुरु रयणसार।। (3) चलो नन्दौड़...

गुरु समयसार...गुरु नियमसार, गुरु की भक्ति करो...गुरु से नाता जोड़ो।
गुरु मेरी नैया को...उस पार ले चलो, भव से पार करो...पार उतार दो।। (4) चलो नन्दौड़...

गुरु ही ज्ञान है...गुरु ही ध्यान है, गुरु परिणाम है...गुरु सम्मान है।
गुरु स्वाध्याय है...गुरु अध्याय है, गुरु प्राचार्य है...गुरु आचार्य है।। (5) चलो नन्दौड़ ...

गुरु सन्देश है...गुरु उपदेश है, गुरु आदेश है...गुरु परमेश है।। (6) चलो नन्दौड़

आचार्य श्री कनकनन्दी ससंघ के द्वितीय बार नन्दौड़ चातुर्मास की महत्ता

(चाल : मेरी बहु है रानी है...) रचयिता-मधुबाला जैन (भूतपूर्व शिक्षिका)

नन्दौड़ ग्राम अति प्यारा रे, प्यारा रे,
नन्दादेवी ने सबको बता दिया...2
पर्यावरण प्रदूषण रहित है, वातावरण अति सुहाना है...नन्दौड़...(ध्रुव)
कई संघों में मैंने जाकर देखा, जाकर देखा, मैंने अनुभव किया।
कनक स्वाध्याय पद्धति निराली है, प्रश्नोत्तर वाली है।। (1) नन्दौड़ ग्राम...

कई संघों में मैंने जाकर देखा, जाकर मैंने आहार भी दिया।
गुरुवर की आहारचर्या वैज्ञानिक है...2।।(2) नन्दौड़ ग्राम...

कई संघों में मैंने जाकर देखा, जाकर देखा मैंने अनुभव किया।
सूरीवर अनुशासन प्रिय है...2।। (3) नन्दौड़ ग्राम...

आचार्य कनकनन्दी श्रीसंघ में मुझे आना है

(चाल : तुम दिल की धड़कन...) रचयिता-अक्षत जैन (कक्षा-VI)
(2015 व 2018 के चातुर्मास कर्त्ता)

कनक गुरु मेरे दिल में...मन मन्दिर में रहते हो।
जब से आपका साथ मिला...तब से मुझको ज्ञान मिला।। (ध्रुव)
ऐसे महान् गुरु को...नमन बारम्बार हो...
ज्ञान-ध्यान से चारित्र...महान् हुआ आपका है...(1) कनक गुरु...

छोटी सी उमर में...त्याग दिए संसार को...
बालज्ञानी बन गए...ज्ञान की पूजा होती है...(2) कनक गुरु...

आपके उपकार से...मेरा जीव धन्य हुआ...
आपके श्रीसंघ में...सुलझने हेतु आना है...(3) कनक गुरु...
नन्दौड़ दि. 11.09.2018

आत्म बोध दाता गुरु कनकनन्दी

(चाल : आवाज दो हमको) रचयित्री - दृष्टि जैन
(2015 एवं 2018 के चातुर्मास परिवार)

''कनक गुरु'' के दर्शन से मन खिल गया
अज्ञान भी अब दूर हो गया
ज्ञान की गंगा बही स्वाध्याय भी हो रहा ... (स्थायी)
आप की कविता जो भी सुने
'मैं' का बोध वो ही जाने
पाना चाहो आत्मा का ज्ञान स्वाध्याय में वो आए, 'कनक गुरु'...(1)

'गुरुदेव' की चर्या जो भी जाने
वो भी 'गुरुदेव' को अपना माने
स्वाध्याय आरती मैं भी आना सीख ले 'कनक गुरु'...(2)

आत्मा को जानने की बस आश थी
'गुरुदेव' का ज्ञान पाने की अभिलाष थी
'गुरुकृपा' के कारण देखो ज्ञान को है पा लिया, 'कनक गुरु'...(3)

नन्दौड़ दि. 10.9.2018 समय मध्याह्न 1:55

You are God & Teacher

(चाल : तू ही दाता...तू ही विधाता...) Chayan Jain (Class V)

You are god of chayan, you are teacher of chayan.
You dont't believe in the money,
You believe in the soul. You are... (1)
In the morning and evening, I pray you kanak guruvar
You have knowldge of everything,
I have no knowledge of anything. You are... (2)
In all over world kanak, is the best preacher,
I don't have knowledge of I, you have knowlege of I.
You are... (3)

Nandor, 22:9:2018, 5:25 A.M.

क्षु.श्री श्रेयांसश्री माताजी के चरणों में विनयांजलि

'कनक गुरु' की शरण गही, किया आतम उद्धार।
तेरी श्रद्धा भक्ति को, वन्दन बारम्बार।।1।।

क्षमा विनय उर में धरे, तजा लोभ अरू मान।
संयम पथ पर चल पड़े, बढ़ा आत्म सम्मान।।2।।

सहज-सरलता की धनी, अद्भुत साहस दिखाय।
चिरकाल तक बना रहे, श्रेयांसश्री शुभ नाम।। 3।।

पावन चरण नित ध्यायें हम, सुमन माल बनाय।
आशीष मुझ पर रहे सदा, मम जीवन सफल बनाय।। 4।।

गुरु आज्ञा उर में धरी, अटूट श्रद्धा दर्शाय।
महागुरु (कनक गुरु) की शरण में, उत्तम समाधि पाय।। 5।।

आपकी चरणानुरागी
दीपिका - नगीन शाह ग. पु. कॉलोनी, सागवाड़ा

कनक गुरु भक्त मेरे प्रवीण दादा

(चाल : ऐ मेरे वतन के लोगों...) रचयिता-बालकवि कुमार अक्षत जैन
कक्षा छठवी

कुशलगढ़ में जन्मे... सागवाड़ा में समाधि पाए...
मेरे प्रवीण दादा...नन्दौड़ ग्राम आए... जय हो कनक गुरु की...2 (ध्रुव)
अक्षत-चयन के दादा...तन्मयी-दीक्षा के भी दादा...
हम सबको संस्कार दिया...गुरुदेव की भक्ति का...2
बहु चौमासा करवाकर...शुभ पुण्य लाभ किया... मेरे प्रवीण दादा...(1)

नन्दादेवी मेरी दादी...श्रद्धा दृढ़ता की मूरत...
देव शास्त्र गुरु की...भक्ति में बिताए जीवन...2
उनकी लगन से हम सब...आनन्दित शाह परिवार... मेरे प्रवीण दादा...(2)

नन्दौड़, दिनांक 15.09.18, प्रातः 04:30

आरती श्री वैज्ञानिक कनक गुरु की...!

(चाल : ॐ जय जगदीश हरे...) रचयिता-चयन जैन

(2015 व 2018 के चातुर्मासकर्त्ता)

ॐ जय कनक गुरु, स्वामी जय कनक गुरु...
भक्त जनों को ज्ञान...2, क्षण में दीजिए...स्वामी जय कनक...
हम ज्ञान पाए...अज्ञान मिटाए, आशीष ऐसा दो...स्वामी...आशीष
ज्ञान-विज्ञान युक्त-2 ध्यानी बन जाए... ॐ जय...(1)

माता-पिता तुम मेरे, शरण में ले लो ना...स्वामी शरण...
तुम बिन और न मिला...2 ज्ञाता जग में प्रभु... ॐ जय...(2)

तुम ही मेरे परमात्मा...तुम ही अन्तर्यामी...स्वामी तुम...
आपके पिता महावीर...2 माता जिनवाणी... ॐ जय...(3)

हम शिष्य है आप गुरु हो...विज्ञानी बनाओ...स्वामी विज्ञानी
वैज्ञानिक बनना ही लक्ष्य...2 'चयन' के हैं गुरु...जय...(4)

कनक गुरु मुझे 'मैं' का ज्ञान दो!

(चाल : जिंदगी एक सफर है सुहाना...) रचयिता-बालकवि कुमार अक्षत जैन

कक्षा छठवी

कनक गुरु मुझे दो मैं का ज्ञान...आप हो विश्व के वैज्ञानिक...
ज्ञानी...ज्ञानी...ज्ञानी...ज्ञानी गुरुवर जानी...2...(ध्रुव)...
चाँद-तारों को...जाना है आपने...
इसलिए बने हो नंबर 1...कनक गुरु मुझे दो...2...(1)...

पाँच प्रकार के स्वाध्याय को...छोड़कर रखते हो आप मौन...
आपके पास होता ज्ञान...कनक गुरु मुझे दो...2...(2)...

आपके चरण जहाँ पड़े...वो धरती हो पावन...
तुमही हो सभी के सहारे...कनक गुरु मुझे दो...2...(3)...

नन्दौड़, दि. 16-09-18 प्रातः 10:25

देखी वो एक ज्ञानी है

(चाल : बम-बम बोले...) रचयिता-चयन जैन

देखो-देखो वो एक ज्ञानी है, हम तो देखो अज्ञानी है।
भला ये दुनिया क्यों मानती नहीं, चाहे जो भी हो हम तो मानेंगे कनक
भला ये दुनिया क्यों मानती नहीं...(स्थायी)
ओऽऽऽ सब से तो ज्ञानी है, फिर भी गर्व कभी ना करते...
हमने देखे हैं कई ज्ञानी, लेकिन आप जैसा ना ज्ञानी है... देखो-देखो...(1)
आप जैसा कहे वैसा ही हम करे, हमको शरण में ले लो...
ओऽऽऽ4...जय-जय गुरु कनक गुरुवर...। देखो-देखो...(2)
बताओ की कोई ज्ञानी क्या, किसी को 'मैं'/(आत्मा) का अर्थ समझाए...
कनक गुरु बहुत ज्ञानी है, इनका कभी भी विरोध न करना/देखो...(3)

नन्दौड़, दिनांक 16-9-18, प्रातः 10.25

कोई कितना भी न क्यूँ कर ले कनकनन्दी हो नहीं सकता

(चाल : कोई दिवाना कहता है) रचयिता-यथार्थ मेहता

कक्षा-सातवीं

साधु संत होते हैं सभी ज्ञानी नहीं होते।
कितने लोग होते हैं पर सभी गुरु न होते हैं।।
कोई होता नहीं जो हमारे कनकनन्दी जी गुरु।
कोई कितना भी न क्यूँ कर ले कनकनन्दी हो नहीं सकता।।
ज्ञानी संत साधु हैं, वैज्ञानिक भी होते है।
आते है और जाते है, वो साधु संत रहते है।।
कोई ज्ञानी भी होता है, सर्वश्रेष्ठ भी होता है।
कोई कितना भी न क्यूँ कर ले कनकनन्दी हो नहीं सकता।।
महावीर और ज्ञाता सब होते ज्ञानी-विज्ञानी।
त्याग देते हैं सब कुछ और होते हैं वो स्वाभिमानी।।
पर्वत है बहुत विशाल वैसे इरादे भी होते हैं।
कोई कितना भी न क्यूँ कर ले कनकनन्दी हो नहीं सकता।।

दिनांक : 18-9-18 समय 4.27 सायं

द्वय सुसमाधि व जैन धर्म प्रभावना

वाग्वर अञ्चल के पुण्यशाली-प्रभावशाली लघु ग्राम नन्दौड़ में चातुर्मासरत सन्तप्रवर वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुवर श्रीसंघ निश्रा में निस्पृह-निराडम्बर-आध्यात्मिक-द्वितीय चातुर्मास में सेवा-समन्वय वैयावृत्ति-समाधि-चतुर्विध दान व जैनधर्म को जनधर्म बनाने हेतु वैश्विक अभियान-साहित्य सृजन व ज्ञान-विज्ञान की वैश्विक प्रभावना की दृष्टि से अनेकों उपलब्धियाँ प्राप्त कर चतुर्विध संघ आह्लादित व उल्लसित हो रहा है।

कलिकाल श्रेयांस स्व.श्री प्रवीणचन्द्र शाह का संन्यास पूर्वक समाधिमरण व पर्यूषण पर्व की ऋषि पञ्चमी के शुभ दिन संघस्था क्षुल्लिका श्री श्रेयांसश्री माताजी की निराडम्बर समाधि को देखकर चतुर्विध संघ व अञ्चल के जन-गण-मन अति आनन्दित व प्रभावित हुए। शुभ भावों से भावित ब्र. खुशपाल जी शाह परिवार ने आचार्य श्री संघ के प्रति अपनी उत्कट भक्ति-भावना-समर्पण-सहयोग-दान आदि के माध्यम से आध्यात्मिक भावाभिव्यक्ति की। इस अवसर पर आचार्यश्री ने उपस्थित श्रद्धालु जनों को समाधि का यथार्थ स्वरूप बताया, जिसे सुनकर सर्वजन हर्षविभोर हुए। इस सन्धि में गुरुदेव द्वारा सृजित ग्रन्थ 1. आत्मा का विश्वरूप गीताञ्जली धारा...85, ग्रंथांक-298 व 2. स्व-धर्म-सुधर्म गीताञ्जली धारा...86, ग्रंथांक 299 का विमोचन स्वैच्छिक ज्ञानदानियों द्वारा हुआ।

वैश्विक ज्ञान-प्रभावना की शृंखला में अलीगढ़ के रिलीजन रिसर्च फाउण्डेशन से पधारे द्वय वैज्ञानिक विचारक श्री राजेन्द्रसिंह व अनूपकुमार शर्मा भी पधारे व उन्होंने आचार्य श्री से चर्चा-वार्ता कर व्यापक मार्गदर्शन प्राप्त किया व सत्य-तथ्यात्मक जैनधर्म को जनधर्म बनाने का भाव व लक्ष्य प्रस्तुत किया। आचार्यश्री के विराट व्यक्तित्व-कृतित्व व बहुविधायी आध्यात्मिक वैश्विक ज्ञान-विज्ञान से प्रभावित व आह्लादित होकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जैनधर्म के वैज्ञानिक उदार-प्रगतिशील व सत्य पक्ष का प्रचार-प्रसार अभियान आगे बढ़ाने हेतु संकल्प लिया। आचार्यश्री ने दोनों वैज्ञानिकों को स्वरचित शोधपूर्ण (प्रायः 200) साहित्य आदि प्रदान कर प्रोत्साहन सह शुभाशीर्वाद दिया। आचार्य श्री संघ द्वारा द्वय वैज्ञानिक विचारक द्वारा सृजित कृति ''णमोकार महामन्त्र और विज्ञान'' का विमोचन किया गया।

शुभ भावना सह=**श्रमण मुनि सुविज्ञसागर**

विषयाणुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ.क्र.
(1)	वीतराग विज्ञान यथार्थ धर्म	2
(2)	हे! आत्मज्ञानी कनक गुरुवर मुझे भी आत्मज्ञान दो!	3
(3)	आचार्य कनकनन्दी का व्यापक रूप	4
(4)	आचार्य श्री कनकनन्दी ससंघ के द्वितीय बार नन्दौड़ चातुर्मास की महत्ता	5
(5)	आचार्य कनकनन्दी श्रीसंघ में मुझे आना है!	5
(6)	आत्मबोध दाता गुरु कनकनन्दी	6
(7)	You are God & Teacher	6
(8)	क्षु.श्री. श्रेयांसश्री माताजी के चरणों में विनयांजलि।	7
(9)	कनक गुरु भक्त मेरे प्रवीण दादा	7
(10)	आरती श्री वैज्ञानिक कनक गुरु की...!	8
(11)	कनक गुरु मुझे ''मैं'' का ज्ञान दो!	8
(12)	देखो वो एक ज्ञानी हैं!	9
(13)	कोई कितना भी न क्यूँ कर ले कनकनन्दी हो नहीं सकता!	9
(14)	द्वय सुसमाधि व जैनधर्म प्रभावना!	10

परमात्मा गीताञ्जली

(1)	आत्मउपलब्धि हेतु शीघ्रता करो।	13
(2)	स्व (मैं) की उपलब्धि सबसे श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-क्लिष्ट	20
(3)	मैं चैतन्य हूँ जड़ न बनता	25
(4)	मेरा भाव ही मेरा स्वरूप	34
(5)	कर्मफलचेतना < कर्मचेतना < ज्ञानचेतना (अन्तःचेतना-स्वचेतना)	35
(6)	मैं हूँ नित्य नूतन-नित्य पुरातन शाश्वत आत्मा	52
(7)	ज्ञान चेतना (अतिचेतना) वृद्धि हेतु मेरी साधना	61

(8) मैं स्व-स्वभाव को त्याग सकता नहीं 73
(9) मेरा विश्वरूप 84
(10) मैं ही मेरा कर्त्ता-भोक्ता अन्य का नहीं 90
(11) भगवान् की शक्ति की उपलब्धि 97
(12) मैं बनूँगा आत्मा से परमात्मा 111
(13) मैं पॉजिटिव थिंकिंग को बढ़ा रहा हूँ 129
(14) अनावश्यक पापों से बचकर विजयी (अमृत) बनूँ 130
(15) त्याग से दुर्गुण त्याग की शिक्षा मैं लहूँ 140
(16) मेरी अलौकिक वृत्ति व आध्यात्मिक प्रवृत्ति 159
(17) मोहात्मक ''मैं''-''मेरा'' व आध्यात्मिक ''मैं'' ''मेरा'' 168

Aacharya Kanaknandiji Gurudev is A Great Intellectual

Pokharna
(Senior Scientist of ISRO)

Dear Hitansji, Jai Jinendra

Thanks a lot for this email. Kindly convey my charansparsh with vandan of Tikhutto to Aacharya Bhagwan. I had this darshan in 2013 but could not meet him later. But I remember him daily as his picture is there with me. I have very high regards for him. I know that he is a great intellectual and close to Tirthankaras.

Kindly inform him that we in Ahmedabad have started a 'Science-and Spirituality Research Institute' for taking up such projects with more focus in Jainism. Kindly request him to give his blessing to us.

We would shortly purchase some of his books. Kindly send us phone number of the contact person who is in regular contact with him so that we can talk to him also. Also send us the name of the publisher who can provided these books to us.

*Best regards – **Pokharna** (Senior Scientist of ISRO)*

परमात्मा गीताञ्जली

आत्मउपलब्धि हेतु शीघ्रता करो!

(चाल :- चलो दिलदार चलो...) -आचार्य कनकनन्दी

चलो आओ शीघ्र करो...गुरु के पास चलो...
आत्मा का ज्ञान करो...राग-द्वेष-मोह छोड़ो।। (ध्रुव)
अनादि काल से भी...न हुआ यह काम।
संसार का हर काम...हुआ अनन्तानन्त।
चौरासी लक्ष्य योनि...चतुर्गति में जन्म।
पंचपरिवर्तन हुए...भोगा अनन्त दुःख।। चलो...(1)
हुआ नहीं एक काम...आत्मा का ज्ञान-भान।
स्वयं की ही उपलब्धि...नहीं हुई एक बार।।
अभी करो यह काम...बनोगे हे ! भगवान।
कृतकृत्य सदासुखी...न बनोगे कभी दुःखी।। चलो...(2)
यही एक काम तेरा...होगा ही तेरे द्वारा।
आध्यात्म गुरु ही सहारा...रागी-द्वेषी न सहारा।।
धन-जन-मान-नाम...ढोंग-पाखण्ड काम।
ख्याति-पूजा-लाभ-लोभ...न आयेंगे तेरे काम।। चलो...(3)
ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा छोड़ो...मोह-माया-काम छोड़ो।
पर चिन्ता द्वन्द्व त्यागो... संक्लेश-शंका छोड़ो।।
आत्मज्ञान-ध्यान करो...समता-शान्ति वरो।
आत्म उपलब्धि करो...'कनक' स्व को वरो/(स्वतंत्र बनो)।। चलो...(4)

नन्दौड़ दि. 23.09.2018 रात्रि 07:58 (पर्युषण पर्व)

सन्दर्भ-

बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा

स्कन्ध, अंडर, आवास, पुलवि और शरीरों में स्कन्धों की संख्या असंख्यात लोकमात्र हैं। एक-एक स्कन्ध में असंख्यात लोकमात्र अंडर हैं। एक-एक अंडर में

असंख्यात लोक प्रमाण आवास है। एक-एक आवास में असंख्यात लोक प्रमाण पुलवि है। एक-एक पुलवि में असंख्यात लोक प्रमाण शरीर हैं और एक-एक निगोद शरीर में समस्त-अतीत काल में होने वाले सिद्धों से अनन्तगुणे जीव है। यह विषय अन्य ग्रन्थों में भी (गोम्मटसार में) लिखा है।

एयणिओयसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेहिं वितीद कालेहिं।।

''एक निगोद शरीर में द्रव्य प्रमाण से जीवों की संख्या समस्त व्यतीत काल के सिद्धों से अनन्त गुणी है।''

इस प्रकार यह समस्त लोक स्थावर जीवों से सदा भरा रहता है। जिस प्रकार बालु के समुद्र में पड़े हुए हीरे के कणों का मिलना अत्यन्त कठिन है। उसी प्रकार इन स्थावर जीवों में से त्रस पर्याय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। त्रस पर्याय में भी विकलेन्द्रियों की संख्या बहुत है इसीलिए जिस प्रकार गुणों में कृतज्ञता अत्यन्त कठिनता से मिलती है उसी प्रकार त्रसों में पंचेन्द्रिय होना अत्यन्त कठिन है। पंचेन्द्रियों में भी पशु, हिरण, पक्षी, साँप आदि तिर्यंचों की संख्या बहुत है इसीलिये जिस प्रकार किसी चौराहे पर (चौरास्ते पर) रत्नों की राशि मिलना कठिन है ? उसी प्रकार पंचेन्द्रियों में मनुष्य भव प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। यदि मनुष्य जन्म मिलकर नष्ट हो गया तो जिस प्रकार जिसकी लकड़ी जड़ आदि सब जला दी गई है ऐसा वृक्ष फिर से नहीं उग सकता उसी प्रकार मनुष्य जन्म फिर से मिलना अत्यन्त कठिन है। कदाचित् दुबारा मनुष्य जन्म मिल भी जाय तो जिन्हें हिताहित का कुछ विचार नहीं है और जो मनुष्यों का आकार धारण करने वाले पशुओं के समान है, ऐसे कुछ देशों में रहने वाले म्लेच्छों की संख्या बहुत है। इसीलिये जिस प्रकार मणि का मिलना सुलभ नहीं है उसी प्रकार किसी सुप्रदेशों में उत्पन्न होना भी सुलभ नहीं है। कदाचित् सुप्रदेश में भी मनुष्य जन्म प्राप्त हो जाये तो भी यह लोक प्रायः पापकर्म करने वाले जीवों के समूहों से भरा हुआ है इसलिये जिस प्रकार वृद्धों की सेवा न करने वाले के विनय का प्राप्त होना कठिन है उसी प्रकार अच्छे कुल में जन्म लेना बहुत कठिन है। अच्छा कुल मिलने पर भी प्रायः जीवों की शील ही विनय आचार संपदा देने वाली होती है। यदि कदाचित् कुल संपदा आदि प्राप्त हो भी जाये तो दीर्घ आयु इन्द्रिय, बल,रूप, और नीरोगता आदि प्राप्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। उन समस्त सहयोग के प्राप्त होने पर भी

यदि सद्धर्म धारण करने का लाभ न हो तो जिस प्रकार बिना नेत्रों के मुखमंडल व्यर्थ है उसी प्रकार उसका मनुष्य जन्म लेना भी व्यर्थ है। यदि वही अत्यंत दुर्लभ सद्धर्म जिस-तिस तरह से प्राप्त हो जाये और फिर भी वह जीव विषय सुख में निमग्न रहे तो जिस प्रकार केवल भस्म के लिये चंदन जलाना व्यर्थ है उसी प्रकार उसका सद्धर्म प्राप्त होना भी निष्फल है। जो विषय सुखों से विरक्त हो गया है उसके लिये भी तपश्चरण की भावना धर्म की प्रभावना और सुख-मरण अर्थात् समाधिमरण रूप समाधि वा ध्यान की प्राप्ति होना अत्यंत कठिन है। इन सब सामग्री के मिल जाने पर ही रत्नत्रय प्राप्त हो जाना ही सफल गिना जाता है। इस प्रकार चिन्तवन करना बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा है। इस प्रकार इसके चिंतवन करने से रत्नत्रय को पाकर फिर कभी प्रमाद नहीं होता है।

दुरन्तरितारातिपीड़ितस्य प्रतिक्षणम्।
कृच्छ्रान्नरकपातालतलाज्जीवस्य निर्गमः।।(178) (ज्ञानार्णव)

बुरा है अन्त, जिसके ऐसा पाप रूपी बैरी से निरन्तर पीड़ित इस जीव का प्रथम तो नरकों के नीचे निगोद स्थान है, जो वहाँ की नित्यनिगोद से निकलना अत्यन्त कठिन है।

तरमाद्यदि विनिश्कान्तः स्थावरेषु प्रजायते।
त्रसत्वमथवाप्रोति प्राणी केनापि कर्मणा।। (179)

उस नित्य निगोद से निकला तो फिर पृथ्वीकायादि स्थावर जीवों में उपजता है और किसी पुण्य कर्म के उदय से स्थावरकाय से त्रसगति पाता है।

यतपर्याप्तस्तथा संज्ञी पंचाक्षोऽवयवान्वितः।
तिर्यक्ष्वपि भवत्यंगी तत्र स्वल्पाशुभक्षयात्।। (180)

कदाचित् त्रसगति भी पावे, तो तिर्यंच योनि में पर्याप्तता (पूर्णावयव संयुक्तत्व) पाना कुछ न्यून पाप के क्षय से नहीं होता है अर्थात् बहुत पाप क्षय होने पर पाता है। उसमें भी मन सहित पञ्चेन्द्रिय पशु का शरीर पाना बहुत ही दुर्लभ है। उस पर भी सम्पूर्ण अवयव पाना अतिशय दुर्लभ है।

नरत्वं यद्गुणोपेतं देशजात्यादिलक्षितम्।
प्राणिनः प्राप्नुवन्तयत्र तन्मन्ये कर्मलाघवात्।। (181)

आचार्य महाराज कहते हैं कि ये प्राणीगण संसार में मनुष्यपन और उसमें

गुणसहितपना तथा उत्तम देश, जाति, कुल आदि उत्तरोत्तर कर्मों के क्षय से पाते हैं। ये बहुत दुर्लभ हैं, ऐसा मैं मानता हूँ।

आयुः सर्वाक्षसामग्री बुद्धिः साध्वी प्रशान्तता।
यत्स्यात्तकाकतालीयं मनुश्यत्वेऽपि देहिनाम्।। (182)

जीवों के देश, जाति, कुलादि सहित मनुष्यपन होते भी दीर्घायु पाँचों इन्द्रियों की पूर्ण सामग्री, विशिष्ट तथा उत्तम बुद्धि , शीतल मंदकषाय परिणाम का होना काकतालीय न्याय के समान दुर्लभ जानना चाहिये। जैसे, किसी समय ताल का फल पककर गिरे और उसी समय काक का आना हो एवं वह उस फल को आकाश में ही पाकर खाने लगे। ऐसा योग मिलना अत्यन्त कठिन है।

ततो निर्विशयं चेतो यमप्रशमवासितम्।
यदि स्यात्पुण्ययोगेन न पुनस्तत्त्वनिश्चयः।। (183)

कदाचित् पुण्य के योग से उक्त सामग्री प्राप्त हो जावे तो विषयों से विरक्त वा व्रतरूप परिणाम तथा यम-प्रशमरूप शुद्ध भावों सहित चित्त का होना बड़ा कठिन है। कदाचित् पुण्य के योग से इनकी प्राप्ति हो जाये, तो तत्त्वनिर्णय होना अत्यन्त दुर्लभ है।

अत्यंतदुर्लभेश्वेशु दैवाल्लब्धेश्वपि क्वचित्।
प्रमादात्प्रच्यवन्तेऽत्र केचित्कामार्थलालसाः।। (184)

यद्यपि पूर्वोक्त सामग्री अत्यन्त दुर्लभ है तथापि यदि दैवयोग से प्राप्त हो जाये तो अनेक संसारी जीव प्रमाद के वशीभूत हो, काम और अर्थ में लुब्ध होकर सम्यक्मार्ग से च्युत हो जाते हैं और विषय कषाय में लग जाते हैं।

मार्गमासाद्य केचिच्च सम्यग्रत्नत्रयात्मकम्।
त्यजन्ति गुरुमिथ्यात्वविशव्यामूढचेतसः।। (185)

कोई-कोई सम्यक् रत्नत्रय मार्ग को पाकर भी तीव्र मिथ्यात्वरूप विष से व्यामूढ़ चित्त होते हुए सम्यग्मार्ग को छोड़ देते हैं। गृहीत-मिथ्यात्व बड़ा बलवान् है जो उत्तम मार्ग मिले तो भी छुड़ा देता है।

स्वयं नष्टो जनः कश्चित्कश्चिन्नश्टैश्च नाशितः।
कश्चित्प्रच्याव्यते मार्गच्चण्डपाशण्डशासनैः।। (186)

कोई-कोई तो सम्यग्मार्ग से आप ही नष्ट हो जाते हैं, कोई अन्य मार्ग से च्युत

हुये मनुष्यों के द्वारा नष्ट किये जाते हैं और कोई-कोई प्रचण्ड पाखण्डियों के उपदेश हुए मतों को पाकर मार्ग से च्युत हो जाते हैं।

त्यक्त्वा विवेकमाणिक्यं सर्वाभिसिद्धिदम्
अविचारितरम्येशु पक्षेश्वज्ञः प्रवर्तते।। (187)

जो मार्ग से च्युत अज्ञानी हैं, वह समस्त मनोवांछित सिद्धि के देने वाले विवेकरूपी चिन्तामणि रत्न को छोड़कर बिना विचार के रमणीक भासने वाले पक्षों में (मतों में) प्रवृत्ति करने लग जाता है।

अविचारितरम्याणि भासनान्यसतां जनैः।
अधमान्यपि सेवयन्ते जिह्वोपस्थादिदण्डितैः।। (188)

जो पुरुष जिह्वा तथा उपस्थादि इन्द्रियों से दण्डित हैं, वे अविचार से रमणीक भासने वाले दुष्टों के चलाये हुए अधम मतों का भी सेवन करते हैं। विषयकषाय क्या-क्या अनर्थ नहीं कराते ?

सुप्रापं न पुनः पुंसां बोधिरत्न भवार्णवे।
हस्ताद्भ्रष्टं यथा रत्न महामूल्यं महार्णवे।। (189)

यह जो बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरित्र स्वरूप रत्नत्रय है वह संसार रूपी समुद्र में प्राप्त होना सुगम नहीं है, किन्तु अत्यन्त दुर्लभ है। इसको पाकर भी खो बैठते हैं, उनको हाथ में रखे हुए रत्न को बड़े समुद्र में डाल देने पर जैसे फिर मिलना कठिन है, उसी प्रकार सम्यग्रत्नत्रय का पाना दुर्लभ है।

सुलभमिह समस्तं वस्तुजातं जगत्या
मुरगनरसुरेन्द्रैः प्रार्थितं चाधिपत्यम्।
कुलबलसुभगत्वोदामरामादि चान्यत्
किमुत तदिदमेकं दुर्लभं बोधिरत्नम्।। (113)

इस जगत् में (त्रैलोक में) समस्त द्रव्यों का समूह सुलभ है तथा धरणेन्द्र, नरेन्द्र, सुरेन्द्रों द्वारा प्रार्थना करने योग्य अधिपतिपना भी सुलभ है, क्योंकि ये सब ही कर्मों के उदय से मिलते हैं तथा उत्तमकुल, बल, सुभगता, सुन्दर स्त्री आदिक चारित्र रूप सुलभ है; किन्तु जगत् प्रसिद्ध सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूप बोधिरूप अत्यन्त दुर्लभ है।

संसारम्हि अणंते जीवाणं दुल्लहं मणुस्सत्तं।

जुगसमिला संजोगो लवण समुद्दे जहा चेव।। (757) मूलाचार द्वितीय

अत्यन्त दीर्घ इस अनन्त संसार में जीवों को मनुष्य पर्याय का मिलना बहुत ही दुर्लभ है। जैसे कि लवण समुद्र में जुग और समिला का संयोग। अर्थात् जैसे लवण सुमद्र के पूर्व भाग में जुवाँ के छिद्र में समिला (रस्सी) प्रवेश कर जाना जैसे कठिन है उसी प्रकार से चौरासी लाख योनियों के मध्य में इस जीव को मनुष्य जन्म का मिलना दुर्लभ है।

देसकुलजन्म रूवं आऊ आरोग्ग वीरियं विणओ।

सवणं गहणं मदि धारणा य एदे वि दुल्लहा लोए।। (758)

उत्तम देश कुल में जन्म, रूप, आयु आरोग्य, शक्ति, विनय, धर्म-श्रवण, ग्रहण बुद्धि और धारणा ये भी इस लोक में दुर्लभ ही है।

लद्धेसु विएदेसु य बोधी जिणसासणम्हि ण हु सुलहा।

कुपहाण माकुलत्ता जं बलिया राग दोसा य।। (759)

इनके मिल जाने पर भी जिनशासन में बोधिसुलभ नहीं है, क्योंकि कुपथों की बहुलता है और रागद्वेष भी बलवान् है।

सेयं भवभयमहणी बोधी गुणवित्थडा मए लद्धा।

जदि पडिदा णहु सुलहा तम्हा ण खमो पमादो मे।। (760)

सो यह भवभय का मंथन करने वाली, गुणों से विस्तार को प्राप्त बोधि मैंने प्राप्त कर ली है। यदि यह छूट जाय तो निश्चित रूप से पुनः सुलभ नहीं है। अतः मेरा प्रमाद करना ठीक नहीं है।

दुल्लहलाहं लध्दूण बोधिं जो णरो पमादेज्जो।

सो पुरिसो कापुरिसो सोयदि कुगदिं संतो।। (761)

जो मनुष्य दुर्लभता से मिलने वाली बोधि को प्राप्त करके प्रमादी होता है वह पुरुष कायर पुरुष है। वह दुर्गति को प्राप्त होता हुआ शोक करता है।

उवसमखयमिस्स वा बोधि लद्धूण भणियपुंडरिओ।

तव संजम संजुत्तो अक्खयसोक्खं तदो लहदि।। (762)

श्रेष्ठ भव्य जीव उपशम, क्षायिक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व को प्राप्त करके जब, तप और संयम से युक्त हो जाता है तब अक्षय सौख्य को प्राप्त कर लेता है।

तम्हा अहमपि णिच्चं सद्धासंवेग विरियविणएहिं।

अत्ताणं तह भावे जह सा बोही हवे सुइरं।। (763)

इसीलिये मैं भी श्रद्धा, संवेग, शक्ति और विनय के द्वारा उस प्रकार से आत्मा की भावना करता हूँ कि जिस प्रकार वह बोधि चिरकाल तक बनी रहे।

बोधीय जीवदव्वादियाइं बुज्झइ हु णव वि तच्चाइं।

गुणसयसहस्स कलियं एवं बोहि सया झाहि।। (764)

बोधि से जीव पुद्गल आदि छह द्रव्य तथा अजीव आदि नव तत्त्व (पदार्थ) जाने जाते हैं। इस तरह हजारों गुणों से सहित बोधि का सदा ध्यान करो।

जनम मरण मोह राग द्वे अत्यन्त सुलभ भाई।

संसार नाशक मोह प्रणाशक सुज्ञान दुर्लभ होई।। (कनकनन्दी)

मोहेन संवृत्तं ज्ञानं स्वभावं लभते नहीं।

मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः।।

अर्थात् जैसे कि मदकारी कोदु के सेवन से (या मद्य के सेवन से) नशे से मत्त व्यक्ति हिताहित विवेक से रहित होकर यद्वातद्वा सोचता है, बकता है; करता है वैसे ही मोह (मिथ्यात्व, कषाय) से आवेशित व्यक्ति भी होता है। इससे भिन्न-

रहिमन जो नर सज्जन प्रकृति क्या कर सकत कुसंग।

चन्दन विष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग।।

कम्माणुभावदुहिदो एवं मोहंधयारगहणम्मि।

अंधो व दुग्गमग्गे भमदि हु संसारकंतारे।। (788)

अर्थात् इस प्रकार असातावेदनीय आदि पापकर्मों के प्रभाव से दुःखी जीव मोहरूपी अंधकार से गहन संसार रूपी वन में उसी प्रकार भ्रमण करता है जैसे अन्धा व्यक्ति दुर्गम मार्ग में भटकता है।

दुक्खस्स पडिगरें तो सुहमिच्छंतो य तह इमो जीवो।

पाणवधादीदोसे करेइ मोहेण संछण्णो।। (789) भ.आ.

अर्थात् मोह से आच्छादित यह जीव दुःख से बचने का उपाय करता है और इन्द्रिय सुख की अभिलाषा रखता है और उसके लिये हिंसा आदि दोषों को करता है। आशय यह है कि दुःख से डरता किन्तु समस्त दुःखों के विनाश का उपाय नहीं जानता। यद्यपि दुःखों को दूर करना चाहता है किंतु हिंसा आदि पापों में

प्रवृत्त होता है जो दुःख के हेतु हैं। इन्द्रिय सुख का लम्पटी होते हुए उन्हीं हिंसा आदि पापों में लगा रहता है जो दुःख के कारण है। इसलिए उसका सब काम दुःख का ही मूल होता है।

स्व(मैं) की उपलब्धि सबसे श्रेष्ठ ज्येष्ठ-क्लिष्ट

(चाल : 1. आत्मशक्ति...2. क्या मिलिए...) -आचार्य कनकनन्दी

सब से श्रेष्ठ है सब से ज्येष्ठ, सबसे क्लिष्ट स्व-आत्म-श्रद्धान।
मै हूँ जीव द्रव्य सच्चिदानन्दमय, तन-मन-इन्द्रियों से परे श्रद्धान।।
इससे भी श्रेष्ठ-ज्येष्ठ व क्लिष्ट, स्व-आत्मा का पूर्णज्ञान।
घाती नाश से होता केवलज्ञान, इससे ही होता सम्पूर्ण आत्म-ज्ञान।। (1)

इससे भी श्रेष्ठ-ज्येष्ठ व क्लिष्ट, स्व-आत्मा का पूर्ण चारित्र।
शैलेश अवस्था में सम्पूर्ण होता, चारित्र पूर्ण से तत्काल ही मोक्ष।।
इसे ही कहते मोक्षमार्ग से मोक्ष, रत्नत्रयात्मक स्व-शुद्धात्म स्वभाव।
यह ही सुधर्म व स्वधर्म, यह ही आध्यात्मिक या परमशर्म।। (2) श्रद्धान।

इस हेतु ही देव-शास्त्र-गुरु श्रद्धान, तत्त्वार्थ श्रद्धान व्यवहार-निश्चय
इस हेतु ही जिनवाणी का अध्ययन, अनुप्रेक्षा या मनन व चिन्तन।।
इस हेतु ही श्रावक-मुनिधर्म पालन, तप-त्याग से ले परिषह सहन।
संवर-निर्जरा से ले मोक्षगमन यह ही जीवों के है परमधाम।। (3)

इस हेतु ही चक्रवर्ती भी बने श्रमण, श्रमण को चक्री भी करते नमन।
आत्मउपलब्धि ही सर्वोच्च उपलब्धि, इस हेतु ही 'कनक' बना श्रमण।।(4)

नन्दौड़ 25.09.2018 रात्रि 08:45

सन्दर्भ-

स्वरूपाऽवस्थितिः पुंसस्तदा प्रक्षीणकर्मणः।।
नाऽभावो नाऽप्यचैतन्यं न चैतन्यमनर्थकम्।। (324)

तब-संपूर्ण कर्मबंधनों से छूट जाने पर- **उस प्रक्षीणकर्मा पुरुष की स्वरूप में अवस्थिति होती है, जो कि न अभावरूप है, न अचैतन्यरूप है और न अनर्थक चैतन्यरूप है।**

सब जीवों का स्वरूप

स्वरूपं सर्वजीवानां स्व-परस्य प्रकाशनम्।
भानुमण्डलवत्तेषां परस्मादप्रकाशनम्।। (235)

सब जीवों का स्वरूप स्वका और परका प्रकाशन है। सूर्यमंडल की तरह परसे उनका प्रकाशन नहीं होता।

व्याख्या- पिछले पद्य में मुक्तात्मा के स्वरूप में अवस्थिति जो बात कही गयी है वह स्वरूप क्या है उसी का इस पद्य में निर्देश किया गया है। वह स्वरूप सूर्यमंडल की भाँति स्व-पर-प्रकाशन है और वह किसी एकका नहीं, सकल जीवों का है। सूर्यमंडल प्रकाशन जिस प्रकार किसी दूसरे द्रव्य के द्वारा नहीं होता उसी तरह आत्म-स्वरूप का प्रकाशन भी किसी दूसरे द्रव्य के द्वारा नहीं होता। इसलिये उसे स्वसंवेद्य कहा गया है।

स्वरूपस्थितिकी दृष्टांत द्वारा स्पष्टता

तिष्ठत्येव स्वरूपेण क्षीणे कर्मणि पुरुषः।
यथा मणिः स्वहेतुभ्यः क्षीणे सांसर्गिके मले।।(236)

जिस प्रकार मणि-रत्न संसार को प्राप्त हुए मलके स्वकारणों से क्षयको प्राप्त हो जाने पर स्वरूप में स्थित होता है उसी प्रकार जीवात्मा कर्ममल के स्वकारणों से क्षीण हो जाने पर स्वरूप में स्थित होता है।

व्याख्या - यहाँ सांसर्गिक मल से रहित मणि की स्वरूपावस्थिति के दृष्टांत द्वारा कर्ममल से रहित हुए आत्मा की स्वरूपावस्थिति को स्पष्ट किया गया है। जिस प्रकार सांसर्गिक मल के दूर हो जाने पर मणि-रत्न का अभाव नहीं होता, वह कांतिरहित नहीं होता और न उसकी कांति निरर्थक होती है, उसी प्रकार सांसार्गिक कर्ममल से रहित हुआ जीवात्मा अभाव को प्राप्त नहीं होता, न अपने स्वाभाविक चैतन्यगुण से रहित होता है और न उसका चैतन्यगुण निरर्थक ही होता है।

स्वात्मस्थिति के स्वरूप का स्पष्टीकरण

न मुह्यति न संशेते न स्वार्थानाध्यवस्यति।
न रज्यति न च द्वेष्टि किन्तु स्वस्थः प्रतिक्षणम्।। (237)
त्रिकाल-विषयं ज्ञेयमात्मानं च यथास्थितम्।

जानन्पश्यंश्च निःशेषमुदास्ते स तदा प्रभुः।। (238)
अनन्तज्ञान-दृग्वीर्य-वैतृष्ण्यमयमव्ययम्।
सुखं चाऽनुभवत्येष तत्राऽतीन्द्रियमच्युतः।।(239)

मुक्ति को प्राप्त हुआ जीवात्मा न तो मोह करता है, न संशय करता है, न स्व तथा पर-पदार्थों के प्रति अनध्यवसायरूप प्रवृत्त होता है-स्व-परपदार्थों से अनभिज्ञ रहता है- **और न द्वेष करता है, किंतु प्रतिक्षण स्व में स्थित रहता है। उस समय वह सिद्धप्रभु त्रिकाल विषयक ज्ञेय को और आत्मा को यथावस्थित रूप में जानता-देखता हुआ-उदासीनता उपेक्षा को धारण करता है और मुक्ति में यह अच्युत सिद्ध उस अतींद्रिय अविनाशी सुख का अनुभव करता है जो अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य और अनंतवैतृष्ण्यरूप होता है।**

मोक्षसुखविषयक शंका-समाधान

नन्नु चाऽक्षैस्तदर्थानामनुभोक्तुः सुखं भवेत्।
अतीन्द्रियेषु मुक्तेषु मोक्षे तत्कीदृशं सुखम्।। (240)
इति चेन्मन्यसे मोहात्तन्न श्रेयो मतं यतः।
नाऽद्यापि वत्स! त्वं वेत्सि स्वरूपं सुख-दुःखयोः ।। (249)

यहाँ कोई शिष्य पूछता है कि 'सुख तो इंद्रियों के द्वारा उनके विषयों को भोगने वाले के होता है, इंद्रियों से रहित मुक्त जीवों के वह सुख कैसा ? इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं- हे वत्स! तू जो मोह से ऐसा मानता है वह तेरी मान्यता ठीक अथवा कल्याणकारी नहीं है; क्योंकि तूने अभीतक (वास्तव में) सुख-दुःख के स्वरूप को ही नहीं समझा है- इसी से सांसारिक सुख को, जो वस्तुतः दुःखरूप है, सुख मान रहा है।

मोक्षसुख-लक्षण

आत्माऽऽयत्तं निराबाधमतीन्द्रियमनश्वरम्।
घातिकर्मक्षयोद्भुतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः।। (242)

'जो घातिया-कर्मों के क्षय से प्रादुर्भूत हुआ है, स्वात्माधीन है- किसी दूसरे के आश्रित नहीं, **निराबाध है** जिसमें कभी कोई प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं

होती, अतीन्द्रिय है- इंद्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं - **और अनश्वर है**-कभी नाश को प्राप्त नहीं होता, **उसको 'मोक्षसुख' कहते हैं।**

सर्व परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
वदन्तीति समासेन लक्षणं सुख-दुःखयोः।।(9-12) यो.प्रा.

लोक में भी यह कहावत प्रसिद्ध है कि पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं। अतः जो स्वात्माधीन सुख है वही वस्तुतः सुख है और उसी का नाम मोक्ष सुख इसलिए कहा गया है कि वह घातिया कर्मों के बंधन से मुक्त होने पर ही प्रादुर्भूत होता है।

सांसारिक सुख का लक्षण

यत्तु सांसारिकं सौख्यं रागात्मकमशाश्वतम्।
स्व-पर-द्रव्य-सम्भूतं तृष्णा-सन्ताप-कारणम्।। (243)
मोह द्रोह-मद-क्रोध-माया-लोभ-निबन्धनम्।
दुःख-कारण-बन्धस्य हेतुत्वाद् दुःखमेव तत्।। (244)

और जो रागात्मक सांसारिक सुख है वह अशाश्वत है- स्थिर रहने वाला नहीं-स्वद्रव्य और परद्रव्य से (मिलकर) उत्पन्न हुआ है- इसीलिए स्वाधीन नहीं, **तृष्णा तथा संताप का कारण है, मोह-द्रोह और क्रोध-मान-माया-लोभ का साधन है और दुःख के कारण बंधका हेतु है, इसलिए (वस्तुतः) दुःखरूप ही है।**

इंदियविषयों से सुख मानना मोहका माहात्म्य

तन्मोहस्यैव माहात्म्यं विषयेभ्योऽपि यत्सुखम्।
यत्पटोलमपि स्वादु श्लेषमणस्तद्विजृम्भितम्।।(254)

इंद्रियों विषयों से भी जो सुख माना जाता है वह मोक्ष का ही महात्म्य है- जो विषयों से सुख मानता है समझना चाहिए कि वह मोह से अभिभूत है। (जैसे) पटोल (कटु वस्तु) **भी जिसे मधुर मालूम होती है वह उसके श्लेषमा** (कफ) का **माहात्म्य है-** समझना चाहिए कि उसके शरीर में कफ बढ़ा हुआ है।

सर्प डसो तब जानिये जब रुचिकर नीम चबाय।
कर्म डसो तब जानिये जब जैन-बैन न सुहाय।।

इसमें यह भाव दर्शाया गया है कि जिस प्रकार किसी मनुष्य को कोई विषधर सर्प काट लेता है तब वह निंब वृक्ष के कड़वे पत्तों को भी रुचि से चबाने लगता है- उसे वे पत्ते कड़वे न मालूम होकर मधुर जान पड़ते हैं- और उसका यह रुचि से नीम चबाना इस बात का प्रमाण होता है कि उसे अवश्य ही सर्पने डसा है, किसी दूसरे जंतुने नहीं। उसी प्रकार जिस मानव को जैन संतों का इंद्रिय-विषयों में सुख का निषेधक वचन अच्छा मालूम नहीं होता और वह उसके विपरीत विषय सुख को ही सुख समझता है तो समझना चाहिए कि वह महामोहरूप कर्म-विषधरका डसा है, जिससे उसका विवेक ठीक काम नहीं करता।

मुक्तात्माओं के सुख की तुलना में चक्रियों-देवों का सुख नगण्य

यदत्र चक्रिणां सौख्यं यच्च स्वर्ग दिवौकसाम्।
कलयाऽपि न तत्तुल्यं सुखस्य परमात्मनाम्।। (246)

जो सुख यहाँ -इस लोक में-चक्रवर्तियों को प्राप्त है और जो सुख स्वर्ग में देवों को प्राप्त है वह परमात्माओं के सुख की कला के बहुत ही छोटे अंश के भी बराबर नहीं है।

व्याख्या- यहाँ मुक्तिको प्राप्त सुख की ऊँचे सांसारिक सुख के साथ तुलना करते हुए यह घोषित किया गया है जो सुख चकवर्तियों तथा स्वर्गों के द्वेवों को प्राप्त है, वह मुक्तात्माओं के सुख के एक छोटे से अंश की भी बराबरी नहीं कर सकता और इस इस तरह मुक्तात्माओं के सुख-माहात्म्य को यहाँ और विशेष रूप से ख्यापित किय गया है।

मुक्तात्मों का परमात्मा रूप में जो उल्लेख यहाँ किया गया है वह जैन शासन की अपनी विशेषता है; क्योंकि जैन शासन में एकेश्वरवादियों की तरह किसी एक व्यक्ति विशेष को ही परमात्मा नहीं माना गया है। उसकी दृष्टि में सभी मुक्त जीव परमात्मा हैं- चाहे वे जीवन्मुक्त हों या विदेहमुक्त। जीवन्मुक्तों को शरीर सहित होने के कारण सकल-परमात्मा और विदेहमुक्तों को शरीर रहित होने के कारण निष्कल-परमात्मा कहते हैं। इससे परमात्मा एक नहीं, किंतु अनेक हैं, यही परमात्मनाम्पद के बहुरचनात्मक प्रयोग का आशय है।

पुरुषार्थों में उत्तम मोक्ष और उसका अधिकारी स्याद्वादी

अतएवोत्तमो मोक्षः पुरुषार्थेषु पठ्यते।
स च स्याद्वादिनामेव नान्येषामात्मविद्विषाम्।। (247)

इसलिये सब पुरुषार्थों में मोक्ष पुरुषार्थ उत्तम माना जाता है। और वह मोक्ष स्याद्वादियों के अनेकान्तमतानुयायियों के ही बनता है, दूसरे एकान्तवादियों के नहीं, जो कि अपने शत्रु आप हैं।

एकान्तवादियों के बंधादि-चतुष्टय नहीं बनता

यद्वा बन्धश्च मोक्षश्च तद्धेतू च चतुष्टयम्।
नास्त्येवैकान्त-रक्तानां तद्व्यापकमनिच्छताम्।। (248)।।

अथवा बंध और मोक्ष, बंधहेतु और मोक्षहेतु यह चतुष्टय चारों का समुदाय उन एकांत आसक्तों के, सर्वथा एकान्तवादियों के नहीं बनता, जो कि चारों में व्याप्त होने वाले तत्त्व को (अनेकान्त को) स्वीकार नहीं करते।

मैं चैतन्य हूँ जड़ न बनता

(चाल : बिन गुरु ज्ञान नहीं...) **-आचार्य कनकनन्दी**

मैं चैतन्य हूँ...जड़ न बनता...
भले निगोदिया हो या सिद्धावस्था, सभी में चैतन्य भाव सदा ही होता।।
अनादि (जब) मैं निगोदिया में रहा ... बादर या सूक्ष्म निगोदिया बना।
तब जो शरीर मुझे प्राप्त हुए...बादर या सूक्ष्म निगोद द्रव्य (वर्गणा) गहा।।
तब भी मैं चैतन्यमय ही रहा...अति अल्प कुज्ञान मेरा रहा।।
शरीर भी मेरे अति सूक्ष्म रहे...तथापि मैं पुद्गल (जड़) मय न रहा।।(1)

चतुर्गति में मैं त्रस बना...औदारिक-वैक्रियक शरीर गहा।
आहार शरीर भी अनेक पाया...आहार वर्गणा ये शरीर बने।
तिर्यंच-मानव में औदारिक तन...देव-नारकी में वैक्रियक तन।
विग्रहगति में आहारक तन...तथापि चैतन्यमय ही रहा।। (2)

हर समय तैजस शरीर रहा...तैजस वर्गणा से निर्माण हुआ।
उस में भी (मेरा) चैतन्य भाव रहा...चैतन्य बिन शरीर जड़ (शव) हुए।
त्रस से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों में...विविध भाषाओं का प्रयोग करूँ।

भाषा वर्गणा से भाषा बनती...चैतन्य परिणति मेरी रहती।। (3)
संज्ञी अवस्था में मन भी मिले...मनो द्रव्य वर्गणा से मन बने।
क्षायोपशमिक होता भाव मन...इस में भी रहता चैतन्यमय।
कार्माण शरीर भी जड़मय है...कार्माण शरीर द्रव्य वर्गणा से बने।
इसमें भी मैं चैतन्य रहता...कार्माण द्रव्य वर्गणा से मैं न बनता।। (4)
प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणा से...बने हैं प्रत्येक शरीर अनेक।
तथापि मैं शरीरमय न बनता...उपयोगमय लक्षण न छोड़ता।
तथाहि (मैं) धर्म अधर्म द्रव्य न बनता...आकाश काल द्रव्य न बनता।
अन्योन्य प्रवेश आदि से भी...स्व-स्वभाव न त्यागते कोई।। (5)
यह है मेरा मौलिक/(स्वतंत्र) स्वभाव...तथाहि सभी द्रव्य स्वभाव।
सर्वज्ञ प्रतिपादित परम सत्य...इसे ही प्रगट करना 'कनक' का लक्ष्य। (6)

नन्दौड़, दि. 21/8/2018, मध्याह्न 3.25

जीव का स्वरूप

तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउआणपाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदण जस्स।। (3) द्रव्य सं.

According to Vyavahara Naya, That is called Jiva, which is possed of four pranas viz, indriya (The senses) [Bal (Force), ayu (life) and Ana-prana (respiration) in the three peirod of time viz, the present the past and the future and according to Nischaya Naya that which has consciousness is called jiva.

तीन काल में इन्द्रिय, बल, आयु और आनपान इन चारों प्राणों को जो धारण करता है वह व्यवहार नय से जीव है और निश्चय नय से जिसके चेतना है, वह जीव है।

आचार्य श्री ने इस गाथा में व्यवहार नय से एवं निश्चय नय से जीव की परिभाषा दी है। संसारी जीव अनादिकाल से कर्म संतति की अपेक्षा कर्म से युक्त है। इसलिए कर्म परतंत्र जीव यथायोग्य कर्म के उदय से प्राप्त यथायोग्य द्रव्यप्राण एवं भाव प्राण से जीता है। इसलिए व्यवहार नय से चार द्रव्य प्राणों से और भाव प्राणों से जो जीता है, जीवेगा वा पहले जीया है उसे जीव कहते हैं, अनुपचरित असद्भूत व्यवहार

नय से द्रव्येन्द्रिय आदि द्रव्य प्राण है और भावेन्द्रिय आदि क्षायोपशमिक भाव प्राण अशुद्ध निश्चय नय से है तथा निश्चय नय से शुद्ध चैतन्य ज्ञान आदि शुद्ध भाव प्राण है।

प्रत्येक द्रव्य, 'पर' से उत्पन्न न होने वाला सत्तावान् होने से प्रत्येक द्रव्य अनादि अनिधन अर्थात् शाश्वतिक है। विज्ञान के अनुसार भी द्रव्य एवं ऊर्जा कभी भी नष्ट नहीं होते हैं परंतु परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए प्रत्येक जीव अनादि से है और अनंत तक रहेगा भले उसमें सतत परिवर्तन होता है। डार्विन आदि कुछ आधुनिक वैज्ञानिक एवं चार्वाक आदि कुछ प्राचीन दार्शनिक जीव को शाश्वतिक नहीं मानते हैं परंतु इनका यह मत कपोल कल्पित असत्य है।

उपयोग तथा दर्शनोपयोग के भेद

उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खु ओही दंसणमध केवलं णेयं।। (4)

Upayaga is of two kinds, Dharshana and Gnana Dharshana is of four kinds.

Darshana is known to be (diveded into) Chakshu, Achakshu; Avadhi and Kevala.

दर्शन और ज्ञान इन भेदों से उपयोग दो प्रकार का है। उसमें चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन भेदों से दर्शनोपयोग चार प्रकार का जानना चाहिए।

उपयोग जीव का सर्वश्रेष्ठ विशिष्ट गुण है। आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में जीव का स्वरूप कहते हुए कहा है कि ''उपयोगो लक्षणम्'' अर्थात् जीव का लक्षण उपयोग है।

The Laskshna or differentia of soul is Upayaga attention, consciousness, attemtiveness.

पंचास्तिकाय में कुंदकुंद देव ने इसका वर्णन सविस्तार से निम्न प्रकार किया है :-

उवओगो खलु णाणेण य दंसणेण संजुत्तो।
जीवस्स सव्वकालं अणण्णभूदं वियाणीहि।। (40)

उपयोग वास्तव में दो प्रकार है। ज्ञान और दर्शन से संयुक्त अर्थात् ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। यह सर्वकाल इस जीव से एक रूप है, जुदा नहीं है ऐसा मानो।

वत्थुणिमित्तं भावो, जादो जीवस्स दु उवयोग।

जीव का जो भाव वस्तु को (ज्ञेय को) ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त होता है, उसको उपयोग कहते हैं।

जीव में स्व-पर को जानने योग्य अनुभव करने योग्य जो शक्ति विशेष है

उसको उपयोग कहते हैं। इस उपयोग के सामान्यतः दो भेद हैं। (1) दर्शनोपयोग (2) ज्ञानोपयोग- सामान्य सत्ता अवलोकन रूप जो निर्विकल्पक उपयोग है उसे दर्शन उपयोग कहते हैं और विशेष जानने रूप सविकल्प उपयोग होता है उसे ज्ञानोपयोग कहते हैं। इस गाथा में आचार्य श्री ने उपयोग के सामान्य रूप से दो भेद बताकर उसमें से दर्शन उपयोग का विशेष वर्णन किया है क्योंकि ज्ञानोपयोग का वर्णन अधिक होने के कारण उसका वर्णन अग्रिम गाथा में किया गया है एवं दर्शनोपयोग का वर्णन कम होने के कारण इस गाथा में पहले ही कर लिया है।

दर्शन उपयोग के चार भेद है (1) चक्षुदर्शन (2) अचक्षु दर्शन (3) अवधि दर्शन (4) केवल दर्शन।

(1) चक्षु दर्शन- अनादि कर्म बंध के आधीन जीव के चक्षु दर्शनावरण के क्षयोपशम से जो चक्षु के द्वारा बहिरंग एवं अंतरंग कारणों के अवलंबन से स्थूल मूर्तिक वस्तुओं का दर्शन होता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम, वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम, शरीर, अंगोपांग नामकर्म के उदय से जो चक्षु इन्द्रिय की बहिरंग एवं अंतरंग रचना होती है, उसके माध्यम से योग्य क्षेत्र में स्थित मूर्तिक द्रव्यों का जो दर्शन होता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। इस दर्शन के लिए यथायोग्य प्रकाश की भी आवश्यकता है।

(2) अचक्षु दर्शन- चक्षु को छोड़कर अन्य इन्द्रियों को अचक्षु कहते हैं। यथा-स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, कर्ण इन्द्रिय तथा मन को अचक्षु कहते हैं। स्पर्शन, रसना घ्राण तथा कर्ण इन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम से और निज-निज बहिरंग द्रव्येन्द्रिय के अवलंबन से मूर्त्त सत्ता सामान्य को परोक्ष रूप एकदेश जो विकल्प रहित देखता है वह अचक्षु दर्शन है। उदाहरण के स्वरूप स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा जो सामान्य स्पर्शन का भास होता है वह स्पर्शन इन्द्रिय संबंधी अचक्षु दर्शन है। इसी प्रकार रसना, घ्राण, कर्ण सम्बन्धी अचक्षु दर्शन है।

मानस अचक्षु दर्शन - मन-नो-इन्द्रिय के आवरण के क्षयोपशम से तथा सहकारी कारणभूत जो आठ पाँखुडी कमल के आकार द्रव्य मन है, उसके अवलंबन से मूर्त्त तथा अमूर्त्त ऐसे समस्त द्रव्यों में विद्यमान सत्ता सामान्य को परोक्षरूप से विकल्प रहित जो देखता है, वह मानस अचक्षुदर्शन है।

(3) अवधि दर्शन - अवधि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से मूर्त्त वस्तु का एकदेश प्रत्यक्ष से विकल्प रहित सत्ता सामान्य का अवलोकन अवधि दर्शन है अर्थात् अवधिज्ञान के पहले जो सत्ता सामान्य का अवलोकन होता है उसको अवधिदर्शन कहते हैं।

(4) केवल दर्शन - केवल दर्शनावरण के पूर्ण क्षय से संपूर्ण द्रव्यों का जो एक साथ सामान्य रूप से विकल्प रहित होकर प्रत्यक्ष दर्शन होता है उसे केवलदर्शन कहते हैं। केवलदर्शन, केवलज्ञान के साथ युगपत् (एक साथ) प्रवृत्त होता है।

मतिज्ञान के पहले चक्षु दर्शन एवं अचक्षु दर्शन होता है क्योंकि मतिज्ञानी छद्मस्थ होता है इसलिए दर्शन पूर्वक उसका ज्ञान होता है।

श्रुतज्ञान, मतिज्ञान पूर्वक होता है। मनःपर्यय ज्ञान के पहले कोई दर्शन नहीं होता है इसलिए मनःपर्यय दर्शन का वर्णन शास्त्र में नहीं पाया जाता है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने सन्मति सूत्र में भी कहा है-

जेण मणोविसयगयाण दंसणं णत्थि दव्वजादाणं।

तो मणपज्जव णाणं णियमा णाणं तु णिद्दिट्ठं।। (19)

मनःपर्यय ज्ञान में विषयभूत पदार्थों का सामान्य रूप से ग्रहण नहीं होता, विशेष रूप से ग्रहण होता है अतएव मनःपर्यय दर्शन नहीं होता है। सामान्य रूप से ज्ञान के पहले दर्शन होता है किंतु मनःपर्यय ज्ञान में ऐसा नियम नहीं है, बिना दर्शन के ही होता है। मनःपर्यय ज्ञान में विशेष का ही ग्रहण होता है सामान्य का नहीं। अतः मनःपर्यय ज्ञान ही है, दर्शन नहीं है।

वृहत् द्रव्य संग्रह की टीका में ब्रह्मदेव सूरी ने कहा भी है-

यत्पुनर्मनपर्ययज्ञानावरणं क्षयोपशमाद्वीर्यान्तराय
क्षयोपशमाच्च स्वकीय मनोवलम्बनेन परकीयमनोगतं
मूर्त्तमर्थमेकदेश प्रत्यक्षेण सविकल्पं जानाति तदीहामति
ज्ञानपूर्वक मनःपर्ययज्ञानम्।

जो मनःपर्ययज्ञानावरण के क्षयोपशम से और वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से अपने मन के अवलम्बन द्वारा पर के मन में प्राप्त हुए मूर्त पदार्थ को एक देश प्रत्यक्ष से सविकल्प जानता है, वह ईहामतिज्ञान पूर्वक मनःपर्यय ज्ञान कहलाता है।

ग्रहणीय 8 वर्गणायें

1. आहार वर्गणा– अनन्तानन्तप्रदेशी परमाणु पुद्गल द्रव्यवर्गणा जो उष्कृष्ट है, उसमें एक अंक मिलाने पर जघन्य आहार द्रव्यवर्गणा होती है। फिर एक अधिक के कम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण भेदों के जाने पर अन्तिम आहार द्रव्यवर्गणा होती है। यह जघन्य से उत्कृष्ट विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण अभव्यों से अनन्तगुणा अर्थात् सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण होता हुआ भी, उत्कृष्ट आहार द्रव्यवर्गणा के अनन्तवें भाग प्रमाण है। औदारिक वैक्रियिक और आहारक शरीर के योग्य पुद्गल स्कंधों की आहार द्रव्यवर्गणा संज्ञा है। आहारवर्गणा के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग प्रमाण आहारक शरीर प्रायोग्य वर्गणाग्र होता है। शेष के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग प्रमाण वैक्रियिक शरीर प्रायोग्य वर्गणाग्र होता है तथा शेष एक भाग औदारिक शरीर प्रायोग्य वर्गणाग्र होता है। (धवला पु. 14 पृ. 560) यह पाँचवी वर्गणा है।

2. तैजस वर्गणा – उत्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गणा में एक अंक मिलाने पर सबसे जघन्य तैजस शरीर द्रव्यवर्गणा होती है। पुनः एक-एक अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण स्थान जाकर उत्कृष्ट तैजस शरीर द्रव्य वर्गणा होती है। यह अपने जघन्य से उत्कृष्ट विशेष अधिक है। अभव्यों से अनन्त गुणा और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण विशेष का प्रमाण है। इसके पुद्गल स्कन्ध तैजस शरीर के योग्य होते हैं, इसलिए यह ग्रहण वर्गणा है। यह सातवीं वर्गणा है।

3. भाषा वर्गणा– दूसरी उत्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गणा में एक अंक के प्रक्षिप्त करने पर सबसे जघन्य भाषा द्रव्यवर्गणा होती है। इससे आगे एक-एक अधिक से क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण जाकर भाषा द्रव्यवर्गणा सम्बन्धी उत्कृष्ट द्रव्यवर्गणा होती है। यह अपने जघन्य से उत्कृष्ट विशेष अधिक है। अपनी जघन्य वर्गणा का अनन्तवाँ भाग विशेष का प्रमाण है। भाषा द्रव्यवर्गणा के परमाणु पुद्गलस्कन्ध चारों भाषाओं के योग्य होते हैं तथा ढोल, भेरी, नगारा और मेघ की गर्जना आदि शब्दों के योग्य भी ये ही वर्गणायें होती हैं।

4. मनोद्रव्य वर्गणा – तीसरी उत्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गणा में एक अंक मिलाने पर जघन्य मनोद्रव्यवर्गणा होती है। फिर आगे एक-एक अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण स्थान जाकर उत्कृष्ट मनोद्रव्यवर्गणा होती है। यह अपने जघन्य से उत्कृष्ट वर्गणा विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण सबसे जघन्य मनोद्रव्य वर्गणा का अनन्तवाँ भाग है। इस वर्गणा से द्रव्य मन की रचना होती है। यह ग्यारहवीं वर्गणा है।

5. कार्माण शरीर द्रव्यवर्गणा – चौथी अग्रहण द्रव्यवर्गणा सम्बन्धी उत्कृष्ट द्रव्यवर्गणा में एक अंक प्रक्षिप्त करने पर सबसे जघन्य कार्माण शरीर द्रव्यवर्गणा होती है। आगे एक-एक प्रदेश अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे सम्बन्धी उत्कृष्ट वर्गणा होती है। अपनी जघन्य वर्गणा का अनन्तवें भाग प्रमाण स्थान जाकर कार्मण द्रव्यवर्गणा सम्बन्धी उत्कृष्ट वर्गणा होती है। अपनी जघन्य वर्गणा से अपनी उत्कृष्ट वर्गणा विशेष अधिक है। जघन्य कार्माण वर्गणा का अनन्तवां भाग विशेष का प्रमाण है। इस वर्गणा के पुद्गल स्कन्ध आठों कर्मों के योग्य होते हैं। यह तेरहवीं वर्गणा है।

6. प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणा – ध्रुव शून्य द्रव्य वर्गणा के ऊपर प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा है। एक-एक जीव के शरीर में उपचित हुए कर्म और नोकर्म स्कन्धों की प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणा संज्ञा है। अब उत्कृष्ट ध्रुवशून्य द्रव्यवर्गणा में एक अंक मिलाने पर जघन्य प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा होती है।

7. बादर निगोद द्रव्य वर्गणा – उत्कृष्ट ध्रुव शून्य द्रव्यवर्गणा में एक अंक अर्थात् एक प्रदेश के मिलाने पर सबसे जघन्य बादर निगोद द्रव्यवर्गणा होती है। वह क्षीणकषाय के अन्तिम समय में होती है। जो जीव क्षपित कार्मांशिक विधि से आकर पूर्व कोटि की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ, अनन्तर गर्भ से लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहुर्त का होने पर सम्यक्त्व और संयम को युगपत ग्रहण करके पुनः कुछ कम पूर्व कोटिकाल तक कर्मों की उत्कृष्ट गुणश्रेणी निर्जरा करके सिद्ध होने के अन्तर्मुहुर्त काल अवशेष रहने पर उसने क्षपकश्रेणी पर आरोहण किया। अनन्तर क्षपक श्रेणी में सबसे उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा कर्म निर्जरा करके क्षीणकषाय हुए। इस जीव के प्रथम समय में अनन्त बादर निगोद जीव मरते हैं। दूसरे समय में विशेष अधिक जीव मरते हैं। इसी प्रकार तीसरे आदि समयों में विशेष अधिक विशेष अधिक जीव मरते हैं। यह क्रम क्षीणकषाय के प्रथम से लेकर पृथकत्व आवली काल तक चालू रहता है। इसके

आगे संख्यात भाग अधिक संख्यातभाग अधिक जीव मरते हैं और यह क्रम क्षीणकषाय के काल में आवली का संख्यात्वाँ भाग काल शेष रहने तक चालू रहता है। इसके पश्चात् निरन्तर प्रति समय असंख्यातगुणे जीव मरते हैं। इस प्रकार क्षीणकषाय के अन्तिम समय तक असंख्यातगुणे जीव मरते हैं। गुणाकार सर्वत्र पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है।

यहां क्षीणकषाय के अन्तिम समय में जो आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुलवियाँ हैं, जो कि पृथक-पृथक असंख्यातवें लोकप्रमाण निगोद शरीरों से आपूर्ण हैं, उनमें स्थित अनन्तानन्त निगोद जीवों के जो अनन्तानन्त विस्रसोपचय से युक्त कर्म और नोकर्म संघात हैं, वह सबसे जघन्य बादर निगोद द्रव्यवर्गणा है। स्वयंभूरमण द्वीप की मृली के शरीर में उत्कृष्ट बादर निगोद वर्गणा होती है क्योंकि मृली के शरीर में एकबन्धन बद्ध जगच्छेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुलवियाँ होती है। इस प्रकार यह उन्नीसवीं वर्गणा कही गई है।

8. सूक्ष्म निगोद द्रव्य वर्गणा : उत्कृष्ट ध्रुव शून्य वर्गणा में एक अंक के मिलाने पर सूक्ष्म निगोद द्रव्यवर्गणा होती है। वह जल में, स्थल में और आकाश में सर्वत्र दिखलाई देती है, क्योंकि बादर निगोद वर्गणा के समान इसका देशनियम नहीं है। यह सबसे जघन्य सूक्ष्म निगोद जीव के ही होती है, अन्य के नहीं, क्योंकि वहां जघन्य द्रव्य के होने में विरोध है। महामत्स्य के शरीर में एकबन्धनबद्ध छह जीवनिकायों के संघात में उत्कृष्ट सूक्ष्म निगोदवर्गणा दिखलाई देती है। जघन्य सूक्ष्म निगोदवर्गणा से लेकर उत्कृष्ट सूक्ष्म निगोदवर्गणा पर्यन्त सब जीवों से अनन्तगुणा निरन्तर स्थान प्राप्त होकर एक ही स्पर्धक होता है, क्योंकि मध्य में कोई अन्तर नहीं है। जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा असंख्यात गुणी है। पल्य का असंख्यातवाँ भाग गुणाकार है। यह इक्कीसवीं वर्गणा है।

शेष अग्राह्य एवं शून्य वर्गणायें :- उपर्युक्त 8 वर्गणा से अतिरिक्त अन्य (23-8 = 15) 15 वर्गणायें जीवों के द्वारा ग्रहणीय नहीं है अर्थात् अधिकांश वर्गणायें (विभाग तथा संख्या अपेक्षा भी) अग्रहणीय हैं। तथापि ये वर्गणायें विश्व की व्यवस्था एवं रचना के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आधुनिक विज्ञान में जो Dark matter और उपर्युक्त 15 वर्गणाओं में कुछ समानता संभव है। इसका शोध बोध मैं स्वयं कर रहा हूँ और वैज्ञानिक को भी करना चाहिए।

शरीर में कोशिकाओ से ज्यादा जीवाणु

वैज्ञानिक प्रकृति निर्मित संरचनाओं से नित नए खोज कर हम सबको चौंकाते है। ऐसे तथ्य हैं, जिसे पहली बार जानकर हम सब की आंखे खुली की खुली रह जायेंगी।

एक रक्त कोशिका 60 सेकैंड में लगाती है एक चक्कर

आप जानते हैं कि मानव शरीर में औसतन 5 लीटर रक्त होता है और हृदय प्रत्येक धड़कन में 70 मिलीलीटर रक्त पंप करता है। ऐसे में अगर प्रत्येक धड़कन में पंप किये गए रक्त की मात्रा का गुणा करते हैं तो प्रतिमिनट पंप किये रक्त की मात्रा 4.9 लीटर ठहरती है। वहीं रक्त की एक कोशिका 60 सेकेंड में पूरे शरीर का एक चक्कर पूरा कर लेती है।

देह पर चिपके रहते हैं आधा गैलन बैक्टीरिया

आप कितने भी अच्छे से हाथ धोलें, वर्कप्लेस को रोगाणु रहित बनाने का लाख प्रयास करें लेकिन आपकी त्वचा पर हर समय लगभग आधा गैलन यानी शरीर में पाई जाने वाली कुल कोशिकाओं से दस गुना अधिक बैक्टीरिया हर समय चिपके रहते हैं। यह रिसर्च किया है, इडाहो यूनिवर्सिटी के माइक्रोबायोलॉजिस्ट कैरोलिन बोहाश ने। बोहाश कहते हैं, इससे हमें डरने की जरूरत नहीं है। इनमें से अधिकतर बैक्टीरिया मित्र जैसी हैं। हम इनके बिना जिंदा ही नहीं रह सकते। कई सारे बैक्टीरिया ऐसे हैं जो, भोजन को उर्जा में बदलने और उनके पोषक तत्वों के दोहन का काम करती हैं। पेट में पाये जाने वाले बैक्टीरिया शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता बनाये रखने में बड़ी भूमिका निभाते हैं।

जैविक घड़ी से निकलेगा कई बीमारियों का इलाज

तीन अमेरिकी वैज्ञानिकों जेफ्री सी हाल, माइकल रोबांश और माइकल डब्ल्यू यंग ने कोशिकाओं में चलने वाली जैविक घड़ी की चाबी ढूंढकर मानव जाति पर बड़ा उपकार किया है। उससे नींद, हार्मोन असंतुलन, अवसाद, दिल की बीमारी और मधुमेह जैसी तमाम व्याधियों के इलाज की दिशा में काफी संभावनाएं खुली है। इसीलिए उन्हें इस साल मेडिसिन के क्षेत्र में संयुक्त रूप से नोबेल पुरस्कार के लिए चुना गया है। संयोग से सुबह पांच बजे हुई पुरस्कार की चौंकाने वाली घोषणा के

समय जेफ्री सी. हाल जगे हुए थे और उन्होंने जल्दी जागने की इस प्रवृत्ति को उस घड़ी में आई गड़बड़ी से जोड़कर देखा, जो इनसान के शरीर में चलती रहती है। हाल और रोशबाश ने मैसाचुसेट्स में और थंग में रॉकफेलर विश्वविद्यालय में दशकों तक सिरका मक्खी (फ्रूट फ्लाई) पर काम करते हुए यह जानने की कोशिश की कि आखिर जीवों के शरीर में वह कौन-सी क्रिया होती है जो उनके दिन-रात को गतिविधियों को नियंत्रित करती हैं और उसमें होने वाले उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) की कैसे ठीक किया जा सकता है। वे इस निष्कर्ष पहुंचे कि जीव, पादप और मनुष्य की कोशिकाओं के भीतर एक प्रकार का आणविक परिवर्तन होती है, जिससे सोना, उठना, थकना, सक्रिय होना जैसे तमाम कार्य धरती की गति से बनने वाले दिन-रात से निर्धारित होते हैं। वैज्ञानिकों को मक्खी की कोशिकाओं में ऐसा प्रोटीन मिला जो रात में जमा हो जाता है और दिन में घुल जाता है। उन्होंने उस प्रोटिन को पैदा करने, वाली जीन में उत्परिवर्तन किया, जिससे मक्खी को जगने सोने की क्रियाएं बदल गई। इसी से उन्हें लगा कि आणविक बदलाव से जुड़ी यह क्रिया सभी जीवों की कोशिकाओं में होनी चाहिए और अब वे उस जैविक घड़ी की चाबी को विधिवत ढूंढने की कोशिश में हैं, जिसके बिगड़ जाने से होने वाली बीमारियों को ठीक किया जा सकता है। उदाहरण के लिए गोलार्ध के आरपार हवाइ यात्रा करने वालों को जेट लैग होता है। कई लोगों को ज्यादा सोने की तो किसी को अनिद्रा की शिकायत होती है। सामान्य कोशिकाओं से लेकर दिमाग की कोशिका तक पाई जाने वाली वह घड़ी धरती की गति के लिहाज से कुदरती घड़ी के साथ चलती है। यह जानकारी जीन से जुड़ी एक ऐसी जानकारी है, जिसके दुरुपयोग होने के भी खतरे हैं। देखना है कि वैज्ञानिक कैसे उस चाबी को हासिल कर उसका इस्तेमाल मानव कल्याण के लिए करते हैं।

मेरा भाव ही मेरा स्वरूप

(चाल : तुम दिल की...) -आचार्य कनकनन्दी

कितना प्यारा भाव है मेरा, सत्य-समता-शान्तिवाला।
स्व-पर विश्व कल्याण वाला, सनम्र सत्यग्राही उदार वाला।।
आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र वाला, सहज-सरल-निर्मल वाला।
संयम-धैर्य व क्षमा वाला, निस्पृह-निराडम्बर भोला-भाला।। (1)

जीव को जिनेन्द्र मानने वाला, हर जीव से मैत्री भावित वाला।
गुणी जीवों से प्रमोद वाला दुःखी जीवों से करुणा वाला।।
दोषी जीवों से माध्यस्थ वाला, उनसे भी राग-द्वेष न करनेवाला।
परनिन्दा-अपमान न करनेवाला, उनसे भी शिक्षा लेने वाला।। (2)

वैश्विक कुटुम्ब मानने वाला, संकीर्ण-कट्टरता से रहित वाला।
संकीर्ण स्वार्थ से रहितवाला, आध्यात्मिक स्वार्थ सहित वाला।।
ख्याति-पूजा-लाभ से रहित वाला, दीन-हीन अहंकार रहित वाला।
स्वाभिमान-'सोऽहं' 'अहं' सहित वाला, ज्ञान-वैराग्य अनुभव वाला।। (3)

गुण-गुणी आदर सहित वाला, उनकी प्रशंसा-गुणग्रहण वाला।
प्रसन्नता-सन्तुष्टी सहित वाला, ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा रहित वाला।।
श्रद्धा सह प्रज्ञा से सहित वाला, अन्धविश्वास नकलची रहित वाला।
पर प्रतिस्पर्द्धा से रहित प्रगति वाला, स्वतंत्र-स्वावलम्ब-मौलिक वाला।। (4)

अनेकान्त समन्वय सहितवाला, हठाग्रह-दुराग्रह रहित वाला।
आत्मविश्लेषण-आत्मशुद्धि वाला, अनुभव से अनुभव बढ़ाने वाला।।
आत्मउपलब्धि का परम लक्ष्य वाला, इस हेतु ही सभी साधने वाला।
ज्ञान चेतना से सकारात्मक वाला, 'कनक'स्वयं को चैतन्य मानने वाला। (5)

नन्दौड़ दि. 24.09.2018 मध्याह्न

कर्मफल चेतना कर्म चेतना ज्ञान चेतना (अन्तः चेतना-स्वचेतन कर्मफल व कर्म चेतना से परे ज्ञान चेतना/(अति चेतना) बढ़ाऊँ

(चालः 1. मन रे...2. सायोनारा...) - आचार्य कनकनन्दी

आत्मन् तू! ज्ञान चेतना बढ़ाओ!ऽऽ
''कर्मफल चेतना'' व कर्म चेतना'' परे...''अति चेतना''(अन्तः चेतना) बढ़ाओऽऽऽ आत्मन्...(ध्रुव
कर्म उदय से प्राप्त तन-मन-अक्ष...कषाय-संज्ञा व सुख-दुखऽऽऽ
यह सभी नहीं तेरा शुद्ध स्वरूप...अतः इस रूप तू न परिणमन करऽऽ

इस रूप परिणमन (परिणाम) कर्म फल चेतनाऽऽ
/इससे न (नष्ट) होती ज्ञान चेतना ऽऽ...आत्मन्! (1)

''कर्म फल चेतना होती स्थावर जीवों में स्थावर जीव होते ''बहिरात्मा''ऽऽ
''बहिरात्मा'' होते आत्मज्ञान रहित...न जानते आत्मा व परमात्माऽऽ
चेतना की अतिनिम्नावस्था ऽऽ
ज्ञान चेतना से विपरीत अवस्था ऽऽ आत्मन् (2)
त्रस होते (हैं) कर्म फल कर्म चेतना युक्त...चारों ही गति के त्रस जीवऽऽ
कर्मफल चेतना के परिणमन सहित...प्रतिक्रिया भी करते मोह सहित ऽऽ
होते ''ज्ञान चेतना'' से रहितऽऽ
आध्यात्मिक श्रद्धा-प्रज्ञा रहितऽऽ आत्मन्... (3)
ऐसे जीव करते अधिक प्रतिक्रिया...राग-द्वेष-काम-क्रोध मोह युक्त...
आहार-मैथुन-परिग्रह-वर्चस्व...सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-निमित्तऽऽ
स्व-पर के होते अधिक घातक ऽऽऽ आत्मन् (4)
हर धर्म के रूढिवादी मोही मानव...तथाहि जाति-भाषा व देश के ऽऽ
साक्षरी-निरक्षरी-सत्ता-सम्पत्ति वाले...होते ज्ञान चेतना से रहित ऽऽ
स्व शुद्धात्मा अनुभव से रहित ऽऽऽ आत्मन् (5)
दोनों चेतना परे होती ज्ञान चेतना ऽऽ जो स्व-शुद्धात्मा श्रद्धा-प्रज्ञा युक्त ऽऽऽ
दोनों चेतना के भाव काम परे...आत्मिक शुद्धि व शान्ति सहितऽऽऽ
राग-द्वेष मोहादि से विरक्त चित्त ऽऽऽ आत्मन् (6)
इससे ही बढते पंच सुज्ञान...मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ऽऽऽ
कुज्ञान नष्ट होते अल्पज्ञता घटती...''अन्तः चेतना'' या ''अति चेतना'' बढेऽऽऽ
बिना पढ़े-सुने देखे ज्ञान होवे ऽऽ आत्मन्... (7)
बुद्धि लब्धि व डिग्री से परे ज्ञान...यथा ऋद्धिधारी से ले सर्वज्ञऽऽऽ
इस ज्ञान हेतु बढ़ाओ ''ज्ञान चेतना''...इस हेतु ही करो सभी साधनाऽऽऽ
''कनक' शुद्ध-बुद्ध-आनन्द बनना ऽऽऽ
वीतराग विज्ञान घन शुद्धात्मा ऽऽऽ आत्मन्... (8)

नन्दौड़ - दि. 16.9.2018 रात्रि 8.36

(यह कविता आगम व आधुनिक परामनोविज्ञान व कवि के अनुभव से अनुसृत हुई)

सन्दर्भ -

विजयी शक्ति

प्राचीन यूनान की एक कहानी है। संसार बनाते वक्त माउंट ऑलंपस पर बहुत से देवता बैठे थे। उन्होंने धरती और इंसान को बना दिया था, पक्षियों और जानवरों, समुद्री जीवो, पौधों और फूलों व सारे प्राणियों को भी बना दिया था। सिर्फ़ एक चीज बची और वह थी जीवन के रहस्य को किसी ऐसी जगह छिपाना, जहाँ इसका पता तब तक न चल पाए, जब तक कि व्यक्ति अपनी चेतना का विकास और विस्तार न कर ले यानी जब तक कि वह उसके लिए तैयार न हो जाए।

देवताओं के बीच काफ़ी बहस हुई कि जीवन का रहस्य कहाँ छिपाना चाहिए। एक ने कहा, ''चलो, हम इसे सबसे ऊँचे पर्वत पर छिपा देते हैं। मनुष्य इसे वहाँ कभी नही खोज पाएगा।'' लेकिन दूसरे देवता ने जवाब दिया, ''हमने मनुष्य में असीम जिज्ञासा और महत्वकांक्षा भरी है; वह अंततः सबसे ऊँचे पर्वत पर भी पहुँच जाएगा।''

फिर एक ने सुझाव दिया कि जीवन के रहस्य को सबसे गहरे समुद्र की तलहटी में छिपाना चाहिए। इस पर एक और देवता ने कहा, ''हमने मनुष्य में असीमित कल्पना और अपना जगत खोजने-समझने की ज्वलंत इच्छा भरी है। देर-सबेर मनुष्य सबसे गहरे समुद्र की तलहटी तक भी पहुँच जाएगा।''

आख़िर एक देवता ने समाधान देते हुए कहा, ''चलो हम जीवन के रहस्य को उस आख़िरी जगह छिपाते हैं, जहाँ इंसान इसकी तलाश करेगा- एक ऐसी जगह, जहाँ वह सिर्फ़ तभी पहुँचेगा, जब वह बाक़ी सारी संभावनाओं की तलाश कर लेगा और आख़िरकार इसके लिए तैयार होगा।''

बाक़ी देवताओं ने पूछा ''वह जगह कौन सी है ?'' इस पर पहले देवता ने जवाब दिया, ''हम इसे इंसान के हृदय की गहराई में छिपाएँगे।'' और उन्होंने ऐसा ही किया।

पाँच हज़ार सालों के इतिहास में हर सभ्यता के कुछ सबसे समझदार लोगों ने युगों-युगों के रहस्य की कूंजी खोजने की कोशिश की है, जिससे वे हर इंसान के भीतर गहराई में छिपे क्षमता के विशाल ख़जाने का ताला खोल सकें। उन्होंने संस्थाएँ

बनाई, गोपनीय समूह बनाए और निजी समुदाय बनाए, जो आख़िरी और सबसे पहली सरहद खोजने के प्रति समर्पित थेः मानवीय मस्तिष्क की आंतरिक शक्तियाँ।

कई स्त्री-पुरुषों ने अपनी पूरी जिंदगी धार्मिक समुदाय, मठ और रहस्यमयी संस्थाएँ बनाने में लगा दी, जिनमें विस्तृत कर्मकांड और दीक्षाएँ थीं, जहाँ महान रहस्य के दृश्य उनके सामने प्रकट होते थे।

प्रगति का अभियान

ये रहस्य खोजने में पिछले सौ सालों में जितनी ज़्यादा प्रगति हुई है, उतनी बाक़ी सदियों को मिलाकर भी नहीं हुई। हर व्यक्ति के लिए सेहत, खुशी और दौलत की कुंजी उस चीज़ में पाई जाती है, जिसे अतिचेतन मन (Superconious mind) कहते हैं। यही सदियों पुराना रहस्य है।

अपने अतिचेतन मन का सही इस्तेमाल करने पर आप किसी भी समस्या को सुलझा सकते हैं, किसी भी बाधा को पार कर सकते हैं और कोई भी लक्ष्य हासिल कर सकते हैं, बशर्ते आपके भीतर सच्ची इच्छा हो। इस पर समस्त व्यक्तिगत महानता और व्यक्तिगत उपलब्धि आधारित है। दरअसल, हमने अब तक जिन चीज़ों पर भी बात की है, वे सभी आपके अपने अतिचेतन मन की शक्तियों के इस्तेमाल के लिए तैयार कर रही थीं। इससे आपके जीवन की गुणवत्ता का कायाकल्प हो जाएगा।

इस दुनिया के कई महानतम चिंतक इस शक्ति से अचंभित है और उन्होंने इसके बारे में लिखते समय इसे कई नाम दिए हैं। रूसी थियोसॉफिस्ट मैडम ब्लावेट्स्की ने इसे ''गोपनीय सिद्धांत'' कहा था। कवि और दार्शनिक रैल्फ़ वाल्डो इमर्सन ने इसे ''ओवरसोल'' नाम देते हुए कहा था, ''हम एक असीम बुद्धि की गोद में हैं, जो हमारी हर ज़रूरत पर प्रतिक्रिया करती है।'' इमर्सन ने इस बुद्धि की तुलना एक महासागर से की थी। उनका कहना था कि जब हम इससे ज्ञान प्राप्त करते हैं, तो हम पहचान लेते हैं कि यह किसी अदृश्य स्रोत से आ रहा है और हमारे सीमित मस्तिष्क के पार से आ रहा है।

नेपोलियन हिल ने इस शक्ति को ''असीम प्रज्ञा'' नाम देते हुए इसे ज्ञान का ब्रह्मांडीय भंडार और समस्त कल्पनाशीलता व रचनात्मकता का स्रोत कहा था।

उनका दावा था कि इस बुद्धि तक पहुँचने की योग्यता उन सैकड़ों दौलतमंद लोगों की महान सफलता का केंद्रीय हिस्सा थी, जिनसे उन्होंने बरसों तक बातचीत की थी।

स्विस मनोविश्लेषक काल युंग ने इसे ''अति चेतन मस्तिष्क'' (Supra conscious mind) नाम देते हुए कहा था कि इसमें मानवीय प्रजाति की अतीत, वर्तमान और भविष्य की समस्त बुद्धिमता है। इसे ''शाश्वत मस्तिष्क'' जैसे नाम भी दिए गए हैं। कई लोगों ने इसे ''ईश्वरीय मस्तिष्क'' या ''रचनात्मक अवचेतन'' भी कहा है।

आप इसे चाहे जो भी कहें, जब आप इसका दोहन करते हैं, इसका इस्तेमाल करते हैं और इसे नियमित रूप से अपना इस्तेमाल करने देते हैं, तो आप इतना कुछ हासिल कर सकते हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं है।

अगर आप पहले से ही न जानते हों, तो आपके सामने यह स्पष्ट करना बहुत मुश्किल होगा कि आपका अतिचेतन मन कैसे काम करता है। पूरे जीवन में आपने कई बार इसका अव्यवस्थित और बेतरतीब इस्तेमाल किया है। दरअसल, आपने आज तक जितना भी हासिल किया है, उसके ज़्यादातर हिस्से का श्रेय आपके इस शक्ति के संयोगवश इस्तेमाल को दिया जा सकता है। इस अध्याय में मेरा उद्देश्य आपको यह दिखाना है कि इसका इस्तेमाल क्रमबद्ध तरीक़े से किया जाए, ताकि आप अपने लिए संभव सेहत, ख़ुशी और दौलत की मात्रा को नाटकीय रूप से बढा सकें।

रचनात्मकता का स्रोत

अतिचेतन मन समस्त शुद्ध रचनात्मकता का स्रोत है। सारी महान कला, संगीत और साहित्य की जड़ें अतिचेतन मन में ही होती है। इमर्सन ने स्वीकार किया था कि उनके निबंध ''अपने आप लिखे जाते हैं।'' वे अपने डेस्क पर बैठते थे और शब्द अपने आप उनके भीतर से आकर कागज़ पर उतर आते थे। उनके निबंध अँग्रेजी भाषा के सबसे सुंदर और प्रेरक साहित्य में गिने जाते हैं।

मोज़ार्ट बहुत कम उम्र से ही संगीत की रचना कर रहे थे। वे अपने मस्तिष्क में संगीत को देख और सुन सकते थे। वे कागज़ पर पेन रखकर पहली बार में ही संगीत को बिलकुल आदर्श रूप में लिख सकते थे। मोजार्ट की संगीत पांडुलिपियाँ इतनी स्पष्ट थीं कि अमेड्यूस फ़िल्म में कोर्ट कंपोज़र सेलिअरी ने उनके बारे में कहा था, ''वे दुनिया

का सबसे सुंदर संगीत इस तरह लिखते हैं, जैसे डिक्टेशन ले रहे हों।''

बीथोवन, बाख़, बाह्म्स और स्ट्राविंस्की ने भी अपना महानतम संगीत लिखते समय अतिचेतन मन की मदद ली। जब भी आप कोई ऐसा संगीत सुनते हैं, कलाकृति देखते हैं या पुस्तक पढ़ते हैं, जो अजेय लगता है और आपके दिल को छू लेता है, तो दरअसल आपने एक अतिचेतन कृति का आनंद लिया है।

आविष्कार

नए आविष्कारों और वैज्ञानिक क्रांतियों का श्रेय भी अतिचेतन मन को जाता है। एडिसन ने नियमित रूप से अपने अतिचेतन मन का दोहन करके सैकड़ों सफल अविष्कार किए। निकोला टेस्ला, जो शायद अपने युग की महानतम विद्युत प्रतिभा थे, अपने दिमाग़ में ही इलेक्ट्रीक मोटर्स के मॉडल बना सकते थे, उन्हें अलग-अलग करके दोबारा बना सकते थे और उनमें तब तक सुधार कर सकते थे, जब तक कि वे आदर्श न बन जाएँ। इसके बाद वे वर्कशॉप में जाकर एक बिलकुल नई मशीन या मोटर तैयार कर देते थे, जो पहली बार में ही आदर्श तरीक़े से काम करती थी।

प्रेरणा

अतिचेतन मन समस्त प्रेरणा और रोमांच का स्रोत है, जिसे आप किसी नए विचार या संभावना के आने पर अनुभव करते हैं। यह अतींद्रिय ज्ञान, आभासों, और ज्ञान की कौंध के रूप में आपके सामने प्रकट होती है। यह आपके भीतर की ''धीमी आवाज़'' का स्रोत है। जब भी आप किसी समस्या से जूझते हैं और अचानक आपके मन में कोई बेहतरीन विचार आता है, जो आदर्श समाधान साबित होता है, तो उस वक़्त आप अपने अतिचेतन मन का दोहन कर रहे होते हैं। जब भी आप अपने सामने आने वाली चुनौती के बारे में कोई नया अंतर्ज्ञान अनुभव करते हैं, इसका मतलब है कि आपका अतिचेतन मन काम कर रहा है।

समस्त संगृहीत जानकारी तक पहुँच

जब आपका अतिचेतन मन किसी समस्या या लक्ष्य पर काम करता है, तो यह आपके अवचेतन मन में दर्ज सारी जानकारी तक पहुँच सकता है। यह आपके द्वारा अब तक सीखी या अनुभव की गई हर चीज़ का लाभ उठा सकता है।

इसमें सच और झूठ में फर्क़ करने की क्षमता होती है। हर व्यक्ति ने अपने स्मृति कोष में बहुत सी ऐसी जानकारियाँ भर रखी हैं, जो सत्य नहीं हैं। इनमें से कुछ महत्वहीन है, जैसे माउंट एवरेस्ट की वास्तविक ऊँचाई या संसार में शेरों की संख्या । दूसरी ओर, कुछ जानकारियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं, जैसे आपकी व्यक्तिगत दौलत को प्रभावित करने वाले अत्यावश्यक तथ्य। लेकिन सभी मामलों में अतिचेतन मन सिर्फ़ उसी संगृहीत जानकारी का प्रयोग करता है, जो सच्ची है। यह आपको ऐसे जवाब या समाधान सुझाता है, जो आपकी स्थिति के लिए उपयुक्त और सही होते हैं।

कई बार आपके मन में ऐसा विचार आएगा, जिसके बारे में आपको लगेगा कि वह सच नहीं है। बाद में पता चलेगा कि आपका ज्ञान अधूरा या ग़लत जानकारी पर आधारित था। आपका विरोधाभासी दिखने वाला विचार या समाधान अंत में सही साबित होता है। यही वह जवाब है, जिसकी आपको ज़रूरत है।

मस्तिष्क के बाहर की जानकारी तक पहुँच

अतिचेतन मन की पहुँच आपके व्यक्तिगत ज्ञान और अनुभव के बाहर भी होती है। यह दूसरों के ज्ञान तथा जानकारी तक पहुँच सकता है। यह दरअसल आपके मस्तिष्क-चेतन और अवचेतन मन के बाहर रहता है।

अंग्रेज माइकल फैरेडे को वैज्ञानिक बनने का कोई प्रशिक्षण नहीं मिला था। अचानक एक दिन वे आधी रात को जागे और उनके दिमाग़ में वैज्ञानिक फ़ार्मूले आ गए। उन्होंने बैठकर कई पेज गणितीय फार्मूले और वैज्ञानिक गणनाएँ लिखी, जो ऊर्जा के प्रवाह की तरह उनके भीतर से तेज़ी से निकल रही थी। उन्हें पूरा लिखने के बाद वे थककर दोबारा सो गए।

जब वे बाद में अपने नोट्स इंग्लैंड के सबसे ज्ञानी वैज्ञानिकों में से एक के पास ले गए, तो पता चला कि उन्होंने ऐसा ज्ञान पैदा कर दिया था, जो इससे पहले अस्तित्व में ही नहीं था। माइकल फ़ैरेडे के काम ने ली और डे फॉरेस्ट द्वारा वैक्यूम ट्यूब के विकास को प्रेरित किया और उस पूरे इलेक्ट्रॉनिक युग की नींव रखी, जिसमें हम इस वक़्त रहते हैं।

शाश्वत मस्तिष्क

आप चारों तरफ से एक शाश्वत मस्तिष्क से घिरे हैं, जिसमें जब तक मौजूद

सारी बुद्धि, विचार और ज्ञान भरा हुआ है, जो कभी रहा था या रहेगा। इस कारण दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में रहने वाले लोग अक्सर एक समय में ही एक ही विचार सोचते हैं और इस ऊर्जा का दोहन करते हैं।

हमारे सेमिनार में हिस्सा लेने वाला एक व्यक्ति कनाडा की एटॉमिक एनर्जी रिसर्च काउंसिल की एक टीम में काम कर चुका है। इस टीम ने गाया रे बैकफ्लैश मेज़रिंग डिवाइस विकसित किया था। इस मशीन को आदर्श बनाने में उन्हें दो साल का समय लगा, लेकिन कुंजी ज्ञान की सिर्फ़ एक कौंध थी, जो उसे प्रोजेक्ट पर काम करते समय मिली।

कुछ महीनों बाद एक अंतर्राष्ट्रीय सिम्पोज़ियम में, जिसमें सोवियत संघ के वैज्ञानिकों ने भी शिरकत की, उन्होंने पाया कि एक सोवियत वैज्ञानिक को भी लगभग उसी समय उसी तरह के ज्ञान की कौंध मिली थी, जिससे सोवियत संघ ने भी लगभग वही मशीन ठीक उसी तरह से बना ली थी। चूँकि दोनों ही प्रोजेक्ट अति गोपनीय थे,इसलिए उन्हें सार्वजनिक नहीं किया गया था और इस बात की कोई आशंका नहीं थी कि अतिचेतन मन के अलावा किसी अन्य माध्यम से रचनात्मक ज्ञान का आदान-प्रदान हुआ होगा।

आपके वर्तमान अनुभव के पार के विचार

जब आप क्रमबद्ध तरीक़े से अपनी अतिचेतन क्षमताओं का इस्तेमाल शुरू कर देते हैं, तो आपको अपने विचार हवा में से भी मिलने लगेंगे। लगभग हर व्यक्ति के मन में किसी नए प्रोडक्ट या सेवा का एक बेहतरीन विचार आया होगा, जिसे उसने यह सोचकर नज़रअंदाज कर दिया होगा कि उस क्षेत्र में कोई अनुभव नहीं है। लेकिन फिर उसने दो साल बाद किसी कंपनी को उसी प्रोडक्ट या सेवा के साथ आते हुए और दौलत कमाते हुए देखा होगा। यह अतिचेतन मन के कार्य करने का उदाहरण है।

विचार को नज़रअंदाज़ करने वाले व्यक्ति और विचार को लपकने वाले व्यक्ति के बीच फर्क़ सिर्फ इतना था कि उस पर काम करने वाले व्यक्ति का ख़ुद पर बहुत भरोसा था। उसे अपनी योग्यता पर भरोसा था कि वह उस विचार को हकीक़त मे बदल सकता है। बचपन की कंडिशनिंग के कारण हममें अपने विचारों को

नज़रअंदाज करने की प्रवृत्ति होती है और हम यह मान लेते हैं कि वे बहुत ज़्यादा मूल्यवान नहीं हो सकते, जबकि सच तो यह है कि वे हमारी पूरी ज़िंदगी बदल सकते हैं। जब आप अपनी अतिचेतना के ज्ञान का महत्व स्वीकार कर लेते हैं, तो आप अपने मन में आने वाले विचारों को देखकर हैरान रह जाएँगे। यही नहीं, इसके बाद जब अगली बार आपके मन में कोई विचार आएगा, तो आप उसके बारे में कुछ न कुछ करेंगे।

सतत कार्य

आपका अतिचेतन मन अचेतन स्तर पर साल में 365 दिन, हर दिन 24 घंटे काम करता है। एक बार जब आप अपने अवचेतन मन में किसी लक्ष्य या समस्या की प्रोग्रामिंग कर देते हैं और फिर उसे मुक्त कर देते हैं, तो यह आपके अतिचेतन मन तक पहुँच जाती है और वह इस पर काम करने लगता है। फिर आप अपनी दैनिक जिंदगी के सामान्य काम करते रहते हैं, जबकि आपकी चेतन और अवचेतन ऊर्जा सामने के काम पर केंद्रित रहती है। इस दौरान आपका अतिचेतन मन उन चीज़ों को आपके क़रीब लाता रहता है, जो लक्ष्य हासिल करने के लिए ज़रूरी है।

याद रखें, चेतन मन के कार्य हैं पहचानना, तुलना करना, विश्लेषण करना और फ़ैसला करना। अवचेतन मन जानकारी का संग्रह करता है, उसे खोजकर निकालता है और चेतन मन के आदेशों का पालन करता है। अतिचेतन मन इन दोनों के बाहर और परे काम करता है, लेकिन इन दोनों के माध्यम से इस तक पहुँचा जा सकता है।

लक्ष्य-केंद्रित प्रेरणा

आपका अतिचेतन मन लक्ष्य-केंद्रित प्रेरणा में सक्षम होता है। यह उस उत्साह और रोमांच का स्रोत है, जिसे आप लक्ष्य तय करते समय और हासिल करने की ओर आगे बढ़ते समय महसूस करते हैं। बहरहाल, प्रेरणा पैदा करने के लिए आपके अतिचेतन मन को स्पष्ट, विशिष्ट लक्ष्यों की ज़रूरत होती है, जिनके प्रति आप पूरी तरह समर्पित हो। फिर यह लक्ष्य हासिल करने के लिए विचार और ऊर्जा को मुक्त कर देता है।

अतिचेतन मन ''मुक्त ऊर्जा'' का स्रोत है। यह एक ऐसा चमत्कार है, जिसे

आप कई बार अनुभव कर चुके होंगे। यह तो मानसिक और शारीरिक ऊर्जा है, जो अति रोमांच, तीव्र इच्छा या बड़े जोख़िम के दौरान आपमें प्रवाहित होती है। जब आप अपने किसी महत्वपूर्ण लक्ष्य की दिशा में काम कर रहे होते हैं तो अक्सर अपने भीतर ऊर्जा का असीम प्रवाह अनुभव करते हैं। आपको बहुत कम नींद की जरूरत होती है और आप दिन-रात लगातार काम करने में समर्थ होते हैं। आम तौर पर इसे ''नर्वस एनर्जी'' कहा जाता है, लेकिन जाहिर है, हम जानते हैं कि नब्ज़ में अपनी कोई ऊर्जा नहीं होती।

क्या आपने कभी अनुभव किया कि किसी आपातकालीन स्थिति में आप आधी रात को जागे हो ? एक ही पल में आप खुद को पूरी तरह जाग्रत, चौकन्ना और प्रभावी ढंग से काम करते हुए पाते हैं, जबकि कुछ समय पहले आप बहुत थके-हारे और गहरी नींद में थे। यह आपके अतिचेतन मन की ''मुक्त ऊर्जा'' के दोहन की ही मिसाल है।

इस ''मुक्त ऊर्जा'' का एक और उदाहरण उन लोगों के चमत्कारी प्रमाण हैं, जिन्होंने जान जोखिम वाली स्थितियों में अति-मानवीय कार्य किए हैं। फ्लोरिडा में कुछ साल पहले सड़सठ साल की एक कमज़ोर दादी मिसेज़ लॉरा शुल्ज़ अपने किचन में काम कर रही थी, जबकि उनका चालीस साल का बेटा ड्राइववे में कार के नीचे घुसकर उसकी मरम्मत कर रहा था। अचानक जैक फिसल गया और कार बेटे के सीने पर गिर गई, जिससे वह दब गया और उसकी जान जोखिम में आ गई।

उसकी दर्द भरी चीखे़ सुनकर बूढ़ी माँ भागती हुई मकान से बाहर निकलीं। उन्होंने देखा कि क्या हुआ और तत्काल काम में जुट गई। वे तेज़ी से आगे भागी, बम्पर उठाया और अपने बेटे के सीने से दो हज़ार पौंड भारी कार उठाकर उसकी जान बचा ली।

दो पड़ोसियों ने उन्हें ऐसा करते देखा। लेकिन बाद में रिपोर्टर्स को दिए गए इंटरव्यू में उस महिला ने इस घटना से इंकार कर दिया। उन्होंने इस अनुभव को अपने दिमाग़ से पूरी तरह मिटा दिया, क्योंकि यह उससे बहुत परे था, जिसे वे अपनी शक्ति के बारे में सच ''मानती'' थी।

जब आप अपने अतिचेतन मन के पूर्ण सामंजस्य में होते हैं, तो आपको सेहत, ऊर्जा और शक्ति के ऐसे सतत प्रवाह का अनुभव होगा, जिसकी बदौलत

आप कुछ घंटों में ही इतना कुछ कर सकते हैं, जिसे करने में आम आदमी को एक हफ़्ता लग जाता है। आप ''प्रवाह'' (flow) की ऐसी अवस्था में दाख़िल होंगे, जहाँ दुनिया धीमी और आपका मस्तिष्क तेज़ नजर आता है। इस दौरान आपमें उच्च गुणवत्ता के बहुत सारे काम बहुत कम समय में करने की सरल योग्यता नज़र आती है। आपको बहुत अच्छा और अद्भुत एहसास होता है। आपका मस्तिष्क विचारों से लबालब होता है, जो आपकी और ठीक उसी समय प्रवाहित होते हैं, जब आपको उनकी ज़रूरत होती है।

स्पष्ट आदेश

आपका अतिचेतन मन स्पष्ट, आधिकारिक आदेशों या जिन्हें हम ''सकारात्मक संकल्प'' कहते हैं, पर सबसे अच्छी प्रतिक्रिया करता है। जब आप अपने चेतन मन से अवचेतन मन तक किसी लक्ष्य या इच्छा का संकल्प करते हैं, तो हर बार आप अतिचेतन मन को उन विचारों और ऊर्जा को मुक्त करने के लिए सक्रिय कर देते हैं, जिनकी जरूरत आपको अपनी इच्छा साकार करने के लिए होती है।

इसीलिए निर्णायकता सफल स्त्री-पुरुषों का इतना महत्वपूर्ण गुण होता है। चूँकि वे ठीक-ठीक जानते हैं कि वे क्या चाहते हैं, इसलिए उनकी अतिचेतन शक्तियाँ उनके लिए लगातार काम करती है। आप यह भी पाएँगे कि जब आप टालमटोल करना छोड़ देते हैं और एक दृढ़, स्पष्ट निर्णय ले लेते हैं कि आप कुछ करने जा रहे हैं, कीमत चाहे जो हो, तो अचानक हर चीज़ आपके पक्ष में काम करने लगती है।

जब आप संकल्प करते हैं, ''मैं खुद को पसंद करता हूँ'' या ''मैं यह काम कर सकता हूँ'' या ''मैं हर साल XXX डॉलर कमाता हूँ '' तो आप अपनी सभी मानसिक शक्तियों का मास्टर स्विच चालू कर देते हैं। आप सबसे सशक्त संभव तरीके़ से इसका दोहन करने लगते हैं।

मैंने पहले ज़िक्र किया था अपनी पूर्ण क्षमता तक न पहुँच पाने का बुनियादी कारण यह होता है कि लोग गंभीर नहीं होते। गंभीर नहीं होने से मेरा मतलब यह है कि वे जिंदगी को बेहतर करने वाले उन निर्णयों को ही नहीं लेते, जो उन्हें लेने ही चाहिए।

आप यह देखकर हैरान रह जाएँगे कि जब आप दृढ़ निर्णय ले लेते है और

अपने पीछे के सारे मानसिक पुल जला देते हैं, जो आप कितने ज़्यादा प्रभावी बन जाएँगे। मैदान छोड़ने या पीछे हटने या कुछ और करने के सारे विचारों को बाहर निकालन दें। निर्णय लें कि आप वह काम करने जा रहे हैं, जिसकी ज़रूरत आपको लक्ष्य तक पहुँचने के लिए है। यह सोचें कि कोई भी चीज़ आपको नहीं रोक सकती। ऐसा होने पर औसत योग्यताओं वाला व्यक्ति भी असाधारण सफलता पा लेता है।

हर समस्या का समाधान

आपका अतिचेतन मन आपके लक्ष्य की राह में आने वाली हर समस्या को अपने आप और लगातार सुलझाता चला जाता है, बशर्ते आपक लक्ष्य स्पष्ट हो। अगर आपका लक्ष्य बहुत सा पैसा बनाना है और आप इस बारे में बिलकुल स्पष्ट हो कि आप कितना पैसा कमाना और जोड़ना चाहते हैं तो आप अंततः इसे यक़ीनन हासिल कर लेंगे।

मानव जाति का इतिहास उन लोगों की कहानियों से ही लिखा गया है, जिन्होंने ख़ुद के लिए बड़े रोमांचक लक्ष्य तय किए और जो बिना हार माने जुटे रहे, कई बार तो बरसों तक, जब तक कि वे आखिरकार उस लक्ष्य तक नहीं पहुँच गए। प्रसिद्ध मैंनेजमेंट विशेषज्ञ और द इफेक्टिव एक्जीक्यूटिव के लेखक पीटर ड्रकर कहते हैं, जब भी आप कहीं भी कोई बेहतरीन काम देखते हैं, तो उसके पीछे आप एकल उद्देश्य वाले किसी एकाग्रचित्त व्यक्ति को पाएँगे।'' जब भी आप कोई महान उपलब्धि देखते हैं, तो उसके पीछे आप ऐसा व्यक्ति देखेंगे, जो इस बारे में बिलकुल स्पष्ट था कि वह क्या करना चाहता है और जो उसे हासिल करने के लिए हर जरूरी काम करने का इच्छुक था, चाहे उसमें जितना भी समय लगे।

आपका मुख्य काम अपने विचारों को लक्ष्य पर केंद्रित रखना है। आपका अतिचेतन मन अपने आप और लगातार आपके लक्ष्य की राह में आने वाली हर समस्या सुलझा देगा। आप इस अतिचेतन शक्ति पर पक्का भरोसा कर सकते हैं। शर्त सिर्फ़ इतनी है कि आपका लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए।

उचित मानसिक जलवायु

आपका अतिचेतन मन आस्था और स्वीकृति की मानसिक जलवायु में सबसे अच्छी तरह काम करता है। विश्वास के साथ अपेक्षा का यह नज़रिया भी होना चाहिए

कि आपकी समस्याएँ सुलझ जाएँगी, बाधाएँ हट जाएँगी और लक्ष्य पूरे हो जाएँगे। यह नज़रिया ही वह मानसिक अवस्था हैं, जो विचार की कंपन दर बढ़ा देती है। इससे आपका अतिचेतन मन अपने सर्वश्रेष्ठ स्तर पर कार्य करने लगता है।

हालाँकि शुरुआत में यह मुश्किल होता है लेकिन जब आप किसी स्थिति के परिणाम को लेकर पूरी तरह शिथिल हो जाते है, तब स्थिति अपने आप सुलझ जाती है और कई बार तो बहुत ही अप्रत्याशित तरीक़े से। बहरहाल, परिणामस्वरूप आपको हमेशा माँगी हुई चीज़ मिल जाएगी, और कई बार तो उससे भी ज़्यादा मिलेगा। ऐसा लगता है कि आप ''प्रयास'' में जितनी कम मेहनत करते हैं, आपका अतिचेतन मन आपकी मनचाही चीजों को आप तक पहुंचाने के लिए उतना ही बेहतर काम करता है।

सभी महान स्त्री-पुरुष आस्थावान थे,। वे ''चिंता'' नहीं करते थे। उन्होंने ब्रह्मांड की अच्छाई में विश्वास करने की बच्चों जैसी योग्यता विकसित कर ली थी- यह सरल आस्था कि हर चीज़ अपने निर्धारित समय पर उसी तरह हो रही है, जैसी होनी चाहिए। उनमें शांति और आत्मविश्वास का नज़रिया था। उन्हें पूरा विश्वास था कि उनसे बड़ी कोई शक्ति उनकी मदद कर रही हैं।

किसी भी तरह की नकारात्मकता, क्रोध, चिंता या अधीरता आपके अतिचेतन मन को बंद कर देते है। यह आपकी शक्तियाँ कम कर देती है। यह आपकी सोच को धुँधला कर देती है। यह उन संदेशों को दुविधापूर्ण बना देती है, जिन्हें आप अपने चेतन से अवचेतन मन की ओर भेजते हैं। किसी भी तरह की विनाशकारी भावनाएँ उस शांत, सकारात्मक नज़रिए के साथ हस्तक्षेप करती है, जिसकी जरूरत आपके अतिचेतन को आदर्श कार्य करने के लिए होती है।

यह आपकी ओर वे अनुभव लाता है, जिनकी आपको ज़रूरत है

आपका अतिचेतन मन आपके जीवन में ऐसे अनुभव लाता है, जिनकी ज़रूरत आपको सफलता पाने के लिए होती है। चूँकि आप भी स्थाई तौर पर बाहर ऐसी कोई चीज़ हासिल नहीं कर सकते, जिसके लिए आप भीतर से पूरी तरह तैयार न हो, इसलिए जब भी आप किसी तरह का कोई लक्ष्य तय करते हैं, तो आपको उस

बिंदु तक विकास करना होगा, जहाँ आप उसे हासिल करने के लिए तैयार हो जाएँ। आपका अतिचेतन मन ऐसे अनुभवों से आपका मार्गदर्शन करेगा, जिनकी आपको जरूरत है। यह आपको ऐसे सबक़ सिखाएगा, जिन्हें आपको सीखना ही होगा, ताकि जब आप आख़िरकार अपनी मंज़िल पर पहुँचे, तो यह लगभग एंटी-क्लाइमैक्स की तरह लगे। तब तक आप अपनी मनचाही बाहरी वास्तविकता के अनुरूप मानसिक समतुल्य बना चुके होंगे।

यह बहुत महत्वपूर्ण बिंदु है : अगर आप कोई ऐसी चीज़ हासिल कर लेते हैं, जिसके लिए आपने खुद को मानसिक रूप से तैयार न किया हो, तो आप उसे क़ायम नहीं रख पाएँगे। अगर आप अप्रत्याशित रूप से बहुत सा पैसा कमा लें और आपकी आत्म-अवरधारणा उसके अनुरूप न हो, तो अवचेतन रूप से आप उस पैसे से छुटकारा पाने वाले व्यवहार में जुट जाएँगे। इसीलिए यह कहावत है, ''आसानी से आता है, आसानी से जाता है।''

बहरहाल, अगर आप धीरे-धीरे कामयाबी हासिल करते हैं, इंसान के रूप में अंदर से विकास करते हैं, बाहर अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाते हैं, तो आप तैयार हो जाते हैं। तैयार होने के बाद जब आप आख़िरकार जीवन में अपनी मनचाही स्थिति तक पहुँचते हैं, तो आप उसे अनंत काल तक क़ायम रख सकते हैं।

आप अगर अपनी ज़िंदगी को पलटकर देखें, तो पाएँगे कि आपको लगभग हर सार्थक चीज़ हासिल करने से पहले मुश्किलें, निराशाएँ और अस्थायी असफलताएँ नज़र आई थी। अक्सर आपको डर, तनाव और चिंता के भावनात्मक झूले पर सवारी करनी पड़ी थी। बहरहाल, पुनरावलोकन में आप देख सकते हैं कि वे सभी मुश्किल अनुभव आपके लिए अनिवार्य थे, ताकि आप अपनी भीतरी दुनिया को बदल लें और अपना अंतिम लक्ष्य हासिल कर लें।

यह एक बहुत महत्वपूर्ण बिंदु है। आपका अतिचेतन मन बाधाओं या सीखने के अनुभवों की शृँखला बनाता है, ताकि यह ठीक वही सिखा सके, जिसे सीखने की आपको ज़रूरत है। आपका अतिचेतन मन बहुत धैर्यवान भी है। अगर आप सबक़ नहीं सीखते, चाहे यह संबंधों के क्षेत्र में हो या बिज़नेस के, पैसे के क्षेत्र में हो या सेहत के, तो अतिचेतन मन आपकी ओर सीखने के वही अनुभव बार-बार भेजेगा, जब तक कि अंततः आप वो नहीं सीख नहीं जाते, जिसे सीखने की आपको

ज़रूरत है। तभी, और सिर्फ़ तभी, आपको अपने विकास के अगले पायदान पर पहुँचने की अनुमति मिलती है।

नेपोलियन हिल ने जब दौलतमंद व्यक्तियों से बातचीत और सवाल-जवाब किए, तो उन्हें एक अजीब चीज़ का पता चला। सभी दौलतमंद व्यक्तियों को उनकी सबसे बड़ी सफलता तब मिली, जब वे अपनी सबसे बड़ी असफलता से एक क़दम आगे निकल गए। जब हर बाहरी परिस्थिति यह सुझाव दे रही थी कि अब उन्हें वह काम छोड़ देना चाहिए और हार मान लेनी चाहिए, तब वे अपने लक्ष्यों तक पहुँचने के सबसे क़रीब थे।

ऐसा लगता है, जैसे मंज़िल पर पहुँचने से ठीक पहले आपका अतिचेतन मन आख़िरी इम्तहान लेता है। जब आप सीखने के अपने सबसे मुश्किल अनुभवों से गुज़रेंगे, तो आपको मस्तिष्क पर नियंत्रण करने की अपनी योग्याता का इस्तेमाल करना होगा। तब आपको यह विश्वास रखना होगा कि आप जिस मुश्किल का सामना कर रहे हैं, वह तो बस प्रक्रिया का हिस्सा है, जो अंततः आपको लक्ष्य तक पहँचा देगी।

सफल स्त्री-पुरुषों का एक गुण यह है कि वे कभी ''असफलता'' शब्द का प्रयोग नहीं करते। वे अस्थायी पराजयों और विपत्तियों को कुछ सिखाने वाला अनुभव मानते हैं, जो उन्हें इस बारे में सबक़ देती हैं कि सफल कैसे होना है। वे हर बाधा या निराशा के भीतर समान या ज़्यादा बड़े लाभ का बीज देखते हैं। वे हर अनुभव से सीखते हैं। वे विचलित होने से इंकार कर देते हैं। वे अपने मस्तिष्क को शांत, सकारात्मक और अपने लक्ष्यों पर केंद्रित रखते हैं। परिणामस्वरूप, उनकी अतिचेतन क्षमताएँ सक्रिय बनी रहती है।

इस्तेमाल करें या गँवा दें

जब आप अपने अतिचेतन मन का इस्तेमाल करते हैं और उस पर भरोसा करते हैं, तो उसकी क्षमता बढ़ जाती है। लोग महान चीज़े तभी हासिल कर पाते हैं जब वे अपने चारों ओर व्याप्त इस रहस्यमयी शक्ति पर पूरी तरह से भरोसा करने लगते हैं। ''इस्तेमाल का नियम'' कहता है, 'अगर आप इसका इस्तेमाल नहीं करते तो आप इसे गँवा देते हैं।'' यह बताता है कि आप जिन मानसिक या शारीरिक क्षमताओं का इस्तेमाल करते हैं, वे आपके आदेशों के प्रति ज़्यादा प्रतिक्रियाशील और

ज़्यादा शक्तिशाली बन जाती है। जब आप अपने अतिचेतन मन से बार-बार कहते हैं कि वो आपको मार्गदर्शन दे, प्रेरित करें, ज्ञान और राह में आने वाली हर समस्या को सुलझाए, तो आप इसकी आदत डाल लेते हैं और इसके बाद यह हर दिन ज़्यादा तेज़ी और कार्यकुशलता से काम करेगा।

यह आपको अचूक मार्गदर्शन देता है

अतिचेतन मन आपके सभी शब्दों और कामों व उनके प्रभावों को इस तरह से बनाता है, ताकि वे आपकी आत्म-अवधारणा और प्रमुख लक्ष्यों के सामंजस्य में हों। आप जब अपने अतिचेतन के निकट संपर्क में रहेंगे, तो हमेशा, हर स्थिति में सही चीज़ कहने और करने के लिए प्रेरित होंगे।

कई बार आपके मुँह से ऐसे शब्द अपने आप निकल पड़ेंगे, जो बाद में सही साबित होंगे। कई बार आपमें कोई पुस्तक या टेप ख़रीदने, किसी को फ़ोन करने या किसी से मिलने जाने, कोई चिट्ठी लिखने या कोई ऐसा निर्णय लेने की इच्छा जागेगी, जिसके बारे में बाद में पता चलेगा कि आपको उस वक्त ठीक वह चीज़ करनी चाहिए थी। आप किसी पुस्तक या पत्रिका को उठाएँगे, जो ठीक उसी पेज पर खुलेगी, जिसमें वह जवाब होगा, जिसकी आपको ज़रूरत है। इस महान शक्ति पर आप जितना ज़्यादा भरोसा करेंगे, ऐसी घटनाएँ उतनी ही ज्यादा होगी।

(अधिकतम सफलता, ब्रायन ट्रेसी)

आप भी ओवरकॉन्फिसडेंस में तो नहीं ?

आत्मविश्वास और घमंड के बीच एक बहुत बारीक-सी रेखा होती है। अगर हम उसे पार कर जाते हैं, तो हमारा व्यवहार हमें घमंडी और अक्खड़ साबित कर सकता है। कहीं आप भी तो खुद को जरूरत से ज्यादा आत्मविश्वासी दिखाने की कोशिश में यही गलती तो नहीं कर रहे? ये 6 बातें बताएंगी कि कहीं आपका कॉन्फिडेंस भी ओवरकॉन्फिडेंस तो नहीं।

तुम तो पागल हो

अगर आप बात-बात में सामने वाले से कहते हैं तुम बेवकूफ हो, तुम पागल हो या यह कि तुम्हें कुछ नहीं आता। इसका सीधा-सा मतलब हैं कि आप खुद को ही

सही समझते हैं। सामने वाले की बातों या काम की आपको कद्र नहीं है। ये बाते भले ही आप बहुत आत्मविश्वास के साथ बोले, मगर इससे आपके लिए लोगों के मन में खराब छवि ही बनेगी। अगर कोई व्यक्ति कुछ गलत भी कह रहा है, तो भी हमें अपनी बात को कहने का तरीका आना चाहिए। न कि सामने वाले को नीचा दिखाना चाहिए।

मैं फलां को जानता हूं

कुछ लोगों की आदत होती हैं कि वे बात-बात में जताना चाहते हैं कि किसी बड़े आदमी से उनके अच्छे सम्बन्ध हैं। मैं अलाने को जानता हूं। फलाने ने मुझे फोन करके यह कहा। यह सब बताने के लिए वे बिना बात बहाने से उस व्यक्ति का नाम लेते हैं। कुछ लोग बातों-बातों में यह बताने लगते हैं कि वे हवाईजहाज या राजधानी-शताब्दी से सफर करके आए हैं। या यह कि वे फलाने महंगे रेस्टॉरेंट गए थे। ये सभी बातें अपरिपक्वता का परिचय देती है।

आंखे नहीं मिलाते

घमंडी लोगों को अपनी बात कह देने की जल्दी होती है। वे दूसरे को सुनना नहीं चाहते। उन्हें लगता है कि वे जो कहते या जानते हैं, वही सही है। ऐसे लोग आपसे बात करते हुए जल्दबाजी में होते हैं। वे आपकी आँखों में देख कर बात नहीं करते। आपको हीन महसूस कराते हैं। बोलने नहीं देते। आपकी हर बात काटते है। ऐसे लोगों में धैर्य का अभाव होता है। जबकि जो लोग वास्तव में आत्मविश्वास से भरे होते हैं, वे आपकी आंखों में देख कर बात करते हैं। वे आपको महसूस कराते हैं कि आप महत्वपूर्ण हैं। जताते हैं कि वे आपकी बात सुनना चाहते हैं।

अंगुली दिखा कर बात करना

अक्खड़ लोगों की एक पहचान होती है। वे हर जगह खुद को सबसे बेहतर साबित करना चाहते हैं। अपने आगे वे किसी को कुछ समझते नहीं है। दूसरों की तरफ अंगुली दिखाकर बात करना या किसी के सीने पर उंगली रख कर उसे कुछ समझाना, अंगुली या हाथ से जाने का इशारा करना। ऐसा व्यवहार वे लोग ही करते हैं, जिनका आत्मविश्वास अक्खड़पन की सीमा पार कर चुका होता है।

हर बात का जवाब है

समझदार लोगों को जब कोई चीज नहीं पता होती, तो वे कहते हैं- मुझे पता नहीं, लेकिन मैं पता करूंगा या यह कि मेरे लिए यह नई जानकारी है। बताने के लिए शुक्रिया। घमंडी व्यक्ति कभी यह बात नहीं स्वीकार करता कि उसे कोई बात पता नहीं है। वह उल्टा-सीधा कुछ भी बोल कर खुद को समझदार और ज्ञानी साबित कर देना चाहता है।

यह तो कुछ भी नहीं है

आपका सामना ऐसे लोगों से कई बार हुआ होगा, जो हमेशा डींगे हांकते रहते हैं। मान लीलिए आप उन्हें अपने नए जूते दिखाते हैं, तो वे कहेंगे-यार, जूते तो केवल रीबॉक के अच्छे होते हैं, मैं वही पहनता हूं। या आप उन्हें बताते हैं कि आपने कोई मूवी देखी, तो वे कहेंगे यह भी कोई मूवी है ? अरे कल मैंने वह मूवी देखी थी, देखना है, तो उसे देखो।

ऐसे लोगों के लिए दूसरों की उपलब्धियां या अनुभव कोई मायने नहीं रखते। वे केवल अपनी ही तारीफ करना और सुनना चाहते हैं। आपके अनुभव या उपलब्धि पर वे यही कहते पाए जाएंगे- यह तो कुछ भी नहीं है। मैंने वह किया हुआ है।

मैं हूँ नित्य नूतन-नित्य पुरातन शाश्वत आत्मा

(मैं हूँ भाव एवं क्रियावाला महानतम जीव द्रव्य)

(मोक्ष में ही परम सर्वोदय-परमसमता-स्व आत्म गौरव-स्वाभिमान)

(चाल : भातुकली...(मराठी) क्या मिलिए...) -आचार्य कनकनन्दी

कितना महान् है कितना पावन है मेरा सच्चिदानन्द स्वभाव।
मैं भी भाव व क्रिया सहित अशुद्ध से ले शुद्ध पर्यन्त।। (1)
'सद् द्रव्य लक्षणं' होने से मैं हूँ सत्यस्वरूप जीव द्रव्य।
''उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्'' होने से मैं उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्त।। (2)
अनादि कर्म बन्ध के कारण बना हूँ अनादि से मैं अशुद्ध रूप।
आत्मसाधना से कर्म नाशकर मैं बनूँगा शुद्ध-बुद्ध आनन्द रूप।। (3)
सत् होने से मैं हूँ द्रव्य तथा द्रव्य होने से मैं हूँ सत्।

अतएव मैं हूँ अनादि अनन्त या शाश्वतिक या सनातन।। (4)
तथापि मुझ में होता सदापरिणमन, परिणमन होने से मैं हूँ सत्तावान्/(भाववान्)।
अभी तक मुझ में हुए अशुद्ध परिणमन, जिसे कहते हैं पर्याय व्यञ्जन(5)
जन्म-मरण व शरीर धारण यह सब है अशुद्ध व्यञ्जन पर्याय।
जन्म से जन्मान्तर हेतु जो होता गमन उससे (में) भी मैं हूँ क्रियावान्।।(6)
जब मैं सम्पूर्ण कर्म नष्ट कर सिद्ध बन उर्ध्वगमन से पहुँचुँगा लोकाग्र
तब होगी शुद्ध अवस्था मेरी होगी ''शुद्ध अर्थ पर्याय'' व (शुद्ध) व्यञ्जन पर्याय।। (7)
उर्ध्वगमन तब होगी मेरी शुद्ध स्वाभाविक क्रिया एक समय में चौदह राजू।
उत्पाद-व्यय ध्रौव्य भी होंगे शुद्ध रूप, वह ही मेरी ''शुद्ध अर्थ पर्याय''।। (8)
एक समयवर्ती होगी मेरी ''अर्थपर्याय'', परिणमन मात्र होगा मेरा भाव।
परिस्पन्दन या स्थानान्तरीत प्राप्ति क्रिया से होते कर्मबन्ध से ले मोक्षगमन।।(9)
मोक्ष से मेरे अनन्तानन्त गुण व पर्यायें भी होते शुद्ध व प्रगट।
सादि अक्षय अनन्त तक मैं भोगूँगा अनन्त आत्मोत्थ सुख व वैभव।। (10)
ऐसा हूँ मैं महान् द्रव्य मुझ से महान् न कोई अन्य द्रव्य।
अनंतानन्त अन्य जीव भी मेरे सम कोई न छोटा-कोई न महान्।। (11)
छोटा-बड़ा तो कर्म सापेक्ष है, कर्म निरपेक्ष (मोक्ष) में सभी ही समान।
यह है ''परम सर्वोदय'' ''परम समता'', अतः मोक्ष ही 'कनक' का लक्ष्य।।(12)

नन्दौड़ 20.09.2018 रात्रि 08:42

सन्दर्भ-

भाव वाले एवं क्रिया वाले द्रव्य :-

उप्पाद्विदिभंगा पोग्गलजीवप्पगस्स लोगस्स।
परिणामादो जायंते संघादादो व भेदादो।। (129) प्र.सार

Of this physical world constituted ot matter and souls, three take place transformations consisting of origination, permanence and destruction collectively or individually.

आगे द्रव्यों में सक्रिय और निःक्रियभेद को दिखलाते हैं यह एक पातनिका है।

दूसरी यह है कि जीव और पुद्गल में अर्थ पर्याय और व्यंजन-पर्याय दोनों होती है जबकि शेष द्रव्यों में मुख्यता से अर्थ पर्याय होती है, इसको सिद्ध करते हैं-

(लोगस्स) इस छह द्रव्यमई लोक के (उप्पादट्ठिदिभंगा) उत्पाद, व्यय ध्रौव्य रूपी अर्थ. पर्याय होते हैं तथा (पोग्गलजीवप्पगस्स) पुद्गल और जीवमई लोक के अर्थात् पुद्गल और जीवों के (परिणाम) व्यंजन पर्याय रूपपरिणमन भी (संघादादो) संघात से (व) या (भेदादो) भेद से (जायदि) होते हैं।

यह लोक छह द्रव्यमई है। इन सब द्रव्यों में सत्पना होने से समय-समय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप परिणमन हुआ करते हैं इनको अर्थ-पर्याय कहते हैं। जीव और पुद्गलों में केवल अर्थ पर्याय ही नहीं होती किन्तु संघात या भेद से व्यंजन पर्यायें भी होती हैं अर्थात् धर्म, अधर्म आकाश तथा काल की मुख्यता से एक समयवर्ती अर्थ-पर्यायें ही होती हैं तथा जीव और पुद्गलों के अर्थ-पर्याय और व्यंजन-पर्याय दोनों होती है। किस तरह होती हैं, सो कहते हैं, जो समय समय परिणमन रूप अवस्था है उसको अर्थ पर्याय कहते हैं। जब यह जीव इस शरीर को त्यागकर भवान्तर शरीर के साथ मिलाप करता है तब विभाव व्यंजन पर्याय होती है। इसी ही कारण से कि यह जीव एक जन्म से दूसरे जन्म में जाता है इसको क्रियावान कहते हैं। तैसे ही पुद्गलों की भी व्यंजन पर्याय होती है। जब कोई विशेष स्कंध से छूटकर एक पुद्गल अपने क्रियावानपने से दूसरे स्कंध में मिल जाता है तब विभाव व्यंजन पर्याय होती है। मुक्त जीवों के स्वभाव व्यंजन पर्याय किस तरह होती है सो कहते हैं। निश्चय रत्नत्रयमई परम कारण-समयसार रूप निश्चय मोक्षमार्ग के बल से अयोगी केवली गुणस्थान के अंत समय में नख केशों को छोड़कर परमौदारिक शरीर का विलय होता है। इस तरह का नाश होते हुए केवलज्ञान आदि अनंत चतुष्टय की व्यक्ति रूप परमकार्य-समयसार रूप सिद्ध अवस्था का स्वभाव-व्यंजन-पर्यायरूप उत्पाद होता है, यह भेद से ही होता है संघात से नही होता है। क्योंकि मुक्तात्मा के अन्य शरीर के सम्बन्ध का अभाव है।

कोई द्रव्य भाव वाले तथा क्रियावाले होने से और कोई द्रव्य केवल भाव वाले होने से, इस अपेक्षा से द्रव्यों के भेद होते हैं। उनमें पुद्गल तथा जीव (1) भाव वाले तथा (2) क्रियावाले हैं क्योंकि (1) परिणमन द्वारा तथा (2) संघात और भेद के द्वारा वे (जीव पुद्गल) उत्पन्न होते हैं, टिकते हैं और नष्ट होते हैं। शेष द्रव्य तो

भाववाले ही हैं, क्योंकि वे परिणाम के द्वारा ही उत्पन्न होते है, टिकते हैं, और नष्ट होते हैं, - ऐसा निश्चय है।

उसमें भाव परिणाम मात्र लक्षण वाला है, (और) 'क्रिया' परिस्पन्द(कम्पन) लक्षण वाली है। इनमें समस्त द्रव्यभाव वाले तो हैं ही क्योंकि परिणाम स्वभाव वाले होने से परिणाम के द्वारा अन्वय (सह भावित्व ध्रुवता) और व्यतिरेक (क्रम भावित्व पर्याय) को प्राप्त होते हुये वे उत्पन्न होते हैं, टिकते और नष्ट होते हैं। पुद्गल तो (भाववाले होने के अतिरिक्त) क्रियावाले भी होते हैं, क्योंकि परिस्पन्द-स्वभाववाले होने से परिस्पंद के द्वारा पृथक पृथक पुद्गल एकत्रित हो जाने से, और एकत्रित मिले हुये पुद्गल पुनः पृथक हो जाने से उत्पन्न होते हैं, टिकते हैं और नष्ट होते हैं तथा जीव भी (भाववाले होने से अतिरिक्त) क्रियावाले भी होते हैं, क्योंकि परिस्पन्द स्वभाव वाले होने से परिस्पन्द के द्वारा नवीनकर्म-नोकर्मरूप भिन्न पुद्गलों के साथ एकत्रित होने से और कर्म -नोकर्म एकत्रित हुये पुद्गलों से बाद में पृथक होने से, वे जीव उत्पन्न होते हैं, टिकते हैं, और नष्ट होते हैं।

समीक्षा-प्रत्येक द्रव्य तो भाव वाला ही होता है परन्तु कुछ द्रव्य गति क्रिया से युक्त होते हैं तथा कुछ द्रव्य गतिक्रिया से रहित होते हैं। जीव एवं पुद्गल में स्थानान्तरित रूप गति क्रिया सम्भव है परन्तु धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल में गति क्रिया नहीं होती है परन्तु इसमें भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक परिणमन रूप क्रिया होती है। पुद्गल एवं जीव मन्द रूप से जब गमन करते हैं तो एक समय में एक आकाश प्रदेश को लांघ सकते हैं और जब तीव्र रूप में गमन करते हैं तो सम्पूर्ण लोक को अर्थात् चौदह राजू (असंख्यात योजन या असंख्यात प्रकाश वर्ष) को लांघ सकते हैं। यह जीव एवं पुद्गल की गति क्रिया का उदाहरण है। जीव पुद्गल के साथ-साथ अन्य धर्मादि द्रव्य में हर समय उत्पाद, व्यय रूप क्रिया हर समय में होती रहती है। स्थूल पर्यायों को व्यंजन पर्याय एवं द्रव्य के परिणमन को अर्थ पर्याय कहते हैं। आलाप पद्धति में कहा भी है -

धर्माधर्मनभः काला अर्थपर्यायगोचराः।
व्यंजनेन तू सम्बद्धौ द्वावन्यौ जीव पुद्गलौ।। (2)

धर्म द्रव्य, अधर्म, द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य इन चारों द्रव्यों में अर्थ पर्याय ही होती है किन्तु इनसे भिन्न जीव और पुद्गल इन दोनों में व्यंजन पर्यायें भी होती हैं।

पंचाध्यायी में भी कहा है-

क्रियाभावविशेषोऽस्ति तेषामन्वर्थतो यतः।

भावक्रियाद्वयोपेताः केचिभ्दावगताः परे (24) पृ. 183

उन द्रव्यों के अन्वर्थ रूप से क्रियारूप और भावरूप ऐसे दो भेद हैं, क्योंकि कितने ही द्रव्य भाव और क्रिया इन दोनों से युक्त होते हैं और कितने ही द्रव्य केवल भावरूप होते हैं।

भाववन्तौ क्रियावन्तौ द्वावेतौ जीवपुद्गलौ

तौ च शेषचतुष्कं च षडेते भावसंस्कृताः।। (25)

जीव आौर पुद्गल ये दोनों द्रव्य, भाव और क्रिया दोनों से युक्त हैं। तथा दोनों और शेष चार इस प्रकार ये छहों द्रव्य भाव विशेष युक्त हैं।

तत्र क्रिया प्रदेशानां परिस्पन्दश्चलात्मकः।

भावस्तत्परिणामोऽस्ति धारावाह्येकवस्तुनि।। (26)

क्रिया और भाव इन दोनों में जो प्रदेशों का हलन चलन रूप परिस्पन्द होता है वह क्रिया कहलाती है और प्रत्येक वस्तु में होने वाले प्रवाह रूप उसके परिणमन को भाव कहते हैं।

नासम्भवमिदं यस्मादर्थाः परिणामिनोऽनिशम्।

तत्र केचित् कदाचिद्वा प्रदेशचलनात्मकाः।। (27)

यह बात असंभव भी नहीं है, क्योंकि सभी पदार्थ प्रति समय परिणमन करते रहते हैं। उनमें भी कितने ही द्रव्य कदाचित् प्रदेश चलनात्मक भी देखे जाते हैं।

पञ्चास्तिकाय प्राभृत में भी कहा है -

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा।

पुग्गलकरणा जीवा खंधा खलु कालकरणा दु।। (98)

प्रदेशान्तर प्राप्ति का हेतु ऐसी जो परिस्पन्द रूप पर्याय, वह क्रिया है। वहां बहिरंग साधन के साथ रहने वाले जीव सक्रिय हैं, बहिरंग साधन के साथ रहने वाले पुद्गल सक्रिय हैं। आकाश निष्क्रिय है, धर्म निष्क्रिय है, अधर्म निष्क्रिय है, काल निष्क्रिय है।

जीवों को सक्रियपने का बहीरंग साधन कर्म-नोकर्म के संचय रूप हैं, इसलिये जीव पुद्गलकरण वाले हैं। उसके अभाव के कारण सिद्धों को निष्क्रियपना है। पुद्गलों

को सक्रियपने का बहिरंग साधन परिणाम निष्पादक काल है, इसलिये पुद्गल कालकरण वाले हैं। कर्मादिक की भांति काल का अभाव नहीं हाता, इसलिये सिद्धों की भांति पुद्गलों को निष्क्रियपना नहीं होता।

जीवों ने क्रिया रहित निर्विकार शुद्धात्मा के अनुभव की भावना से गिरकर अपने मन, वचन, काय की हलन-चलन क्रिया की परिणतियों से जो द्रव्य कर्म या नोकर्म पुद्गल एकत्र कियें हैं वे ही जीवों की क्रिया में कारण होते हैं, तथा पुद्गलों के स्कन्ध और परमाणु इन दो प्रकार के पुद्गलों के परिणमन होने में बाहरी कारण कालाणुरूप द्रव्य हैं, उनके निमित्त से ये क्रियावान होते हैं। यहाँ यह तात्पर्य है कि जीव जो शुद्धात्मानुभूति की भावना के बल से कर्मों का क्षयकर तथा सर्व द्रव्य कर्म और नोकर्म पुद्गलों का अभाव करके सिद्ध हो जाते हैं और तब वे क्रिया रहित हो जाते हैं ऐसा पुद्गलों में नहीं होता है, क्योंकि काल जो वर्णादि से रहित अमूर्तिक है सो सदा ही विद्यमान रहता है। उसके निमित्त से पुद्गल यथासम्भव क्रिया करते रहते हैं ।

सभी द्रव्यों में स्वभाव से परिणमन करने की शक्ति है ऐसा स्वामी कार्तिकेय ने कहा है-

णिय-णिय परिणामाणं णिय-णिय दव्वं पि कारणं होदि।

अण्णं बाहिर दव्वंणिमित्त-मित्तं वियाणेह।। (211)

अपने-अपने परिणामों का उत्पादान कारण अपना द्रव्य ही होता है। अन्य जो बाह्य द्रव्य है वह तो निमित्त मात्र है।

कारण दो प्रकार का होता है एक उपादान कारण और एक निमित्त कारण। जो कारण स्वयं ही कार्य रूप परिणमन करता है वह उपादान कारण होता है जैसे संसारी जीव स्वयं ही क्रोध, मान, माया, लोभ या राग-द्वेष आदि रूप परिणमन करता है अतः वह उपादान कारण है और जो उसमें सहायक होता है वह निमित्त कारण होता है। सब द्रव्यों में परिणमन करने की स्वाभाविक शक्ति है। अतः अपनी-अपनी पर्याय के उपादान कारण तो स्वयं द्रव्य ही हैं। किन्तु काल द्रव्य उसमें सहायक होने से निमित्तमात्र होता है। जैसे कुम्हार के चाक में घूमने की शक्ति स्वयं होती है, किन्तु चाक कील का आश्रय पाकर ही घूमता है। इसी से गोमट्टसार जीव काण्ड में काल द्रव्य का वर्णन करते हुये कहा है-

ण य परिणमदि सयं सो ण य परिणामेइ मण्णमण्णेहिं
विविह परिणामियाणं हवदि हु कालो सयं हेदु।।

वह काल द्रव्य स्वयं अन्य द्रव्य रूप परिणमन नहीं करता और न अन्य द्रव्यों को अपने रूप परिणमाता है। किन्तु जो द्रव्य स्वयं परिणमन करते हैं उनके परिणमन में वह उदासीन निमित्त होता है।

योगीन्द्र देव ने कहा भी है -

दव्व चयारि वि इयर जिय मगणागमण विहीण।
जीउ वि पुग्गलु परिहरिवि पभणहिं णाण पवीण।। (23)

हे हंस, जीव और पुद्गल इन दोनों को छोडकर दूसरे धर्मादि चारों ही द्रव्य हलन-चलनादिक्रिया रहित है, जीव पुद्गल क्रियावंत है, गमनागमन करते हैं, ऐसा ज्ञानियों में चतुर रत्नत्रय के धारक केवली श्रुत केवली कहते हैं।

जीवों के संसार अवस्था में इस गति से अन्य गति में जाने को कर्म-नोकर्म जाति के पुद्गल सहायी है। और कर्म-नोकर्म के अभाव से सिद्धों के निष्क्रियपना है, गमनागमन नहीं है। पुद्गल के स्कन्धों को गमन का बहिरंग निमित्त कारण कालाणुरूप कालद्रव्य है। इससे क्या अर्थ निकला ? यह निकला कि निश्चय काल की पर्याय जो समयरूप व्यवहारं काल उसकी उत्पत्ति में मंदगतिरूप परिणत हुआ अविभागी पुद्गलपरमाणु कारण होता है। समयरूप व्यवहारकाल का उपादानकारण निश्चयकालद्रव्य है, उसी के एक समयादि व्यवहार काल का मूल कारण निश्चय कालाणु रूप कालद्रव्य है, उसी की एक समयादिक पर्याय हैं, पुद्गल परमाणु की मंदगति बहिरंग निमित्त कारण है, उपादानकारण नहीं है, पुद्गल परमाणु आकाश के प्रदेश में मंदगति से गमन करता है, यदि शीघ्र गति से चले तो एक समय में चौदह राजू जाता है, जैसे घट पर्याय की उत्पत्ति में मूलकारण तो मिट्टी का डला है और बहिरंग कारण कुम्हार है, वैसे समय पर्याय की उत्पत्ति में मूलकारण तो कालाणुरूप निश्चय काल है, और बहिरंग निमित्त कारण, पुद्गल परमाणु है।

पुद्गल परमाणु की मंदगति रूप गमन समय में यद्यपि धर्म द्रव्य सहकारी है, तो भी कालाणुरूप निश्चयकाल परमाणु की मंद गति का सहायी जानना। परमाणु के निमित्त से तो काल की समय पर्याय प्रकट होती है, और काल के सहाय से परमाणु मंदगति करता है। कोई प्रश्न करे कि गति का सहकारी धर्म द्रव्य है, काल को क्यों कहा

उसका समाधान यह है कि सहकारी कारण बहुत होते हैं, और उपादान कारण एक ही होता है, दुसरा द्रव्य नहीं होता, निज द्रव्य ही निज (अपनी) गुण-पर्यायों का मूलकारण है, और निमित्त कारण बहिरंग कारण तो बहुत होते हैं, इसमें कुछ दोष नहीं है। धर्म द्रव्य तो सब ही का गति सहायी है, परंतु मछलियों को गति सहायी जल है, तथा घट की उत्पत्ति में बहिरंग निमित्त कुम्हार है, तो भी दण्ड, चक्र, चीवर आदिक ये भी अवश्य कारण है। इनके बिना घट नहीं होता, और जीवों के धर्म द्रव्य गति का सहायी विद्यमान है, तो भी कर्म-नोकर्म पुद्गल सहकारी कारण है, इसी तरह पुद्गल को काल द्रव्य गति सहकारीकारण जानना। यहां कोई प्रश्न करे कि धर्म द्रव्य तो गति का सहायी सब जगह कहा है, और कालद्रव्य वर्तना का सहायी है, गति सहायी किस जगह कहा है ? उसका समाधान श्री पञ्चास्तिकाय में आ. कुन्दकुन्ददेव ने क्रियावंत और अक्रियावंत के व्याख्यान में कहा है-

जीवा पुग्गलकाया सह सक्किरिया हवंति ण य सेसा।
पुग्गल करणा जीव खंदा खलु काल करणेहिं।। (98)

इसका अर्थ यह है कि जीव और पुद्गल ये दोनों क्रियावंत हैं, और शेष चार द्रव्य अक्रियावाले हैं, हलन-चलन क्रिया से रहित हैं। जीव को दूसरी गति में गमन का कारण कर्म है, वह पुद्गल है और पुद्गल को गमन का कारण काल है। जैसे - धर्मद्रव्य के मौजूद होने पर भी मच्छों को गमन सहायी जल है, उसी तरह पुद्गल को धर्मद्रव्य के होने पर भी काल द्रव्य (निश्चय कालाणु) गमन का सहकारी कारण है।

यहाँ निश्चयनयकर गमनादि क्रिया से रहित निःक्रिय सिद्धस्वरूप के समान निःक्रिय निर्द्वन्द्व निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, यह शास्त्र का तात्पर्य हुआ। इसी प्रकार दूसरे ग्रन्थों में भी निश्चयकर हलन चलनादि क्रिया रहित जीव का लक्षण कहा है-

यावात्क्रियाः प्रवर्तन्ते तावद् द्वैतस्य गोचराः।
अद्वये निष्कले प्राप्ते निःक्रियस्य कुतः क्रिया।।

इसका अर्थ ऐसा है कि जब तक इस जीव के हलन-चलनादि क्रिया है, गति से गत्यन्तर को जाना है, तब तक दूसरे द्रव्य का सम्बन्ध है, जब दूसरे का सम्बन्ध मिटा, अद्धैत हुआ, तब निकल अर्थात् शरीर से रहित निःक्रिय है, उसके हलन चलनादि क्रिया कहां से हो सकती हैं, अर्थात् संसारी जीव के कर्म के सम्बन्ध से

गमन है। सिद्ध भगवान कर्म रहित निःक्रिय हैं, उनकी गमनागमन क्रिया कभी नहीं हो सकती।

स्वतन्त्रता के सूत्र (मोक्ष शास्त्र) में भी कहा है -

निष्क्रियाणि च

आ आकाशात् निष्क्रियाणि च भवन्ति।

धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य निष्क्रिय हैं। अन्तरंग और बहिरंग निमित्त से उत्पन्न होने वाली जो पर्याय द्रव्य के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्राप्त कराने का कारण है वह 'क्रिया' कहलाती है और जो इस प्रकार की क्रिया से रहित है वह 'निष्क्रिय' कहलाते हैं। अर्थात् इन तीनों द्रव्य के प्रदेश अनादि काल से जहाँ पर थे अभी भी वहां हैं और अनन्त भविष्यत् में भी वही रहेंगे उनमें किसी प्रकार स्थानान्तरण नहीं होगा।

गोमट्टसार जीवकाण्ड में कहा भी है -

सव्वमरूवी दव्वं अवट्ठिदं अचलिआ पदेसा वि।
रूवी जीवा चलिया तिवियप्पा होंति हु पदेसा।। (592)

सम्पूर्ण अरूपी द्रव्य अवस्थित हैं। जहाँ स्थित हैं वहाँ ही सदा स्थित रहते हैं, तथा इनके प्रदेश भी चलायमान नहीं होते। किन्तु रूपी-मूर्ति (संसारी) जीव द्रव्य चल हैं, सदा एक ही स्थान पर नहीं रहा करते तथा इनके प्रदेश भी तीन प्रकार के होते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल और मुक्त जीव ये अपने स्थान से कभी चलायमान नहीं होते। एक स्थान पर ही रहते हुए भी इनके प्रदेश भी तीन प्रकार के होते हैं। चल भी होते हैं, अचल भी होते हैं तथा चलाचल भी होते हैं। विग्रह गति वाले जीवों के प्रदेश चल ही होते हैं और शेष जीवों के प्रदेश चलाचल होते हैं। आठ मध्य प्रदेश अचल होते हैं और शेष प्रदेश चलित हैं। मुक्त जीव के सर्व प्रदेश अचल होते हैं।

पोग्गलदव्वम्हि अणू संखेजदी हवंति चलिदा हु।
चरिमिमहक्खंधम्मि य चलाचला होंति हु पदेसा। (593)

पुद्गल द्रव्य में परमाणु तथा संख्यात, असंख्यात आदि अणु के जितने स्कन्ध हैं, वे सभी चल हैं, किन्तु एक अन्तिम महा स्कन्ध चलाचल है, क्योंकि उसमें कोई भाग चल है और कोई भाग अचल हैं।

ज्ञान चेतना (अतिचेतना) वृद्धि हेतु मेरी साधना

(तेरे पयार का आसरा...) -आचार्य कनकनन्दी

**ज्ञान चेतना की वृद्धि मैं कर रहा हूँ,
इस हेतु ही निम्नोक्त साधना कर रहा हूँ,
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र को बढ़ा रहा हूँ
समता-शान्ति-आत्मविशुद्धि बढ़ा रहा हूँ।। (1)।।**

**मोक्ष प्राप्ति का महान् लक्ष्य धारण किया हूँ,
अन्य सभी क्षुद्र लक्ष्य त्याग किया हूँ,
मोक्ष प्राप्ति होता विभाव भाव क्षय से,
राग द्वेष मोह काम क्रोध मद क्षय से।। (2)।।**

**ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व है क्षुद्र लक्ष्य,
धन-जन-मान भावोपभोग क्षुद्र लक्ष्य,
पर प्रतिस्पर्द्धा व पराजय (है) क्षुद्र लक्ष्य,
इससे परे आत्मोपलब्धि मेरा परम लक्ष्य।। (3)।।**

**इस हेतु ही करूँ शोध-बोध-अध्ययन-ध्यान,
एकान्त मौन में रहकर एकाग्र मौन।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश त्यागकर,
आत्मविशुद्धि कर रहा हूँ, लक्ष्य को केन्द्रकर।। (4)**

**आत्म विशुद्धि युक्त दृढ़ता से लक्ष्यानुसार,
अविचल-अटल साधना लक्ष्यानुसार।
अन्धानुकरण संशायादि से दूर होकर
साधना रत हूँ मैं निस्पृह-निराडम्बर।। (5)**

**अनुभव से अनुभव को मैं बढ़ा रहा हूँ,
अतिचेतना का अनुभव बढ़ा रहा हूँ।
अतिचेतना से जो काम होता क्षणमात्र से,
अन्य माध्यम से वह काम न होता बहु वर्ष में।। (6)**

यथा तीर्थंकर-केवली-गणधर-ऋद्धिधर

इनसे तुलना न संभव कोटि भी नारी-नर।
आध्यात्मिक शक्ति होती अनन्त-अक्षय,
इसे ही प्राप्त करना 'कनक' का परम लक्ष्य।। 7।।

अनुभव प्रयोग से भी लाभ पा रहा हूँ,
साहित्य लेखन, प्रकाशनादि प्रचुर हो रहे हैं।
देश-विदेशों में ज्ञान प्रचार हो रहे हैं,
सरल-सहज-स्वेच्छा से हो रहे है।। (8)

नन्दौड़ - 20.09.2018 मध्याह्न 3.10

सन्दर्भ

शांत, विश्वासपूर्ण अपेक्षा की एक मानसिक अवस्था को कायम रखना जरूरी है, तब भी जब आप जिंदगी के तूफान के थपेड़े झेल रहे हों। आप इस अवस्था को जितना ज्यादा कायम रखेंगे, आपको समकालिकता और सेरेंडिपिटी का उतना ही ज़्यादा अनुभव होगा। ये आनंददायक अनुभव आपको ख़ुशी और रोमांच की भावना से भर देंगे।

दो कार्यकारी स्थितियाँ

आपका अतिचेतन मन दो स्थितियों में सबसे अच्छी तरह काम करता है। पहला तब, जब आपका चेतन मन किसी विशेष समस्या या लक्ष्य पर शत-प्रतिशत ध्यान केंद्रित कर रहा हो। दूसरा तब, जब आपका चेतन मन कोई बिलकुल ही अलग काम करने में व्यस्त हो। अपनी मनचाही चीज़ हासिल करने के लिए आपको ये दोनों ही तरीक़े आज़माने चाहिए।

यहाँ पाँच क़दमों की एक सरल प्रक्रिया बताई जा रही है, जिसका इस्तेमाल करके आप अपने अतिचेतन मन की सभी शक्तियों को किसी एक मुद्दे पर केंद्रित कर सकते हैं।

पहला क़दम : समस्या या लक्ष्य को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर लें। उसे विस्तार से लिखना ज़्यादा अच्छा रहेगा। लिखें कि आप ठीक-ठीक क्या हासिल करना चाहते हैं, या आप जिस समस्या को सुलझाना चाहते हैं, वह क्या है ?

दूसरा कदम : ज़्यादा से ज़्यादा जानकारी हासिल करने की कोशिश करें। पढ़ें,

खोजें सवाल पूछें और सक्रियता से वे जवाब खोजें, जिनकी आपको ज़रूरत है।

तीसरा कदम : सारी एकत्रित जानकारी की समीक्षा करके चेतन तौर पर समस्या को सुलझाने की कोशिश करें।

चौथा कदमः अगर आप चेतन तौर पर समस्या न सुलझा पाएँ, तो उसे अपने अतिचेतन मन के हवाले कर दें। उसे विश्वास के साथ मुक्त करें, जिस तरह आप किसी गुब्बारे के साथ करते हैं, और फिर उसे तैरकर दूर जाने दें।

पाँचवा क़दम : अपने चेतन मन को किसी दूसरे काम में व्यस्त कर दें। अपना ध्यान हटा लें, और अपने अतिचेतन मन को इसकी परवाह करने दें।

इस वक़्त आप जिस समस्या से जूझ रहे हों, उसके साथ यह विधि आज़माकर देखें। परिणामों से आप हैरान रह जाएँगे।

यह सारे ज़रूरी जवाब लाता है

अतिचेतन मन आपको हमेशा सही समय पर सही जवाब लाकर देगा। जब जवाब आता है, तो आपको उस पर तत्काल काम करना होगा। यह ''समय की सटीकता'' वाला मामला है। अगर आपके मन में किसी को फ़ोन करने या कुछ कहने या कुछ करने की इच्छा जागे और यह बिलकुल ठीक महसूस हो रही हो, तो विश्वास से काम करें और अपनी इच्छा पूरी करें। यह हमेशा बाद में सही साबित होगी।

अगर आपको किसी दूसरे व्यक्ति के साथ समस्या आ रही है और आपके मन में स्पष्ट विचार आता है कि आपको क्या करना या कहना चाहिए, भले ही इसमें किसी तरह का टकराव या अप्रियता शामिल हो, तो अपने सहज बोध का अनुसरण करें और उस पर काम करें। नतीजा आपकी उम्मीद के अनुरूप या उससे बेहतर होगा।

प्रोफ़ेशनल वक्ता के रूप मैं कई बार यह निश्चय नहीं कर पाता कि मुझे किसी भाषण या सेमिनार को किस तरह बनाना या शुरू करना चाहिए। जब मैं इसे अपने अतिचेतन मन के हवाले कर देता हूँ तो एक अजीब चीज़ होती है। एक निश्चित बिंदु पर, अक्सर जब मैं पोडियम पर चलकर जा रहा होता हूँ, पूरा भाषण मेरे मस्तिष्क में साफ़ तौर पर प्रकट हो जाता है और बाद में पता चलता है कि वही सही भाषण था।

कुछ समय पहले मुझसे 90 के दशक में प्राफ़ेशनल सेलिंग की चुनौतियों पर

कॉरपोरेट श्रोताओं को संबोधित करने को कहा गया। मैंने इस भाषण की तैयारी की और मैं इस विषय पर बोलने के लिए तैयार था। लेकिन जब मेरा परिचय दिया गया, तो मेरे मन में यह प्रबल इच्छा जागी कि इसके बजाय मैं दीर्घकालीन लक्ष्यों और रणनीतियों के महत्व पर बोलूँ और पुरानी दिशाओं को छोड़कर नई दिशाओं में जाने का साहस दिखाऊँ। मैंने ऐसा कर दिया। भाषण के अंत में सभी ने खड़े होकर तालियां बजाई।

बाद में कंपनी के प्रेसिडेंट ने मुझे बताया कि मेरे भाषण से पहले उनकी दो दिन की मीटिंग हुई थी, जिसमें उन्होंने कंपनी की भावी दिशा के बारे में बाचतीत और बहस की थी। मेरे भाषण ने उन मुद्दों को स्पष्ट कर दिया, जिनसे वे जूझ रहे थे। इसमें उन्हें अपनी कुछ सबसे चुनौतीपूर्ण समस्याओं को सुलझाने की कुंजियाँ भी मिली। अंत में यह स्पष्ट हुआ कि मेरा अतिचेतन मन वहीं बातें कहने के लिए मेरा मार्गदर्शन कर रहा था, जिन्हें सीखने के लिए उनका अतिचेतन मन उन्हें मार्गदर्शन दे रहा था।

आपकी मानसिक अलार्म घड़ी

अतिचेतन मन आपको अपनी प्रोग्रामिंग करने में समर्थ बनाता है, ताकि आप भविष्य में किसी निश्चित समय पर कोई काम करना याद रख सकें। उदाहरण के लिए, आप अपने दिमाग़ की प्रोग्रामिंग कर सकते हैं कि यह आपको दिन या रात में किसी निश्चित समय पर जगा दे। कई लोग, जिनमें मैं भी शामिल हूँ, कभी अलार्म घड़ी का इस्तेमाल नहीं करते हैं, लेकिन इसके बावजूद सही समय पर उठ जाते हैं। आपको तो बस यह तय करने की ज़रूरत है कि आप सुबह कितने बजे उठना चाहते हैं। फिर इसके बारे में भूल जाएँ। और ठीक उसी समय या उससे कुछ मिनट पहले आपकी नींद पूरी तरह खुल जाएगी।

मैं बहुत से देशों की यात्राएँ करता हूँ और इस दौरान टाइम जोन्स बदलते हैं। मुझे अलग-अलग समय पर सोना पड़ता है, लेकिन मेरा अतिचेतन मन मुझे हमेशा सही वक़्त पर जगा देता है। मैं कभी देर से नहीं उठा हूँ। यह अलाम घड़ी से बेहतर है।

आप खुद को निश्चित समय पर फ़ोन करने या घर जाते वक़्त कोई चीज़ ख़रीदने की याद दिला सकते हैं। प्रोग्रामिंग वाला विचार सही समय या जगह पर आपके मन में आ जाएगा । और आप इस शक्ति का इस्तेमाल बस इसका फ़ैसला करके कर सकते हैं।

आप अंततः ऐसे बिंदु पर पहुँच सकते हैं, जहाँ आपको घड़ी की ज़रूरत ही नहीं होगी। आपको हमेशा पता होगा कि समय क्या है।

पार्किंग की जगह खोजना

बाक़ी चीज़ों के अलावा आप पार्किंग की जगह खोजने के लिए भी अपने अतिचेतन मन का इस्तेमाल कर सकते हैं। इसके लिए आपको उस जगह पर पार्किंग की किसी ख़ाली जगह की स्पष्ट मानसिक तस्वीर देखनी होगी- भीड़ भरी सड़क या पार्किंग लॉट में भी। बाद में जब आप सचमुच वहाँ पहुँचेंगे, तो पार्किंग की जगह आपका इंतज़ार कर रह होगी। अगर इलाक़ा बहुत व्यस्त है, तो कोई उस जगह को आपके पहुँचने तक रोके रहेगा। जब आप वहाँ पहुँचेंगे, तो ठीक उसी समय दूसरी कार बाहर निकलकर आपकी कार के लिए जगह ख़ाली कर देगी। मेरी पत्नी बारबरा ने इस क्षमता को इतना बढ़ा लिया है कि वह बहुत सारे काम करने की योजना बना लेती है और मनचाहे स्टोर या ऑफिस के ठीक पास पार्किंग की जगह खोज लेती है।

इंजनियरों और अकाउंटेंट्स जैसे टेक्निकल लोगों के लिए इस पर यक़ीन करना मुश्किल होता है। लेकिन मैं देश भर में ऐसे लोगों से मिलता हूँ, जो मुझे बताते हैं कि मेरे सेमिनार में शिरकत करने के बाद उन्हें पार्किंग की जगह खोजने में ज़रा भी मुश्किल नहीं हुई।

हाल ही में अपने सैन डिएगो में एक सेमिनार किया। हमने उसमें प्रतिभागियों को शनिवार दोपहर की छुट्टी दी। दो समूहों ने दोपहर में सैन डिएगो चिड़ियाघर जाने का फ़ैसला किया। पहले समूह में चार युवा उद्यमी थे। वे सकारात्मक, आशावादी और पूरी तरह विश्वासपूर्ण थे कि पार्किंग की जगह खोजने का यह तरीक़ा सफल होगा। दूसरे समूह में तीन इंजीनियर थे। उनके दिमाग़ में बिलकुल स्पष्ट था कि मानसिक तस्वीर और अतिचेतन का इस्तेमाल करके पार्किंग की जगह खोजना संभव ही नहीं है।

दोनों समूह अलग-अलग सैन डिएगो चिड़ियाघर गए। युवा उद्यमियों से भरी कार सीधे सामने के प्रवेश द्वार के पास वाली पार्किंग तक गई, हालाँकि जहाँ तक आँखें देख सकती थी, पार्किंग खचाखच भरी थी। जैसे ही वे सामने वाले प्रवेश द्वार तक पहुँचे, पहला पार्किंग स्टॉल खुल गया। उसके भीतर की कार बाहर निकल आई।

वे हँसते हुए अंदर गए और चिड़ियाघर के भीतर चले गए।

दूसरी तरफ़, जिन इंजीनियरों को यह यक़ीन नहीं था, कि यह तकनीक सफल होगी, वे कुछ समय तक चारों ओर घूमे और फिर अपनी कार को पार्किंग के दूर वाले हिस्से में पार्क किया, जहाँ से प्रवेश द्वार तक पहुँचने के लिए उन्हें दो ब्लॉक पैदल चलना पड़ा।

हांलाकि यह एक बहुत प्रबल शक्ति का बहुत सामान्य इस्तेमाल है, लेकिन इसे ख़ुद आजमाकार नतीजा देख लें। याद रखें, असल बात आपका नज़रिया है। अगर आपको पूरी तरह से विश्वास है कि आप पार्किंग की जगह खोज लेंगे, तो आप यकीनन ऐसा कर लेंगे। लेकिन ज़रा सी भी शंका या संदेह प्रक्रिया में शॉर्ट सर्किट कर देगा और उसे असफल करा देगा।

अतिचेतन गतिविधि का नियम

इस पुस्तक के सभी नियमों में यह सबसे महत्वपूर्ण है। यह वो सार है, जो बाक़ी सभी को एक सूत्र में बाँधता है। अतिचेतन गतिविधि का नियम कहता है, ''जिस भी विचार, योजना, लक्ष्य या चीज़ को चाहे वह सकारात्मक हो या नकारात्मक आप अपने चेतन मन में लगातार रखते हैं, उसे आपका अतिचेतन मन हक़ीकत में बदल देगा।''

अगर आप किसी भी विचार, योजना, लक्ष्य या चीज़ को विश्वास के साथ लगातार अपने चेतन में रखते हैं, तो इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है कि वह सकारात्मक है या नकारात्मक। आपका अतिचेतन मन अंततः उसे हक़ीक़त में बदल देगा। यह नियम स्पष्ट करता है कि आप कैसे उन विचारों से अपना संसार बनाते हैं, जिन्हें आप अपनी सोच पर हावी होने की अनुमति देते हैं। अगर आप अपने मस्तिष्क को मनचाही चीज़ों पर केंद्रित और अनचाही चीज़ों से दूर रखते हैं तो आपके लक्ष्य, चाहे वे जो भी हो, अंततः पूरे होंगे और साकार हो जाएँगे।

सभी नियमों की तरह यह नियम भी तटस्थ है। यह भेदभाव नहीं करता। यह कारण और परिणाम के सिद्धांत का सर्वोच्च प्रकटीकरण है। अगर आप इसकी शक्ति का इस्तेमाल अच्छाई के लिए करते हैं, तो आपके जीवन में सिर्फ़ अच्छाई हो जाएगी। अगर आप इसकी शक्ति का नकारात्मक इस्तेमाल करते हैं, तो इससे

बीमारी, दुःख और वित्तीय कुंठा जाएगी। ये चुनाव हमेशा आपका है। आप उस तरह का संसार चुनने के लिए हमेशा स्वतंत्र हैं, जिसमें आप रहना चाहते हैं। और आप इसे हर दिन अपने विचारों से चुनते हैं।

सफल जीवन दिनों, घंटों और मिनटों की शृंखला है- वे मिनट, जिनमें आप अपने लक्ष्यों और इच्छाओं, सेहत, ख़ुशी और दौलत के बारे में सोचते हैं और हर उस चीज़ पर ध्यान देने से इंकार कर देते हैं, जिसे आप अपने आस-पास प्रकट नहीं देखना चाहते।

अतिचेतन गतिविधि को प्रेरित करना

अतिचेतन गतिविधि को प्रेरित करने के कई तरीक़े हैं। पहला और सबसे विश्वसनीय तरीक़ा है हर वक्त अपने लक्ष्यों के बारे में सोचना। सिर्फ इसी से आप खुश और एकाग्रचित्त बने रहेंगे। इससे आपके भीतर विचारों और प्रेरणा के रूप में अतिचेतन ऊर्जा प्रवाहित होगी, जो आपको लक्ष्य हासिल करने की ओर ले जाएगी।

अपने अतिचेतन मन को प्रेरित करने का दूसरा तरीक़ा एकांत ''ख़ामोशी में जाने'' का अभ्यास है। लोग जब ख़ुद के साथ अकेले रहने का समय निकालने लगते हैं, तो वे महान् बनने लगते हैं। एकांत एक अद्भुत टॉनिक है, जो किसी विचार को संतुलित और स्पष्ट बनाता है। इससे आपको इस बारे में सोचने का अवसर मिलता है कि आप कौन हैं और आपके लिए क्या महत्वपूर्ण है। सबसे पढ़कर, एकांत शांति का मानसिक माध्यम प्रदान करता है, जिसके कारण अचेतन समाधान पूर्णतःविकसित होकर आपके मस्तिष्क में उभर आते हैं।

अगर आपने कभी एकांत को नहीं आज़माया हो, तो इसका अभ्यास करने का सबसे सरल तरीक़ा यह है कि कि आप कहीं जाकर एक घंटे तक बिलकुल शांति से, बिना हिले-डुले बैठें। काफ़ी न पिएँ, नोट्स न बनाएँ, सिगरेट न पिएँ, संगीत न सुनें या कोई दूसरा काम न करे। बस शांति से एक घंटे तक बैठे रहें।

ज़्यादातर लोग कभी जान-बूझकर अकेले नहीं बैठे हैं। अगर यह एकांत का आपका पहला अनुभव है, तो यह आपको बहुत ही मुश्किल लगेगी। पहले पच्चीस-तीस मिनट तक आपके मन में उठकर टहलने की ज़बर्दस्त इच्छा होगी। चुपचाप बैठे रहना आपको असंभव लगेगा। लेकिन अगर आपमें तीस मिनट तक बिना हिले बैठने

का आत्म-नियंत्रण हो, तो इसके बाद एक उल्लेखनीय चीज़ होगी। आप शांति महसूस करने लगेंगे, ख़ुद के साथ आरामदेह होने लगेंगे। आप ख़ुश और दुनिया के सामंजस्य में महसूस करने लगेंगे।

फिर एक निश्चित बिंदु पर आप अपने भीतर रचनात्मक ऊर्जा की नदी बहती महसूस करेंगे। आपके मन में ऐसे विचार और बातें आने लगेंगी, जिन पर अमल करके आप फौरन ज्यादा खुश और असरदार बन सकते हैं। सही पल आते ही आपके मस्तिष्क में वह विचार आ जाएगा, जिसकी ज़रूरत आपको अपनी सबसे मुश्किल समस्या सुलझाने के लिए होगी। आप उसे तत्काल पहचान लेंगे। जब आप एकांत के इस अभ्यास से उठकर जाते हैं और मन में आने वाले समाधान पर अमल करते हैं, तो आप पाएँगे कि वही सही काम था। ऐसा लगता है, जैसे वह आदर्श जवाब किसी बाहरी शक्ति ने दिया है। ज़ाहिर है, यह सच है।

अतिचेतन गतिविधि को प्रेरित करने का तीसरा तरीक़ा है अपने लक्ष्य की ऐसी मानसिक तस्वीर बनाना, जैसे वह हासिल हो चुका है। आप अपने लक्ष्य या परिणाम को जिस भी रूप में चाहते हों, उसकी स्पष्ट मानसिक तस्वीर बनाएँ। इस तस्वीर को बार-बार देखें, जब तक कि आपका अवचेतन मन इसे आदेश के रूप में स्वीकार न कर ले और इसे साकार करने के लिए आपके अतिचेतन मन के हवाले न कर दे।

अतिचेतन गतिविधि आम तौर पर तब होती है, जब आप न्यूनतम कोशिश करते हैं। अपनी समस्या या लक्ष्य को पूरी तरह मुक्त छोड़ने से अक्सर जबर्दस्त मूल्यवान विचार प्रेरित होते हैं। पूरे विश्वास से इसे छोड़ना और अपने मस्तिष्क को किसी दूसरे काम में व्यस्त करना ही अक्सर वह कुंजी है, जो आपकी छिपी शक्तियों का ताला खोल देता है।

कई लोग यह पाते हैं कि दिवास्वप्न देखने या पार्क की बेंच पर आराम करने से अतिचेतन गतिविधि का ट्रिगर दब जाता है। अकेले में या अपने प्रियजनों के साथ शास्त्रीय संगीत सुनने से भी अक्सर आपके दिमाग़ में अद्भुत विचार घुमड़ने लगेंगे।

शायद अतिचेतन शक्तियों को प्रेरित करने का एक बहुत ही आनंददायक तरीक़ा प्राकृतिक परिवेश में घूमना या प्रकृति के साथ किसी तरह का संपर्क करना है। समुद्र तट की आवाज़ों का अतिचेतन पर ज़बरदस्त पड़ता है, जैसा किसी भी तरह के बहते पानी या प्राकृतिक सौंदर्य का पड़ता है। किसी भी तरह के गहरे विश्राम या

साधना से आपका अतिचेतन मन प्रेरित हो जाता है।

एक अच्छा अतिचेतन विचार आपकी कई महीनों, यहाँ तक कि कई सालों की कड़ी मेहनत बचा सकता है। इसके लिए आपको बस इतना करना होगा कि अपने सामने की सबसे तनावपूर्ण समस्याओं पर इन विधियों का इस्तेमाल करें। इस दिशा में टालमटोल करने के प्रलोभन से बचें। जब आप बहुत ज़्यादा व्यस्त होते हैं, उसी वक़्त आपको अपनी भीतरी आवाज़ सुनने की सबसे ज़्यादा जरूरत होती है।

अतिचेतन समाधान

अतिचेतन समाधान तीन में से किसी एक स्रोत से आपकी ओर आएगा। पहला और सबसे आम स्रोत है अतीद्रिय बोध। कई बार यह भीतरी आवाज़ इतनी तेज़ होगी कि आप किसी दूसरी चीज़ के बारे में सोच ही नहीं पाएँगी। जवाब इतना स्पष्ट होगा कि आप जान जाएँगे कि यही सही काम है। यह न सिर्फ़ सही होगा, बल्कि सही लगेगा भी।

हमेशा अपना अतींद्रिय बोध पर भरोसा करें। कभी भी इसके ख़िलाफ न जाएँ । आपका अतींद्रिय बोध या इंट्यूशन आपके अतिचेतन मन और असीमित प्रज्ञा के बीच की सीधी पाइपलाइन है। सभी सफल और सुखी लोग हर स्थिति में अपने अतींद्रिय बोध और आभासों को महत्व देते हैं। आप पाएँगे कि आपके सामने मौजूद अधिकांश समस्याएँ और ज़िंदगी में अब तक हुई ज़्यादातर ग़लतियाँ अपनी ''अंदर की भावनाओं'' को नज़रअंदाज करने का परिणाम हैं।

अतिचेतन समाधानों का दूसरा स्रोत दूसरे लोगों या जानकारी का संयोगवश मिलना है। अगर आपके पास एक स्पष्ट लक्ष्य हो या अपने लक्ष्य की राह में सुलझाने के लिए समस्या हो, तो आपको अप्रत्याशित रूप से ऐसे लोग मिल जाएँगे, जो आपकी मदद कर सकते हैं। अक्सर वे अजनबी होंगे, जिनसे आप यात्रा करते समय या सामाजिक स्थितियों में मिलेंगे। आपको अपने सामने ऐसी पुस्तकें, पत्रिकाएँ और लेख भी मिलेंगे, जिनमें ठीक वही जानकारी होगी, जिसकी आपको ज़रूरत है। आप जिस समाधान की तलाश कर रहे हैं, वह आपको ऑडियो टेप में सुनाई दे जाएगा। जानकारी ठीक उसी रूप में आपके पास पहुँचेगी, जिसकी आपको उस वक़्त जरूरत है।

मेरा एक दोस्त मश्हूर फ़ोटोग्राफ़र है। वह एक शाम घर पर एक व्यक्तिगत समस्या से जूझ रहा था। तभी उसके मन में लिविंग रूम की शेल्फ़ से एक किताब उठाने की इच्छा हुई। जब वह पुस्तक की ओर बढ़ा, तो वह शेल्फ़ से गिरकर ज़मीन पर आ गिरी। अब पुस्तक खुल गई थी, हालांकि उसके कवर ऊपर की तरफ़ थे। जब उसने झूककर पुस्तक उठाई, तो पहले पैरेग्राफ़ में ठीक वही जवाब था, जिसकी उसे तलाश थी। वह उसी वक़्त हमारे सेमनार में हिस्सा लेकर लौटा था, इसलिए वह तत्काल समझ गया कि उसे एक अतिचेतन का अनुभव हुआ था। उसने अगली सुबह इस पर अमल किया और वह बाद में सही काम साबित हुआ।

पहले मैंने आपको प्रोत्साहित किया था कि आप हर सुबह यह कहें, ''मैं यक़ीन करता हूँ कि आज मेरे साथ कुछ अद्भुत होने वाला है।'' अगर आप दिन में इस यक़ीन के साथ जाते हैं कि आपके साथ कुछ अद्भुत होने वाला है, तो आपको ऐसे लोग और जानकारियाँ मिलेंगी, जिनकी मदद से आपकी अपेक्षा हक़ीकत में बदल जाएगी। आप बेहद आश्चर्यजनक तरीकों से अपनी समस्याओं के अतिचेतन समाधान पाएँगे।

अतिचेतन समाधानों का तीसरा स्रोत अप्रत्याशित घटनाएँ हैं। पीटर ड्रकर अपनी पुस्तक इनोवशन एंड एंटरप्रेन्योरशिप में लिखते हैं कि बिज़नेस में नवाचार का मूल स्रोत अप्रत्याशित सफलता या अप्रत्याशित असफलता है। अक्सर बिलकुल अप्रत्याशित घटना में ही वह अतिचेतन समाधान होता है, जिसकी आप तलाश कर रहे हैं। अप्रत्याशित घटना में वह जवाब छिपा हो सकता है, जिसकी आपको ज़रूरत है। यह न भूलें कि आपकी सहायता करने वाली यह अप्रत्याशित घटना अक्सर बड़ी असफलता के रूप में भी प्रकट हो सकती है।

सर अलैक्ज़ेंडर फ्लेमिंग लंदन में अपनी प्रयोगशाला में बैक्टिरिया पर प्रयोग कर रहे थे। तभी उनके कल्चर डिशेस पर फफूँद गिर गई, जिससे प्रयोग ख़राब हो गया। जब वे कल्चर मीडियम को फेंककर दोबारा शुरू करने वाले थे, तो उन्होंने उस फफूँद का देखा, जिसने बैक्टीरिया को मार डाला था। उन्होंने बहुत गौ़र से उस फफूँद की जाँच की। नतीजा पेनिसिलिन की खोज था, जिसकी वजह से उन्हें चिकित्सा के क्षेत्र में नोबल पुरस्कार मिला और द्वितीय विश्व युद्ध में लाखों लोगों की जान भी बची।

नॉर्मन विन्सेट पील कहते हैं कि जब भी ईश्वर आपको कोई तोहफ़ा भेजना

चाहता है, तो वह उसे समस्या के बीच रखकर भेजता है। समस्या जितनी ज़्यादा बड़ी होती है, तोहफ़ा भी उतना ही ज़्यादा बड़ा होता है। गिलास आधा खा़ली है या आधा भरा हुआ है ? सफल, खुश लोगों की यह आदत होती है कि वे मुश्किल से मुश्किल परिस्थिति में भी सकारात्मक चीज़ देख सकते हैं, जिससे वे सीख सकते हैं या लाभ उठा सकते हैं। और यह नज़रिया अक्सर समस्या के अतिचेतन समाधान को प्रेरित कर देता है।

अतिचेतन समाधान के लक्षण

अतिचेतन समाधान के तीन लक्षण होते हैं। पहला? जब यह आता है, तो शत-प्रतिशत पूर्ण होता है और समस्या के हर पहलू को सुलझा देता है। यह हमेशा उस वक़्त मौजूद आपके संसाधनों और क्षमताओं के भीतर होता है। यह हमेशा सरल होता है और इस पर अमल करना भी आसान होता है।

दूसरा, वह कौंध के रूप में प्रकट होता है। यह इतना सरल और स्पष्ट लगता है कि आपको अक्सर ''आहा'' अनुभव होता है, आप सोचते हैं कि आपने इसके बारे में पहले क्यों नहीं सोचा। ज़ाहिर है, आपने पहले इसके बारे में इसलिए नहीं सोचा होगा, क्योंकि तब आप तैयार नहीं होंगे या उस काम के लिए समय सही नहीं होगा।

तीसरा तरीका, जिससे आप किसी अतिचेतना समाधान को पहचान सकते हैं, यह है कि यह हमेशा ख़ुशी और ऊर्जा के झोंके के साथ आता है। उल्लास की भावना, जिसमें आप तत्काल क़दम उठाना चाहते हैं।

अगर आधी रात को आपके मन में अतिचेतन समाधान आता है, तो आप तब तक नहीं सो पाएँगे, जब तक कि आप उठकर उसे लिख न लें या उसके बारे में कुछ कर न लें।

आर्कमिडिज के बार में मशहूर किस्सा है कि नहाते समय अचानक उनके मन में वह अतिचेतन समाधान आया, जिससे वे यह तय कर पाए कि सम्राट के मुकुट में सोने और चाँदी का क्या अनुपात है। वे इतने रोमांचित हो गए कि सिरकेस की सड़कों पर नंगे भागने लगे और चिल्लाने लगे, ''यूरेका! यूरेका!'' (''मुझे मिल गया, मुझे मिल गया।'')

लंबी अवधि की मानसिक और शारीरिक मेहनत के बावजूद जब कोई

अतिचेतन समाधान आपके मन में आता है, तब भी आपमें रोमांच, खुशी और उत्साह की भावना जाग जाएगी। आपको ''मुक्त ऊर्जा'' के उफान का अनुभव होगा। आप तत्काल उस समाधान पर अमल करना चाहेंगे। आप ख़ुश और आत्मविश्वासी महसूस करेंगे और आपको यक़ीन होगा कि यह कारगर है।

जब आपके पास स्पष्ट लक्ष्य और विस्तृत योजनाएँ होती हैं, जब आपके पास सकारात्मक मानसिक नज़रिया और सफलता की शांत, विश्वास से भरी अपेक्षा होती है, तो आप अपना अतिचेतन मन सक्रिय कर देते हैं कि यह आपको जीवन में मनचाही चीज़ की ओर ले जाए। अगर आप सकारात्मकता से संकल्प करते हैं, स्पष्टता से मानसिक तस्वीर देखते हैं और पूरा विश्वास करते हैं,तो आपको हर स्थिति में सही समय पर सही चीज़ कहने और करने की प्रबल प्रेरणा मिल जाएगी। आप सेहत, ख़ुशी और दौलत की अपनी पूरी क्षमता का ताला खोल लेते हैं। आप खुद को ब्रह्माण्ड की सबसे बड़ी शक्ति पूर्ण सामंजस्य में ले आते हैं।

कर्म अभ्यास

आप एकांत का एक घंटा तक करें, और इस दौरान एकदम स्थिर बैठें। इस काम के खुद को जल्दी से जल्दी अनुशासित कर लें। ख़ामोशी की इस अवधि में हर चीज़ को अपने दिमाग़ से बाहर निकाल दें। अपनी समस्याओं को भी दरकिनार कर दें। अपने मस्तिष्क को खुलकर विचरण करने दें। दिवास्वप्न देखें। कोई ख़ास चीज़ सोचने की कोशिश न करें। अपनी कार्यालयीन और व्यक्तिगत ज़िदंगी से बाहर निकल जाएँ।हर चीज़ अपने अतिचेतन मन के हवाले कर दें और सारी चिंताओं को भूल जाएँ।

इस एक घंटे के दौरान किसी समय आपका मस्तिष्क शांत और स्पष्ट हो जाएगा। आप बेफ़िक्र और सुखी महसूस करेंगे। और बिना किसी कोशिश के वह जवाब आपके सामने आ जाएगा, जिसकी आपको उस पल जरूरत है।

उस घंटे के ख़त्म होने पर उठें और अपनी अतीद्रिंय क्रौंध पर अमल करें। वही काम करें, जिसे करने का मार्गदर्शन आपके अतिचेतन मन ने दिया है। इस बारे में चिंता न करें कि कोई दूसरा उसकी प्रशंसा करता है या नहीं, कोई दूसरा उससे सहमत होता है या नहीं। जवाब हमेशा सही होगा और शायद भविष्य में आपसे कभी कोई ग़लती नहीं होगी। (अधिकतम सफलता, विजयी शक्ति, ब्रायन ट्रेसी)

मैं स्व स्वभाव को त्याग सकता नहीं

(चाल : अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं...)

-आचार्य कनकनन्दी

मेरे स्वभाव को मैं हरगिज/(कदापि) त्याग सकता नहीं,
सत्य/(द्रव्य) कभी असत्य रूप परिणमता नहीं...2
'सद द्रव्य लक्षणं' होने से द्रव्य सदा सत्य रहे,
मैं हूँ जीव द्रव्य अतः मेरा सदा अस्तित्व रहे...(1)
वन्दे आत्मन्...वन्दे मम आत्मनम्...2 आत्मनम्(ध्रुव)
अनादि कर्म बन्ध से भले मेरे होते जन्म-मरण,
तथापि मेरा अस्तित्व सदा रहता है विद्यमान।
अशुद्ध अवस्था में भले मेरे ज्ञानादि है क्षीण-हीन,
तथापि शुद्ध होने पर सभी गुण होंगे परिपूर्ण।। सद् द्रव्य (2)

कर्मबन्ध के कारण मुझे मिले हैं नानादशा,
चौरासी लक्ष्य योनि में हुई मेरी दुर्दशा।
बादल से यथा आकाश का न होता विनाश/(विकृत) है,
तथापि कर्म के कारण मेरा कभी न होता नाश है।। सद्द्व्य...(3)

द्रव्यकर्म से मेरे हुए राग-द्वेषादि भाव कर्म,
तथापि रागादि मेरे न होंगे कभी भी स्व-धर्म।
आत्म साधना से रागादि के नाश से बनूँगा सिद्ध,
शुद्ध-बुद्ध-आनन्द ही 'कनक' का स्वभाव।। सद्द्रव्य...(4)

नन्दौड़ दि. 24.09.2018 प्रातः 06:10 (पर्यूषण पर्व)

सन्दर्भ

दिध्यासुः स्वं परं ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थितम्।
विहायाऽन्यदनर्थित्वात् स्वमैवाऽवैतु पश्यतु।। 143।।

'जो स्वालंबी निश्चयध्यान करने का इच्छुक है वह स्वको और परको यथावस्थित रूप में जानकर तथा श्रद्धान कर और फिर परको निरर्थक होने से छोड़कर स्वको (अपने आत्मा को) **ही जानो और देखो।'**

व्याख्या – यहाँ स्व के साथ परके यथार्थज्ञान- श्रद्धान की जो बात कही गयी है वह अपना खास महत्त्व रखती है। जब तक परका यथार्थ बोधादिक नहीं होता तब तक उसको स्वसे भिन्न एवं अनर्थक समझकर छोड़ा नहीं जाता और जब तक परसे छुटकारा नहीं मिलता तब तक स्वात्मालंबनरूप निश्चयध्यान में यथार्थ प्रवृत्ति नहीं बनती।

पूर्व श्रुतेन संस्कारं स्वात्मन्यारोपयेत्ततः।
तत्रैकाग्र्यं समासाद्य न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।। 144।।

'अतः पहले श्रुत (आगम) **के द्वारा अपने आत्मा में आत्मसंस्कारको आरोपित करे** – आगम में आत्मा को जिस यथार्थ रूप में वर्णित किया है उस प्रकार की भावनाओं द्वारा उसे संस्कारित करे- **तदन्तर उस संस्कारित स्वात्मा में एकाग्रता** (तल्लीनता) **प्राप्त करके और कुछ भी चिंतन न करे।**

व्याख्या – यहाँ निश्चयध्यान की यथार्थ सिद्धि के लिए पहले आत्मा को श्रुत की भावनाओं से संस्कारित करने की बात कही गयी है, जिससे आत्मा को अपने स्वरूप के विषय में सुदृढ़ता की प्राप्ति हो और वह अन्य चिंता छोड़कर अपने में ही लीन हो सके। और यह बात बड़े ही महत्त्व की है, जिसे अगले दो पद्यों में स्पष्ट किया गया है।

श्रोती भावनाका अवलंबन न लेने से हानि

यस्तु नालम्बते श्रौती भावनां कल्पनाभयात्।
सोऽवश्यं मुह्यति स्वस्मिन्बहिश्चिन्तां बिभर्ति च।। 145।।

'जो ध्याता कल्पना के भय से श्रौती (श्रुतात्मक) **भावना का आलंबन नहीं लेता वह अवश्य अपने आत्म-विषय में मोह को प्राप्त होता है और बाह्य चिंता को धारण करता है।'**

व्याख्या – जो ध्याता निर्विकल्प ध्यान न बन सकने के भय से पूर्वावस्था में भी श्रौती भावना को, जो कि सविकल्प होती हैं, नहीं अपनाता वह मोह से अभिभूत अथवा दृष्टिविकार को प्राप्त होता है और बाह्य पदार्थों की चिंता में भी पड़ता है। उससे उसे सबसे पहले श्रौती भावना के संस्कार द्वारा अपने आत्मा को उसके स्वरूप-विषय में सुनिश्चित और सुदृढ़ बनना चाहिए, तभी निर्विकल्प ध्यान अथवा समाधि की बात बन सकेगी।

श्रौती भावना की दृष्टि

तस्मान्मोह-प्रहाणाय बहिश्चिन्ता-निवृत्तये।
स्वात्मानं भावयेत् पूर्वमेकाग्रस्य च सिद्धये।। 146।।

'अतः मोहका विनाश करने, बाह्य चिंता से निवृत्त होने और एकाग्रता की सिद्धि के लिए ध्याता पहले स्वात्मा को श्रौती भावना से भावे संस्कारित करे।'

व्याख्या – जब श्रौती भावना का आलंबन न लेने से मोह को प्राप्त होना तथा बाह्य चिंता में पड़ना अवश्यभावी है तब मोह के विनाश तथा बाह्य चिंता की निवृत्ति के लिए और एकाग्रता की सिद्धि के लिए अपने आत्मा को पहले श्रौती भावना से भावित अथवा संस्कारित करना चाहिए। ऐसी यहाँ सातिशय प्रेरणा की गयी है और इससे श्रोती भावना की दृष्टि तथा उसका महत्व स्पष्ट हो जाता है।

श्रौती-भावना का रूप

तथा हि चेतनोऽसंख्य-प्रदेशो मूर्तिवर्जितः।
शुद्धात्मा सिद्धरूपोऽस्मि ज्ञान-दर्शन-लक्षणः।। 147।।

'वह श्रौती भावना इस प्रकार है-

'मैं चेतन हूँ, असंख्यप्रदेशी हूँ, मूर्तिरहित-अमूर्तिक हूँ, सिद्धसदृश शुद्धात्मा हूँ और ज्ञान-दर्शन लक्षण से युक्त हूँ।'

व्याख्या – यहाँ आत्मा अपने वास्तविक रूप की भावना कर रहा है, जो कि चेतनामय है, असंख्यात प्रदेशी है, स्पर्श-रस-गंध-वर्णरूप मूर्ति से रहित अमूर्तिक है, सिद्धों के समान शुद्ध है और ज्ञान-दर्शन-लक्षण से लक्षित है। ज्ञान और दर्शन गुणों को जो लक्षण कहा गया है वह इसलिए कि ये उसके व्यावर्तक गुण हैं- अन्य सब पदार्थों से आत्मा का स्पष्ट भिन्न बोध कराने वाले हैं। तत्त्वार्थसूत्र में उपयोगो लक्षणम् सूत्र के द्वारा जीवात्मा का जो उपयोग लक्षण दिया है वह भी इन दोनों का सूचक है। क्योंकि उपयोग के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग ऐसे दो मूलभेद किये गये हैंः जिनमें ज्ञानोपयोग के आठ और दर्शनोपयोग के चार उत्तरभेद हैं; जैसा कि तत्त्वार्थ सूत्र के सद्विविधोऽष्टचतुर्भेदः इत्यादि अगले सूत्रों से जाना जाता है।

'नान्योऽस्मि नाऽहमस्त्यन्यो नाऽन्यस्याऽहं न मे परः।

अन्यस्त्वन्योऽहमेवाऽहमन्योऽन्यस्याऽमेव च।। 148

मैं अन्य नहीं हूँ, अन्य मैं (आत्मा) नहीं है। मैं अन्यका नहीं, न अन्य मेरा है। वस्तुतः अन्य अन्य ही है, मैं मैं ही हूँ, अन्य अन्य का है और मैं ही मेरा हूँ।''

व्याख्या – यहाँ स्व-पर के भेद भाव को दृढ़ करते हुए हुए आत्मा भावना करता है। मैं किसी भी पर-पदार्थरूप नहीं हूँ; कोई परपदार्थ मुझ रूप नहीं है; मैं पर-पदार्थ कोई संबंधी नहीं हूँ, न पर-पदार्थ मेरा कोई संबंधी है। वस्तुतः पर-पदार्थ पर ही है, मैं मैं ही हूँ; पर पदार्थ परका संबंधी है, मैं ही मेरा संबंधी हूँ।

अन्यच्छरीरमन्योऽहं चिदहं तदचेतनम्।

अनेकमेतदेकोऽहं क्षयीदमहमक्षयः।।149।।

'शरीर अन्य है, मैं अन्य हूँ; (क्योंकि) **मैं चेतन हूँ शरीर अचेतन है, यह शरीर अनेकरूप है, मैं एकरूप हूँ, यह क्षयी (नाशवान्) है, मैं अक्षय (अविनाशी) हूँ।**

व्याख्या – यहाँ शरीर से आत्मा के भिन्नत्व की भावना की गयी है और उसके मुख्य तीन रूपों को लिया गया है 1. चेतन-अचेतन का भेद, 2. एक अनेकका भेद और 3 क्षयी-अक्षयीका भेद। इन तीनों भेदों को अनेक प्रकार से अनुभव में लाया जाता है। आत्मा चेतन है-ज्ञान-स्वरूप है, शरीर अचेतन है-ज्ञान-रहित जड़रूप है; शरीर अनेकरूप है- अनेक ऐसे पदार्थों तथा अंगों के संयोग से बना है, जिन्हें भिन्न किया जा सकता है, आत्मा वस्तुतः अपने व्यक्ति की दृष्टि से एक है, जिसमें किसी पदार्थ का मिश्रण नहीं है और न जिसका कोई भेद अथवा खंड किया जा सकता है; शरीर प्रतिक्षण क्षीण होता रहता है- यदि एक दो दिन भी भोजनादिक न मिले तो स्पष्ट क्षीण दिखायी पड़ता है, जबकि आत्मा क्षयरहित है- अविनाशी है, कोई भी प्रदेश उसको कभी उससे जुदा नहीं होता, भले ही भवांतर-ग्रहणादिके समय उसमें संकोच-विस्तार होता रहे और ज्ञानादिक गुणों पर आवरण आता रहे; परंतु वे गुण कभी आत्मा भिन्न नहीं होते।

अचेतन भवेन्नाऽहं नाऽहमप्यस्म्यचेतनम्।

ज्ञानात्माऽहं न मे कश्चिन्नाऽहमन्यस्य कस्यचित्।। 150।

'अचेतन मैं (आत्मा) नहीं होता : न मैं अचेतन होता हूँ; मैं ज्ञानस्वरूप

हूँ; मेरा कोई नही हैं, न मैं किसी दूसरे का हूँ।''

व्याख्या – यहाँ आत्मा यह भावना करता है कि कोई भी अचेतन पदार्थ कभी आत्मा (मैं) नहीं बनता और न आत्मा (मैं) कभी किसी अचेतन पदार्थ के रूप में परिणमन करता है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, दूसरा कोई भी पदार्थ उसका अपना नहीं और न वह किसी दूसरे पदार्थ का कोई अंग अथवा संबंधी है।

यहाँ तथा आगे पीछे जहाँ भी अहं (मैं) शब्द का प्रयोग हुआ है वह सब आत्मा का वाचक है।

योऽत्र स्व-स्वामि-सम्बन्धी ममाऽभूद्वपुषा सह।

यस्त्वेकत्व-भ्रमः सोऽपि परस्मान्न स्वरूपतः।। 151।

इस संसार में मेरा शरीर के साथ जो स्व-स्वामि-संबंध हुआ है शरीर मेरा स्व और मैं उसका स्वामी बना हूँ **तथा दोनों में एकत्व का जो भ्रम है वह सब भी परके निमित्त से है, स्वरूप से नहीं।'**

व्याख्या – यहाँ परस्मात् पद के द्वारा जिस पर निमित्त का उल्लेख है वह नामकर्मादिक के रूप में अवस्थित है, जिसने शरीर तथा उसके अंगोपांगादि की रचना होकर आत्मा के साथ उसका संबंध जुड़ता है और जिससे शरीर तथा आत्मा में एकत्व का भ्रम होता है वह दृष्टि-विकारोत्पादक दर्शनमोहनीय कर्म है।

इस पर निमित्त की दृष्टि से ही व्यवहारनय द्वारा यह कहने में आता है कि शरीर मेरा है। अन्यथा आत्मा के स्वरूप की दृष्टि से शरीर आत्मा का कोई नहीं और न वस्तुतः उसके साथ एकमेकरूप तादात्म्य-संबंध को ही प्राप्त है-मात्र कर्मों के निमित्त से संयोग-संबंध को लिए हुए है, जिसका वियोग अवश्यभावी है। यह सब इस श्रौती भावना में आत्मा चिंतन करता है और इसके द्वारा शरीर के साथ स्व-स्वामि संबंध तथा एकत्व के भ्रम को दूर भगाता है।

जीवादि-द्रव्य-यथात्म्य ज्ञानात्मकमिहाऽऽमना।

पश्यन्नात्मन्यथाऽऽमानमुदासीनोऽस्मि वस्तुषु।। 152

मैं इस संसार में जीवादि-द्रव्यों की यथार्थताके ज्ञानस्वरूप आत्मा को आत्मा के द्वारा आत्मा में देखता हुआ (अन्य) वस्तुओं में उदासीन रहता हूँ- उनमें मेरा कोई प्रकार का रागादिक भाव नहीं है।''

व्याख्या- इस श्रौती भावना में आत्मा अपने में स्थित हुआ अपने द्वारा अपने आपको इस रूप में देखता है कि वह जीवादि द्रव्यों के यथार्थ ज्ञान को लिये हुए है और इस प्रकार देखता हुआ वह अन्य पदार्थों से स्वतः विरक्तिको प्राप्त होता है- उनमें उसकी रुचि नहीं रहती है।

सद्द्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञाता द्रष्टा सदाऽप्युदासीनः।
स्वोपात्त-देहमात्रस्ततः परं गगनवदमूर्तः।।153।।

'मैं सदा सत् द्रव्य हूँ, चिद्रूप हूँ, ज्ञाता-द्रष्टा हूँ, उदासीन हूँ, स्वगृहीत देहपरिणाम हूँ और शरीर त्याग के पश्चात् आकाश के समान अमूर्तिक हूँ।'

व्याख्या - इस श्रौती भावना में आत्मा अपने को सद्द्रव्य, चिद् द्रव्य और उदासीन रूप कैसे अनुभव करता है, इसका स्पष्टीकरण अगले पद्यों में किया गया है। ज्ञाता-दृष्टा पदों का वाच्य स्पष्ट है। **स्वोपात्तदेहमात्रः** इस पद के द्वारा आत्मा के आकार की सूचना की गयी है। संसार-अवस्था में आत्मा जिस शरीर को ग्रहण करता है उस शरीर के आकार-प्रमाण आत्मा का आकार रहता है। शरीर का संबंध सर्वथा छूट जाने पर मुक्ति-अवस्था में यद्यपि आत्मा आकाश के समान अमूर्तिक हो जाता है, परंतु आकाश के समान अनंतप्रदेशी नहीं हो जाता, उसके प्रदेशों की संख्या असंख्यात ही रहती है और वे असंख्यात प्रदेश भी सारे लोकाकाश में व्याप्त होकर लोकाकाशरूप आकार नहीं बनाते। किंतु आकार आत्मा का प्रायः अंतिम शरीर के आकार-जितना ही रहता है; क्योंकि आत्मप्रदेशों में संकोच और विस्तार कर्म के निमित्त से होता था, जब कर्मों का अस्तित्व नहीं रहता, तब आत्मा के प्रदेशों का संकोच और विस्तार सदा के लिए रुक जाता है। इसी बात को ग्रंथ में आगे पुंसः संहार-विस्तारौ संसारे कर्मनिर्मितौ इत्यादि पद्यों (232,233) के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

सन्नेवाऽहं सदाऽप्यस्मि स्वरूपादि-चतुष्टयात्।
असन्नेवाऽस्मि चात्यन्तं पररूपाद्यपेक्षया।। 154।।

स्वरूपादि चतुष्टयकी दृष्टि से-स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव की अपेक्षा से **मैं सदा सत्‌रूप ही हूँ और पर-स्वरूपादिकी दृष्टि से**-पर द्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा से **अत्यंत असत्‌रूप ही हूँ।**

व्याख्या-पिछले पद्य में **सद्द्रव्यमस्मि** यह जो भावनावाक्य दिया है उसी के

स्पष्टीकरण रूप में पद्य का अवतार हुआ है। यहाँ आत्मद्रव्य सत्‌रूप ही नही, किंतु असत्‌रूप भी है, इसका सहेतुक प्रतिपादन किया है। लिखा है कि -आत्मा स्वद्रव्य क्षेत्र-काल भाव की अपेक्षा सत्‌रूप ही है और परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा असत्‌रूप ही है। इस कथन का पूर्व कथन के साथ कोई विरोध नहीं है; क्योंकि आत्मा को सत् और असत् दोनों रूप बतलाना अपेक्षा भेद को लिये हुए है- एक ही अपेक्षा से सत् तथा असत् रूप नहीं कहा गया है। वास्तव में इस सत् (अस्ति) और असत् (नास्ति) का परस्पर अविनाभाव संबंध है- एक के विना दूसरे का अस्तित्व बनता नहीं। इसी से सत् के स्पष्टीकरण में उसके सत्-असत् दोनों रूपों को दिखाया गया है।

यहाँ सत् के विषय में स्वामी समंतभद्र की **प्रतिक्षण-ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मक-दृष्टि से** भिन्न उन्हीं की स्वद्रव्यादि-चतुष्टय की दृष्टि को अपनाया गया है; जैसा कि उनके देवागमगत निम्न वाक्य से स्पष्ट जाना जाता है-

सदेव सर्व को नेच्छेत्स्वरूपादि-चतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते।। 15।।

इसमें बतलाया है कि सर्वद्रव्य स्वरूपादि-चतुष्टय की दृष्टि से-स्वद्रव्य क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से-सत्‌रूप ही हैं और पररूपादि-चतुष्टय की दृष्टि से परद्रव्य क्षेत्र-काल-भाव की विवक्षा से-असत्‌रूप ही हैं। यदि ऐसा नहीं माना जायेगा तो सत्-असत् दोनों में किसी की भी व्यवस्था नहीं बन सकेगी; क्योंकि दोनों परस्पर अविनाभाव-संबंध को लिये हुए हैं- एकके बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं बनता। स्वरूपादि-चतुष्टरूप सत्द्रव्य यदि परद्रव्यादि-चतुष्टय केअभाव को अपने में लिये हुए नहीं है तो उसके स्वरूप की कोई प्रतिष्ठा ही नहीं बनती और न तब संसार में किसी वस्तु की व्यवस्था ही बन सकती है।

यन्न चेतयते किञ्चिन्नाऽचेतयेत् किञ्चन।
यच्चेतयिष्यते नैव तच्छरीदादि नाऽस्मयहम्।। 155।।

जो कुछ चेतता-जानता नहीं, जिसने कुछ चेता-जाना नहीं और जो कुछ चेतेगा- जानेगा नहीं वह शरीरादिक मैं नहीं हूँ।'

व्याख्या-पिछले पद्य (153) में चिदहं और उससे कुछ पूर्ववर्ती पद्य (159) में चिदहं तदचेतनम् इन पदों का जो प्रयोग हुआ है, उन्हीं के स्पष्टीकरण को लिये हुए

यह पद्य है। इसमें शरीर को लक्ष्य करके कहा गया है कि वर्तमान में वह कुछ जानता नहीं, भूतकाल में उसने कभी कुछ जाना नहीं और भविष्य में वह कभी कुछ जानेगा नहीं, ऐसी जिसकी वस्तुस्थिति है वह शरीर मैं (आत्मा) नहीं हूँ। आदि शब्द से तत्सादृश और भी जितने अचेतन (जड़) पदार्थ हैं उनरूप भी मैं (आत्मा) नहीं हूँ।

यदचेतत्तथा पूर्व चेतिष्यति यदन्यथा।
चेततीत्थं यदत्राऽद्य तच्चिद्द्रव्यं समस्म्यहम्।। 156

'जिसने पहले उस प्रकार से चेता-जाना है, जो (भविष्य में) अन्य प्रकार से चेतेगा-जानेगा और जो आज यहाँ इस प्रकार से चेतता-जानता है वह सम्यक् चेतनात्मक द्रव्य मैं हूँ।

व्याख्या- यहाँ चिद्द्रव्य की सत्दृष्टि को प्रधान कर कहा गया है कि जिसने भूतकाल में उस प्रकार जाना, जो भविष्य में अन्य प्रकार जानेगा और जो वर्तमान में इस प्रकार जान रहा है वह चेतनद्रव्य मैं (आत्मा) हूँ। चेतना की धारा आत्मा में शाश्वत चलती है, भले ही आवरणों के कारण वह कहीं और कभी अल्पाधिक रूप में दब जाय; परंतु उसका अभाव किसी समय भी नहीं होता। कुछ प्रदेश तो उसमें ऐसे हैं जो सदा अनावरण ही बने रहते हैं और इसीलिए आत्मा चित्स्वरूप की दृष्टि से सदा चित्‌रूप ही है, इसी आशय को लेकर यहाँ उक्त प्रकार की भावना की गयी है।

स्वयमिष्टं न च द्विष्टं किन्तूपेक्ष्यमिदं जगत्।
नाऽहमेष्टा न च द्वेष्टा किन्तु स्वयमुपेक्षिता।।157।।

'यह दृश्य जगत् न तो स्वयं- स्वभाव से इष्ट है- इच्छा तथा राग का विषय है, **न द्विष्ट है** अनिष्ट अथवा द्वेष का विषय है, **किंतु उपेक्ष्य है** उपेक्षा का विषय है। **मैं स्वयं-स्वभाव से एष्टा-** इच्छा तथा राग करने वाला **नहीं हूँ; न द्वेष्टा-** द्वेष तथा अप्रीति करने वाला नहीं- **हूँ; किंतु उपेक्षित हूँ-** उपेक्षा करने वाला समवृत्ति हूँ।'

व्याख्या- पिछले एक पद्य(152) में आत्माने अपने ज्ञानात्मक स्वरूप को देखते हुए जो परद्रव्यों से उदासीन होने की भावना की है उसी के स्पष्टीकरण को लिये हुए यह भावना-पद्य है। इसमें वस्तु-स्वभाव की दृष्टि को लेकर यह भावना की गयी है कि यह दृश्य जगत्- जगत् का प्रत्येक पदार्थ-न तो स्वयं स्वभाव से इष्ट है और न अनिष्ट। यदि कोई भी पदार्थ स्वभाव से सर्वथा इष्ट या अनिष्ट हो तो वह सबके लिए और सदा के लिए इष्ट या अनिष्ट होना चाहिए; परंतु ऐसा नहीं है। एक ही

पदार्थ जो एक प्राणी के लिए इष्ट है वह दूसरे के लिए अनिष्ट है; एक रूप में जो इष्ट है दूसरे रूप में वह अनिष्ट है; एक काल में जो इष्ट होता है दूसरे काल में वही अनिष्ट हो जाता है; एक क्षेत्र में जिसे अच्छा समझा जाता है दूसरे क्षेत्र में वही बुरा माना जाता है; एक भाव से जिसे इष्ट किया जाता है दूसरे भाव से उसी को अनिष्ट कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में कोई भी वस्तु स्वरूप से इष्ट या अनिष्ट नहीं ठहरती। इष्टता और अनिष्टता की यह सब कल्पना प्राणियों के अपने-अपने तात्कालिक राग-द्वेष अथवा लौकिक प्रयोजनादि के अधीन है। यदि ये जगत् के क्षणभंगुर पदार्थ किसी के राग-द्वेष के विषय न बनें तो स्वयं उपेक्षा के विषय ही रह जाते हैं।

इसी तरह आत्मा भी स्वभाव से राग करने वाला (एष्टा) अथवा द्वेष करने वाला (द्वेष्टा) नहीं है। उसमें राग-द्वेष की यह कल्पना तथा विभाव-परिणति परके निमित्त से अथवा कर्माश्रित है। उसके दूर होते ही आत्मा स्वयं उपेक्षित अथवा वीतरागी के रूप में स्थित होता है। उसी रूप में स्थित होने की यहाँ भावना की गयी है।

मत्तः कायादयो भिन्नास्तेभ्योऽहमपि तत्त्वतः।
नाऽहमेषां किमप्यस्मि ममाऽप्येते न किञ्चन।। 158।।

वस्तुतः ये शरीरादिक मुझसे भिन्न हैं, मैं भी इनसे भिन्न हूँ। मैं इन शरीरादिकका कुछ भी (संबंधी) नहीं हूँ और न ये मेरे कुछ होते हैं।

व्याख्या- **यहाँ कायादयः पद में प्रयुक्त आदि शब्द शरीर से संबंधित तथा असंबंधित सभी बाह्य पदार्थों का वाचक है और इसलिए उसमें माता, पिता, स्त्री-पुत्र, मित्र, दूसरे सगे संबंधी, जमीन, मकान, दुकान, घर-गृहस्थी आदि का सामान, बाग-बगीचे, धन-धान्य, वस्त्र-आभूषण, बर्तन-भांडे, पालतू-अपालतू जंतु और जगत् के दूसरे सभी पदार्थ शामिल हैं। सभी पर पदार्थों से ममत्व को हटाने की इस भावना में यह कहकर व्यवस्था की गयी है कि यथार्थता अथवा वस्तु-स्वरूप की दृष्टि से शरीर सहित ये सब पदार्थ मुझसे भिन्न हैं, मैं इनसे भिन्न हूँ, मैं इनका कुछ नहीं लगता और न ये मेरे कुछ लगते हैं।**

श्रौती भावना का उपसंहार

एवं सम्यग्विनिश्चित्य स्वात्मानं भिन्नमन्यतः।

विधाय तन्मयं भावं न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।। 159।।

इस प्रकार (भावनाकार) **अपने आत्मा को अन्य शरीरादि से वस्तुतः भिन्न निश्चित करके और उसमें तन्मय होकर अन्य कुछ भी चिंतन नहीं करे।**

व्याख्या- यहाँ, श्रौती भावना का उपसंहार करते हुए, बतलाया गया है कि इस प्रकार भावना द्वारा स्वात्मा को अन्य सब पदार्थों से वस्तुतः भिन्न निश्चित करके और उसी में लीन होकर दूसरे किसी भी पदार्थ की चिंता न करके चिंता के अभाव को प्राप्त होवें।

चिंता का अभाव तुच्छ न होकर स्वसंवेदनरूप है

चिन्ताऽभावो न जैनानां तुच्छो मिथ्यादृशामिव।

दृग्बोध-साम्य-रूपस्य स्वस्य संवेदन हि सः।। 160

(यह) चिंता का अभाव जैनियों के (मतमें) मिथ्यादृष्टियों के समान तुच्छ अभाव नहीं है; क्योंकि वह चिंता का अभाव वस्तुतः दर्शन, ज्ञान और समतारूप आत्मा के संवेदनरूप है।'

व्याख्या- जैन दर्शन में अभाव को भी वस्तु धर्म माना है, जो कि वस्तु व्यवस्था के अंगरूप है एक वस्तु में यदि दूसरी वस्तु का अभाव स्वीकार न किया जाय तो किसी भी वस्तु की कोई व्यवस्था नहीं बनती। इस दृष्टि से अभाव सर्वथा असत्‌रूप तुच्छ नहीं है, जिसके चिंता के अभाव रूप होने से ध्यान को ही असत् कह दिया जाय। वह अन्य चिंताओं के अभाव की दृष्टि से असत् होते हुए भी स्वात्मचिंतात्मक-स्वसंवेदन की दृष्टि से असत् नहीं है और इसलिए तुच्छ नहीं है। ध्यान के लक्षण में प्रयुक्त निरोध अथवा रोध शब्द का अभाव अर्थ करने पर उसका यही आशय लिया जाना चाहिए, न कि सर्वथा चिंता के अभाव रूप, जिससे ध्यान का ही अभाव ठहरे। अन्य सब चिंताओं के अभाव के बिना एक चिंतात्मक जो आत्मध्यान है वह नहीं बनता।

स्वंसेदन का लक्षण

वेद्यत्वं वेदकत्वं च यस्त्वस्य स्वेन योगिनः।

तत्स्वसंवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवं दृशम्।। 169।।

'योगी के अपने आत्मा का जो अपने द्वारा वेद्यपना और वेदकपना है उसके स्वसंवेदन कहते हैं; जो कि आत्मा का दर्शन रूप अनुभव है।'

व्याख्या - स्वसंवेदन आत्मा के उस साक्षात् दर्शनरूप अनुभव का नाम है जिसमें योगी आत्मा स्वयं ही ज्ञेय तथा ज्ञायकभाव को प्राप्त होता है- अपने को स्वयं ही जानता, देखता अथवा अनुभव करता है। इससे स्वसंवेदन, आत्मानुभवन और आत्मदर्शन ये तीनों वस्तुतः एक ही अर्थ के वाचक है, जिनका यहाँ स्पष्टीकरण की दृष्टि से एकत्र संग्रह किया गया है।

स्वसंवेदन का कोई करणांतर नहीं होता

स्व-पर-ज्ञप्तिरूपत्वान्न तस्य करणान्तरम्।

ततश्चिन्तां परित्यज्य स्वसंवित्यैव वेद्यताम्।। 162।।

'स्व-परकी जानकारी रूप होने से उस स्वसंवेदन अथवा स्वानुभव का आत्मा से भिन्न कोई दूसरा करण- ज्ञाप्तिक्रिया की निष्पत्ति में साधकतम- **नहीं होता। अतः चिंता का परित्याग कर स्वसंवित्ति के द्वारा ही उसे जानना चाहिए।'**

व्याख्या- यहाँ यह बतलाया है कि स्वसंवेदन ज्ञप्ति क्रिया की निष्पत्ति के लिए दूसरा कोई कारण अथवा साधकतम नहीं होता। क्योंकि वह स्वयं स्व-पर ज्ञप्तिरूप है। अतः करणांतर की चिंता को छोड़कर स्वज्ञप्ति के द्वारा ही उसे जानना चाहिए।

स्वात्मा के द्वारा संवेद्य आत्मस्वरूप

दृग्बोध-साम्यरूपत्वाज्जानन्पश्यन्नुदासिता।

चित्सामान्य- विशेषात्मा स्वात्मनैवाऽनुभूयताम्।। 163

'दर्शन, ज्ञान और समतारूप होने से देखता, जानता और वीतरागता को धारण करता हुआ जो सामान्य-विशेष ज्ञानरूप अथवा ज्ञान-दर्शनात्मक उपयोग रूप आत्मा है उसे स्वात्मा के द्वारा ही अनुभव करना चाहिए।'

व्याख्या - यहाँ जिस आत्मा को अपने आत्मा के द्वारा ही अनुभव करने की बात कही गयी है उसके स्वरूप-विषय में यह सूचना की गयी है कि वह दर्शन, ज्ञान

और समतारूप होने से ज्ञाता, दृष्टा तथा उपेक्षिता (वीतराग) के रूप में स्थित है और चैतन्य सामान्य तथा विशेष दोनों रूपों का- दर्शन ज्ञान को लिये हुए है।

कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यो भावेभ्यो भिन्नमन्वहम्।
ज्ञस्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना।। 164।।

'समस्त कर्मज भावों से सदा भिन्न ऐसे ज्ञान स्वभाव एवं उदासीन (वीतराग) आत्मा को आत्मा के द्वारा देखना चाहिए।'

व्याख्या- यहाँ भी स्वसंवेदन के विषयभूत आत्मा के स्वरूप की कुछ सूचना करते हुए उसे जिस रूप में देखने की प्रेरणा की गयी है वह स्वरूप यह है कि आत्मा सदा कर्मजनित समस्त विभाव भावों से भिन्न है- कभी उनसे तादात्म्य को प्राप्त नहीं होता है-ज्ञानस्वभाव है और उदासीन है- वीतरागतामय उपेक्षा भाव को लिये हुए है।

यस्मिन्मिथ्याभिनिवेशेन मिथ्याज्ञानेन चोज्झितम्।
तन्मध्यस्थं निजं रूपं स्वस्मिन्संवेद्यतां स्वयम्।। 165

'जो मिथ्याश्रद्धान तथा मिथ्याज्ञान से रहित है और राग-द्वेष से रहित मध्यस्थ है उस निजस्वरूप को स्वयं अपने आत्मा में अनुभव करना चाहिए।'

व्याख्या - यहाँ भी स्वसंवेद्य आत्मा के स्वरूप की कुछ सूचना की गयी और यह बतलाया गया है कि वह मिथ्यादर्शन तथा मिथ्याज्ञान से रहित है और अपने मध्यस्थ रूप को लिए हुए है, जो कि समता, उपेक्षा अथवा वीतरागतामय है। साथ ही इस रूप आत्मा को स्वयं स्वात्मा में देखने-जानने की प्रेरणा की गयी है।

मेरा विश्वरूप

(चाल : सायोनारा...) (आचार्य कनकनन्दी)

मैं हूँ आत्मा मैं हूँ परमात्मा... जीव तत्त्व होने से।
अभी हूँ मैं आत्मा बनूँ परमात्मा...रत्नत्रय मार्ग से।।
मै हूँ सत्य मैं हूँ परम सत्य...उत्तम द्रव्य होने से।
अभी (हूँ) मैं अशुद्ध, बनूँ मैं शुद्ध...मोक्षमार्ग होने से।
मैं हूँ तत्त्व मैं हूँ पदार्थ...जीव द्रव्य होने से।
स्वयंभू हूँ शाश्वत हूँ मैं...उत्पाद व्यय ध्रौव्य से।। (1)

अनन्त हूँ अनन्त गुणधारी...आदि अन्त से रहित हूँ।
अच्युत हूँ अव्यय हूँ मैं...टंकोत्कीर्ण चैतन्य हूँ।
संसारी हूँ मुक्त भी बनूँ...परिणामी स्वभावी होने से।
भाव व क्रिया युक्त हूँ मैं...अर्थ-व्यञ्जन पर्याय से।। (2)
मेरे अस्तित्व से हूँ सत्य स्वरूप...प्रमेयत्व से हूँ प्रज्ञावान्।
अगुरुलय से अक्षय-अव्यय...अव्याबाध से अपराजय।
साक्षी स्वरूप से (हूँ) ज्ञाता-दृष्टा हूँ...वीतरागी साम्यभावी हूँ।
शुद्ध-बुद्ध-आनन्द स्वरूप हूँ...'कनक' वैश्विक स्वरूप हूँ।। (3)

नन्दौड़ः दि. 23.09.2018 मध्याह्न- 12:32

ध्यायेदनादिसिद्धान्त- प्रसिद्ध-वर्णमातृकाम्।
निः शेषशब्दविन्यास-जन्मभूमिं जगन्नुताम्।। ज्ञानार्णव 38-2

नामध्येय का उपसंहार

इत्यादीन्मन्त्रिणो मन्त्रानर्हन्मन्त्रपुरस्सरान्।
ध्यायन्ति स्पष्टं नामध्येयमवैहि तत्।। 108।। तत्वानु.

इन अर्हं मंत्रपुरस्सर मंत्रों को आदि लेकर और भी मंत्र हैं जिन्हें नामध्येयरूप से मांत्रिक ध्याते हैं, उन सबको भी स्पष्टरूप से नामध्येय समझो।

दूसरे मंत्रों में पापभक्षिणी विद्या का मंत्र सुप्रसिद्ध है और वह इस प्रकार है-

ॐ अर्हन्मुखकमलवासिनि पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्ञानज्वाला सहस्रप्रज्ज्वलिते सरस्वति ममपापं हन हन दह दह क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवरधवले अमृतसम्भवे अमृतंस्रावय स्रावय वं वं हूं हूं स्वाहा।

स्थापना ध्येय

जिनेन्द्रप्रतिबिम्बानि कृत्रिमाण्यकृतानि च।
यथोक्तान्यागमे तानि तथा ध्यायेदशंकितम्।। 109।।

जिनेन्द्र की जो प्रतिमाएँ कृत्रिम और अकृत्रिम हैं तथा आगम में जिस रूप में कही गयी हैं उन्हें उसी रूप में ध्याता निःशंक होकर अपने ध्यान का विषय बनावें- यह स्थापना-ध्येय है।

द्रव्यध्येय

यथैकमेकदा द्रव्यमुत्पित्सु स्थास्नु नश्वरम्।

तथैव सर्वदा सर्वमिति तत्त्वं विचिन्तयेत्।। 190।।

जिस प्रकार एक द्रव्य एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप होता है उसी प्रकार सर्वद्रव्य सदा काल उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप होते रहते हैं, इस तत्त्व को ध्याता चिंतन करे।

याथात्म्य-तत्त्व-स्वरूप

चैतनोऽचेतनो वाऽर्थो यो यथैव व्यवस्थितः।

तथैव तस्य यो भावो याथात्म्यं तत्त्वमुच्यते।। 111।।

जो चेतन या अचेतन पदार्थ जिस प्रकार से व्यवस्थित है उसका उसी प्रकार का जो भाव है उसको याथात्म्य तथा तत्त्व कहते हैं।

व्याख्या- यहाँ अर्थ शब्द द्रव्य का वाचक है, उसी प्रकार जिस प्रकार कि वह स्वामी समंतभद्र के सदिहार्थरूपम् इस वाक्य में उसका वाचक है। उस द्रव्य के मूल दो भेद हैं- एक चेतन, दूसरा अचेतन। कोई भी द्रव्य, चाहे वह चेतन हो या अचेतन, जिस रूप में व्यवस्थित है उस रूप से ही उसका जो भाव है परिणाम है उसको यथात्म्य कहते हैं और उसी का नाम तत्त्व है। जो कि **तस्य भावस्तत्त्वम् इस निरुक्ति को चरितार्थ करता है।**

अनादि-निधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्।

उन्मज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले।। 112।।

'द्रव्य जो कि अनादिनिधन है आदि अंत से रहित है **उसमें प्रतिक्षण स्वपर्यायें जल में जल-कल्लोलों की तरह उपजती तथा विनशती रहती है।'**

व्याख्या- यहाँ द्रव्य का अनादिनिधन विशेषण अपनी खास विशेषता रखता है और इस बात को सूचित करता है कि कोई द्रव्य कभी उत्पन्न नहीं हुआ और न कभी नाशको प्राप्त होगा। हाँ, द्रव्यों जो स्वपर्यायें हैं वे जल में जल कल्लोलों की तरह प्रतिक्षण ऊपर को उठती तथा नीचे को बैठती रहती है, यही द्रव्यका प्रतिक्षण स्वाश्रित उत्पाद-व्यय है, जो उसके लक्षण का अंग बना हुआ है।

स्वपर्यायाः पद भी यहाँ अपनी खास विशेषता रखता है और वह पराश्रित पर्यायों के व्यवच्छेदका सूचक है। जो पर्यायें परके निमित्त से अथवा परके मिश्रण से

उत्पन्न होती हैं उनका स्वपर्यायों में ग्रहण नहीं है; क्योंकि स्वपर्यायें द्रव्य में सदा अवस्थित और इसलिए नित्य होती हैं, भले ही उन्हें उदय, अनुदय तथा उदीर्ण की दृष्टि से भूत, भावी तथा वर्तमान क्यों न कहा जाय।

यद्विवृतं यथापूर्व यच्च पश्चाद्विवर्त्स्यति।

विवर्तते यदत्राऽद्य तदेवेदमिदं च तत्।। 113।।

जो यथापूर्व- पूर्वक्रमानुसार-पहले (गुण-पर्यायों के साथ) **विवर्तित हुआ, जो पीछे विवर्तित होगा और जो इस समय यहाँ विवर्तित हो रहा है वही सब यह (द्रव्य) है और यही उन सबरूप है।'**

व्याख्या - यहाँ द्रव्य का अपने त्रिकालावर्ती गुण-पर्यायों के साथ और गुण-पर्यायों का अपने सदा ध्रौव्यरूप से स्थित रहने वाले द्रव्य के साथ अभेद प्रदर्शित किया गया है- कहा गया है जो वे हैं वही यह द्रव्य है और जो यह है वहीं वे गुण-पर्याय हैं।

सहवृता गुणस्तत्र पर्याया क्रमवर्तिनः।

स्यादेतदात्मकं द्रव्यमेते व स्युस्तदात्मकाः।। 114।।

'द्रव्य में गुण सहवर्ती- एक साथ युगपत प्रवृत्त होने वाले **और पर्यायें क्रमवर्ती-**क्रमशः प्रवृत्त होने वाली हैं। **द्रव्य इन गुण-पर्यायात्मक** है और ये गुण-पर्याय द्रव्यात्मक हैं- द्रव्य से गुण-पर्याय जुदे नहीं और न गुण-पर्यायों से द्रव्य कोई जुदी वस्तु है।'

व्याख्या- गुणपर्ययवद् द्रव्यम् इस वाक्य के द्वारा द्रव्य उसे बतलाया है जो गुणों तथा पर्यायों को आत्मसात् किये हुए हो। इस पद्य में गुणों तथा पर्यायों का स्वरूप बतलाने के साथ-साथ इस बात को स्पष्ट किया गया है कि कैसे द्रव्य गुण-पर्यायवान् है। जो द्रव्य में सदा सहभावी हैं और एक साथ प्रवृत्त होते हैं उन्हें गुण कहते हैं; जो द्रव्य में क्रमभावी हैं और क्रमशः द्रव्य इन गुण-पर्यायात्मक हैं- एक से दूसरा जुदा नहीं; इसी से द्रव्य को गुण-पर्यायवान् कहा गया है।

एवंविधमिदं वस्तु स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मकम्।

प्रतिक्षणमनाद्यन्तं सर्व ध्येयं यथास्थितम्।। 115।।

'इस प्रकार यह द्रव्य नामकी वस्तु जो प्रतिक्षण स्थिति, उत्पत्ति और व्ययरूप है तथा अनादि-निधन है वह सब यथास्थित रूप में ध्येय है ध्यान

का विषय है।'

व्याख्या- यहाँ, द्रव्य ध्येय के कथन का उपसंहार करते हुए यह सार निकाला है कि प्रत्येक द्रव्य प्रतिक्षण ध्रौव्य, उत्पाद और व्ययरूप है, आदि-अंत से रहित है और जिस रूप में अवस्थित है उसी रूप में ध्यान का विषय है- अन्य रूप में नहीं।

भाव-ध्येय

अर्थ-व्यञ्जन -पर्याया मूर्तामूर्ता गुणाश्च ये।
यत्र द्रव्ये यथाऽवस्थास्तांश्च तत्र तथा स्मरेत्।। 116

'जो अर्थ तथा व्यंजनपर्यायें और मूर्तिक तथा अमूर्तिक गुण जिस द्रव्य में जैसे अवस्थित हैं उनको वहाँ उसी रूप में ध्याता चिंतन करे- यह भावध्येय का स्वरूप है।'

व्याख्या - गुणपर्यायवान् को द्रव्यध्येय बतलाया है उसी में मुख्यतः गुण तथा पर्याय के ध्यान को भावध्येय सूचित किया है। यहाँ भावध्येय को स्पष्ट करते हुए पर्यायों के दो भेद किये हैं- एक अर्थ पर्याय और दूसरी व्यंजन पर्याय। ये पर्यायें और गुण, जो सामान्य तथा विशेष की दृष्टि से अनेक प्रकार के होते हैं, जिस द्रव्य में जहाँ जिस प्रकार से अवस्थित हों उस द्रव्य में वहाँ उसी प्रकार से उनका जो ध्यान है वह सब भावध्येय है।

अर्थपर्यायें छहों द्रव्यों में होती हैं, जब कि व्यंजन पर्यायें केवल जीव तथा पुद्गल द्रव्यों से ही संबंध रखती हैं। ये व्यंजनपर्यायें स्थूल, वाग्गम्य, प्रतिक्षण विनाश रहित तथा कालांतरस्थायी होती हैं, जबकि अर्थपर्यायें सब सूक्ष्म तथा प्रतिक्षणक्षयी होती हैं।

द्रव्य के छह भेद और उनमें ध्येयतम आत्मा

पुरुषः पुद्गलःकालो धर्माऽधर्मा तथाऽम्बरम्।
षड्विधं द्रव्यमाख्यातं तत्र ध्येयतमः पुमान्।। 117।।

पुरुष (जीवात्मा), पुद्गल, काल धर्म, अधर्म और आकाश ऐसे छह भेदरूप द्रव्य कहा गया है। उन द्रव्यभेदों में सबसे अधिक ध्यान के योग्य पुरुषरूप आत्मा है।'

व्याख्या - द्रव्य के जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ऐसे मूल छह भेद जैनागम में प्रसिद्ध हैं। यहाँ जीवद्रव्य को पुरुष शब्द के द्वारा उल्लेखित किया गया है। इसके दो कारण जान पड़ते हैं। एक तो जीव और उसका पर्यायनाम आत्मा दोनों शब्दशास्त्र की दृष्टि से पुंलिग हैं। दूसरे आगे पुरुषविशेषों- पंचपरमेष्ठियों को मुख्यतः भिन्न-ध्यान का विषय बनाना है। अतः प्रकृत में सहजबोध की दृष्टि से जीव के स्थान पर पुरुष शब्द का प्रयोग किया गया है। अगले पद्य में इसी पुरुष को आत्मा शब्द का द्वारा उल्लेखित किया ही है।

इन छह द्रव्यों में जीवद्रव्य चेतनामय चेतन और शेष चेतनारहित अचेतन हैं; पुद्गल द्रव्य मूर्तिक और शेष अमूर्तिक हैं। कालद्रव्य प्रदेश प्रचय से रहित होने के कारण अकाय है और शेष प्रदेश प्रचय से युक्त होने के कारण अस्तिकाय कहे जाते हैं। परमाणु रूप पुद्गल द्रव्य यद्यपि एकप्रदेशी है, परंतु नानास्कंधों का कारण तथा उनसे मिलकर स्कंधरूप हो जाने के कारण उपचार से सकाय कहा जाता है। जीव और पुद्गल सक्रिय हैं, शेष सब निष्क्रिय हैं; ये ही दोनों द्रव्य कंथचित् विभावरूप भी परिणमते हैं, शेष सदा स्वाभाविक परिणमन को ही लिये रहते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य संख्या में एक-एक ही हैं, कालद्रव्य असंख्यात हैं; जीवद्रव्य अनंत हैं और पुद्गल द्रव्य अनंतानंत हैं। जीव, पुद्गल दोनों द्रव्यों में संकोच-विस्तार संभव है, शेष द्रव्यों में वह नहीं होता, अथवा उसकी संभावना नहीं। आकाश एक अखंड द्रव्य होते हुए भी उसके दो भेद कहे जाते हैं- लोकाकाश और अलोकाकाश। आकाश के जिस बहुमध्य प्रदेश में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पाँच द्रव्य अवलोकित होते हैं उसे लोकाकाश और शेष को अलोकाकाश कहते हैं। धर्म और अधर्म दो द्रव्य सदा सारे लोकाकाश को व्याप्त कर स्थिर रहते हैं, जबकि दूसरे द्रव्यों की स्थिति वैसी नहीं। कालाणुरूप कालद्रव्य तो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में स्थिर है और इसलिए लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं उतने ही कालद्रव्य हैं। एक जीव की अपेक्षा जीव लोक के एक असंख्यातवें भाग से लेकर दो आदि असख्येय भागों में व्याप्त होता है और लोकपूर्ण-समुद्घात के समय सारे लोकाकाश को व्याप्त कर तिष्ठिता है। नाना जीवों की अपेक्षा सारा लोकाकाश जीवों से भरा है। पुद्गल द्रव्य के अणु और स्कंध दो भेद हैं। अणु का अवगाहन क्षेत्र आकाश का एक प्रदेश हैं, द्रव्यणुकादिरूप स्कंधों का अवगाह्य क्षेत्र लोकाकाश के द्विप्रदेशादिकों में है।

आत्मद्रव्य सर्वाधिक ध्येय क्यों ?

सति हि ज्ञातरि ज्ञेयं ध्येयतां प्रतिपद्यते।

ततो ज्ञानस्वरूपोऽयमात्मा ध्येयतमः स्मृतः।। 118।।

ज्ञाता के होने पर ही ज्ञेय ध्येयता को प्राप्त होता है। इसलिए ज्ञानस्वरूप यह आत्मा ही ध्येयता को प्राप्त होता है। इसलिए ज्ञानस्वरूप यह आत्मा ही ध्येयतम- सर्वाधिक ध्येय हैं।

व्याख्या-आत्मा सबसे अधिक ध्येय क्यों हैं ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए ही प्रस्तुत पद्य की सृष्टि हुई जान पड़ती है। उत्तर बहुत साफ दिया गया है जिसका स्पष्ट आशय है कि जब कोई भी ज्ञेय वस्तु ज्ञाता के बिना ध्येयता को प्राप्त नहीं होती तब यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ही सबसे अधिक महत्त्व का ध्येय ठहरता है।

आत्मद्रव्य के ध्यान में पंचपरमेष्ठी के ध्यान की प्रधानता

तत्राऽपि तत्त्वतः पञ्च ध्यातव्याः परमेष्ठिनः।

चत्वारः सकलास्तेषु सिद्धः स्वामी तु निष्कलः।। 119।।

'आत्मा के ध्यानों में भी वस्तुतः (व्यवहारध्यान की दृष्टि से) पंचपरमेष्ठी ध्यान किये जाने के योग्य हैं, जिनमें चार- अर्हंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी सकल हैं, शरीर सहित हैं- और **सिद्धपरमेष्ठी निष्कल** शरीररहित **हैं तथा स्वामी हैं।'**

व्याख्या- पिछले दो पद्यों में जिस पुरुषात्मा को ध्येयतम बतलाया गया है उसके भेदों में यहाँ मुख्यतः पंच परमेष्ठियों के ध्यान की प्रेरणा की गयी है, जिनमें चार सशरीर और सिद्ध अशरीर हैं। सिद्ध का स्वामी विशेषण अपनी खास विशेषता रखता है और इस बात का स्पष्ट सूचक है कि वस्तुतः सिद्धात्मा ही स्वात्मसंपत्ति का पूर्णतः स्वामी होता है- दूसरा कोई नहीं होता।

मैं ही मेरा कर्त्ता-भोक्ता-अन्य का नहीं

(सदगुरु बनूँ-दादागीरी न करूँ)

(चाल : (1) तुम दिल की...(2) भातुकली च्या... -आचार्य कनकनन्दी

मैं ही कर्त्ता मैं ही भोक्ता, अन्य का नहीं (मैं) कर्त्ता भोक्ता।
सिद्ध सम (है) मेरा शुद्ध स्वरूप, मैं बनूँ शुद्ध ज्ञाता (व) दृष्टा।। 1।।

विश्वकल्याण की भावना भाऊँ मैत्री-प्रमोद-कारूण्य-माध्यस्थ भाऊँ।
अहंकार-ममकार कुभाव त्यागूँ, सोलहकारण भावना अनुप्रेक्षा भी भाऊँ।।2।।

दर्पण सम सदा ज्ञानी मैं बनूँ, ज्ञेय का मैं कर्त्ता-भोक्ता न बनूँ।
पर रूप परिणमन न होना संभव, परिणमन के भाव मोहात्मक कुभाव।। 3।।

नव कोटि से साम्यभावी मैं बनूँ, प्रमोद भाव से गुणानुमोदना करूँ।
परहित हेतु मार्गदर्शक भी बनूँ, परसुधार का ठेकादार न बनूँ।। 4।।

परनिमित्त भी मैं दोषी न बनूँ, संकल्प-विकल्प-संक्लेश न करूँ।
स्व पर प्रकाशी दीपक सम बनूँ, स्व पर दाहक दावानल न बनूँ।। 5।।

अन्य का जिम्मेदार भी न बनूँ, अन्य के उत्तरदायी अन्य ही मानूँ
विषभक्षक हेतु विष न पाऊँ, विष से दूर हेतु उपाय कहूँ।। 6।।

रावण-कंस-हिटलर सम न बनूँ, डॉक्टर वैद्य-गुरु समान बनूँ।
पंकज सम पंक से निर्लिप्त रहूँ, जोंक सम परदोषग्राही न बनूँ।।7।।

दीपक सम बनूँ धुआँ न बनूँ, आदर्श बनूँ परोपदेशी न बनूँ।
अन्य के उत्तरदायी का कर्त्ता न बनूँ, अन्य के अधिकार चोरी न करूँ।।8।।

सनम्रसत्यग्राही साम्य मैं बनूँ, गुणग्रहण हेतु सदा तत्पर बनूँ।
आत्म विशुद्धि से आत्म विकास करूँ, आत्मस्वरूप 'कनक' शीघ्र मैं पाऊँ।।9

नन्दौड़ 23.09.2018 अपराह्न 06:10 (पर्युषण पर्व)
(यह कविता ब्रायन ट्रेसी की ''अधिकतम सफलता' पुस्तक से प्रभावित है।)

सन्दर्भ -

प्राथमिक साधक व निष्ठित साधक में अन्तर

(प्राथमिक साधक को कथंचित् बाह्य में सुखाभास होता, निष्ठित साधक को आत्मा में सुख अनुभव होता)

सुखमारब्ध्ययोगस्य बहिर्दुःखमथाऽऽमनि।

बहिरेवाऽसुखं सौख्यमध्यात्मं भावितात्मनः।। 52

पद्य भावानुवाद- (चाल : आत्मशक्ति...)
प्राथमिक साधक अन्तरात्मा को पूर्व संस्कार से बाह्य में होता सुखाभास।

निष्ठित साधक अन्तरात्मा को बाह्य में दुःख अन्तरंग में सुख।। (1)

समीक्षा-

पूर्व संस्कार के कारण अन्तरात्मा में, जब तक न होती दृढ़ आत्मसाधना।
बाह्य में सुखाभास होता,यथा ख्यातिपूजा लाभ(प्रसिद्धि) की भावना।। (2)

किन्तु जो सतत आत्मसाधना से, स्व-आत्मा में स्थिर होते जाते।
वे (उन्हें) बाह्य ख्यातिपूजा लाभ से परे,आत्मसाधना से सुखानुभव करते हैं।।

यथा शिशु-बालकों को धुली-मिटी में, आनन्द अनुभव होता है।
प्रौढ़ व वृद्ध होने पर धूली-मिट्टी से, आनन्द न होता है।। (4)

पूज्यपाद द्वारा प्रतिपादित तथ्य मुझे (सूरी कनकनन्दी) सत्य-तथ्य अनुभव होता है।
निस्पृह निराडम्बर समता-शान्ति से, बाह्य से अधिक आनन्द होता है।। (5)

नव कोटि से स्वात्म भावना ही सर्वोत्तम

(राग : तुम दिल की धड़कन...)

उत्तमा स्वात्मचिन्तास्यान्मोहचिन्ता च मध्यमा।
अधमा कामचिन्तास्यात्, परचिन्ताऽधमाधमा।। (परमानंद स्तोत्र)

हिन्दी - उत्तम स्वात्म चिन्ता है, मोह चिन्ता है माध्यमा।
अधमा काम चिन्ता है, पर चिन्ता अधमा-अधमा।।

अविद्याभिदुरं ज्योति, परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभि।। (49) इष्टोपदेश

हिन्दी - अज्ञान नाशक ज्ञान प्रकाशक, आत्म ज्योति है अति महान्।
उसके लिए ही करो जिज्ञासा, उसे ही चाहो उसे ही पाओ।।

तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत् तदिच्छेत्तत्परो भवेत।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।। (53)

हिन्दी-

उसे ही बोलो उसे ही पूछो, उसे ही चाहो उसे ही पाओ/(वैसे ही बनो)।।
जिससे अज्ञान रूप को त्यागकर,विद्यामय रूप पाओ/(विद्यामय रूप बनो)।

समीक्षा- आत्मचिन्ता है सबसे उत्तम, जिससे मोह का होता विनाश।

जिससे होता है आत्मविश्वास, ज्ञान चारित्र का भी होता विकास।।
इसे ही कहते हैं रत्नत्रय जो, मोक्ष के कारण महान्।
आत्मज्ञान व आत्मध्यान के माध्यम से मानव बनो है भगवान्।।
मोहचिन्ता को मध्यम कहा,मोह जानकर उसका त्याग।
बिन जानते दोष गुणन को, कैसे ग्रहण व कैसे हो त्याग।।
अधम कामचिन्ता है जिससे, आसक्ति, की होती है वृद्धि।
तृष्णा उत्पादक व बंधकारक, संसार चक्र की होती (है) वृद्धि।।
परचिन्ता है अधमा-अधमा, पर हेतु जो रागद्वेष करे।
पर निन्दा अपमान करे व ईर्ष्या घृणा व मोह करे।।
इससे होते है वाद-विवाद, कलह विसंवाद युद्ध हत्या।
होते है अनेक अनर्थ काम, अतएव पर चिन्ता अधमाधमा।।
परन्तु अज्ञानी मोही जीव, करते हैं विपरीत भाव व काम।
आत्मचिन्ता तो नहीं करते, शेष तीनों चिन्ता के करते काम।।
अष्टमद सप्त व्यसन सेवते, करते क्रोध लोभ माया/(भोग)।
आत्म चिन्तक को गलत मानकर, बाँधते पाप घोरतम।।
गुण-गुणी निन्दक होते महापापी, बाँधते वे घोर घाति कर्म।
जिससे संसार में मिले नाना दुःख, अतएव अकरणीय पाप कर्म।।
गुण-गुणी प्रशंसा व अनुमोदना से, होता है पाप कर्म क्षीण।
अतएव आत्मगुण-गुणी प्रशंसा, करने हेतु 'कनक' करे सदा मन।

आत्म-सम्बोधन से मुझे प्राप्त शुभ व लाभ

(चाल : अच्छा सिला...) -आचार्य कनकनन्दी

सतत आत्म सम्बोधन मैं करूँ...गुण-दोष समीक्षा स्वयं की करूँ...
आत्मविश्लेषण से आत्मसुधर करूँ...समता-शांति से आत्म-विकास करूँ...(स्थायी)...

मैं हूँ सच्चिदानन्द स्वरूप...द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित रूप...
राग-द्वेष-मोहादि मय विकार रूप...आत्म-सम्बोधन में होता यह स्वरूप...
मुझे इस से लाभ अनेक होते...स्व-मूल्यांकन से भी गुण बढ़ते...
दीन-हीन-अहंकार भाव न होते...प्रतिस्पर्द्धा-ईर्ष्या भाव नहीं जन्मते...(1)

अन्य का अंधानुकरण कभी न करूँ...आदर्श अनुकरण मैं अवश्य करूँ...
दूसरों के दोषों से शिक्षा मैं लहूँ...दोषों से प्रभावित कभी न बनूँ...
अपेक्षा-उपेक्षा से निर्लिप्त रहूँ...प्रतीक्षा रहित मैं आगे ही बढ़ूँ...
संकल्प-उपेक्षा से निर्लिप्त रहूँ...प्रतीक्षा रहित मैं आगे ही बढ़ूँ...
संकल्प-विकल्प से मैं निवृत्त रहूँ...संक्लेश द्वंद्व से विरक्त रहूँ... (2)

श्रेष्ठता दिखावे का न प्रयत्न करूँ...स्वयं के व्यक्तित्व को ही आदर्श करूँ...
इसी हेतु मोल-तोल कभी न करूँ...स्वयं के व्यक्तित्व को ही आदर्श करूँ...
अन्य की निन्दा से मैं नीच न बनूँ...अन्य की श्रेष्ठता से ईर्ष्या न करूँ...
अन्य की नीचता से स्व को श्रेष्ठ न मानूँ...अन्य के दुःखों से सुखी न बनूँ...(3)

अन्य से क्षमा भाव यथा मैं धरूँ...तथाहि स्व-उपकार सदा मैं करूँ...
स्वयं की वञ्चना-हिंसा तथा न करूँ...स्वयं को प्रताड़ना-अपमान न करूँ...
स्व-परमात्मा की पूजा-प्रशंसा करूँ...उसकी प्रसन्नता हेतु प्रयत्न करूँ...(4)...

स्वयं को रेखा को मैं चढ़ाता चलूँ...अन्य की रेखा को न विकृत करूँ...
स्वयं को प्रकाशित मैं करता चलूँ...अन्य के दीपको को भी जलाता चलूँ...
अन्य जन तो परोपदेश ही करते...स्वयं को संबोधित भी नहीं करते...
आत्म-संबोधन मेरा न समझ पाते...आत्म-संबोधन को अहंकार मानते...(5)

प्रसिद्धि/(आत्म प्रशंसा) हेतु धन-जन न लगता...समय शक्ति का दुरुपयोग न होता...

विज्ञान पत्रिका व होर्डिंग के बिना...आध्यात्मिक-संतोष होता फोटो के बिना...
इसी से अनुशासी-स्वावलंबी मैं बनूँ...चंदा-चिट्ठा-याचना किसी से न करूँ...
ध्यान-अध्ययन-चिंतन भी होता...आत्म-संबोधन 'कनक' अतः करता...

मैं ही मेरा सर्वस्व

मैं ही मेरे सत्य-धर्म-यम-नियम-प्रतिज्ञा
प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-संवर-निर्जरा-मोक्ष

(चाल: 1. कसमे वादे...) -आचार्य कनकनन्दी

मैं ही मेरा परम सत्य हूँ...मैं ही मेरा धर्म हूँ...
मैं ही मेरे यम-नियम हूँ...मैं ही मम सर्वस्व हूँ...(ध्रुव)...

मेरे गुण ही मुझमें स्थित है...कर्म से हुए हैं विकृत...
स्व-स्वभाव की प्राप्ति हेतु...कर रहा हूँ मैं पुरुषार्थ...
मैं ही मेरा रत्नत्रय हूँ... मैं ही मेरा मोक्षमार्ग...
मैं ही मेरा रत्नत्रय हूँ... मैं ही मेरा मोक्षमार्ग...
मैं ही सँवर-निर्जरा हूँ...मैं ही मेरा मोक्ष (भी) हूँ...(1)
इस हेतु ही मेरे यम-नियम...इस हेतु लक्ष्य-प्रतिज्ञा है...
आलोचना व प्रतिक्रमण भी...प्रत्याख्यान भी इस हेतु...
परिणमन करूँ नवकोटि से...मन-वचन-काय-कृत से...
कारित व अनुमत मैं हूँ...मेरे अभाव से न सम्भव है... (2)...
मेरे अभाव से सब जड़ है...जड़ में नहीं धर्म है...
वस्तु स्वभाव धर्म होने से...मैं चैतन्यमय धर्म हूँ...
''इच्छामि भंते'' से /(में) प्रतिज्ञा करूँ...''मिच्छा में दुक्कडं'' प्रतिक्रमण
''छेदोवट्ठाणं होदु मज्झं'' से/(में)...दोषों का करूँ मैं परिहरण...(3)
''समारूढ ते मे भवतु'' से /(में)...धर्म-स्थित स्वयं को करूँ...
''अभाविय भावेमि'' से /(में) मैं...अभावित स्व/(मैं) की भावना करूँ...
''भवियं च ण भावेमि'' से(मैं)...भावित परभाव न भाऊँ...
ये ही संवर-निर्जरा-मोक्ष...सभी में मैं ही मैं ही रहूँ...(4)
इससे भिन्न सभी मैं नहीं हूँ...सचित्त-अचित या मिश्र हो...
मूर्तिक या अमूर्तिक द्रव्य हो...सब से भिन्न में एकला हूँ...
''अहमेक्को खलु सुद्ध'' मैं हूँ...ज्ञान दर्शन सुख वीर्य मय...
''आदा पच्चक्खाणे'' हूँ मैं...''आदा में संवरे जोगे''(5)...
''सेसा में बहिरा भावा'' है...''सव्वे संजोग लक्खणा' है...
यह है मेरा निश्चय रूप...'कनक' का लक्ष्य स्व-स्वरूप...(6)...

मेरी आत्माश्रित धर्म साधना

(धन-जन-मान-नाम-संकीर्ण धर्म आश्रित से परे मैं (कनक सूरी) आत्माश्रित धर्म कर रहा हूँ)

(चाल: मन रे! तू काहे..., सायोनारा...) -आचार्य कनकनन्दी

'कनक' तू! आत्मकल्याण करऽऽ

द्रव्यक्षेत्रकालभावानुसार...स्व-आश्रित धर्म तू करऽऽ।। (ध्रुव)
वस्तु स्वभावमय धर्म होने से...तेरा धर्म तुझ में ही स्थितऽऽ
द्रव्य-भाव-नोकर्म- आधीन से...तेरा धर्म हुआ सुप्त विकृतऽऽऽ
कर्मातीत तेरा स्व/(आत्मा) धर्मऽऽ।। कनक...(1)

स्वतंत्र-स्वाधीन-स्वधर्म-सुधर्म...आत्मधर्म-मोक्ष-परिनिर्वाणऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-आनन्द व सच्चिदानन्द...अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्यऽऽ
इत्यादि तेरे धर्म के ही सुनामऽऽ।। कनक...(2)

धन-जन-मान परे तेरा स्वधर्म...तीर्थंकर भी त्यागते राज्य-वैभव
यदि धनादि से होता परम धर्म...शान्ति-कुन्थु-अरह क्यों त्यागे वैभव
तीनों ही ये तीर्थंकर-चक्री-कामदेवऽऽ।। कनक...(3)

साधु बनकर एकान्त-मौन-निस्पृहता से...करते स्वआत्मा का शोध बोध।
बाह्य प्रभावना व प्रवचन भी न करते...मन्दिर-मूर्ति-धर्मशालादि निर्माण
इनके स्वामीत्व त्याग से बने श्रमणऽऽ।। कनक...(4)

त्याग को पुनः न ग्रहण करने योग्य... त्यागे हुए भोजन भी न ग्रहण योग्य
धन-जनादि आश्रित धर्म होता पराधीन...संकल्प-विकल्प-संक्लेश पूर्णऽऽ
याचना-दबाव-प्रलोभन-भयपूर्णऽऽ।। कनक...(5)

इससे तेरा होगा आत्मपतन...होंगे प्रदूषित भी मूल-उत्तरगुणऽऽ
समता-शांति-आत्मविशुद्धि क्षीण...आधि-उपाधि से जराजीर्णऽऽ
इहपरलोक होगा तेरा दुःख पूर्णऽऽ।। कनक...(6)

अपना-पराया-धनी-गरीब में पक्षपात...निन्दा...अपमान व कलह वैरत्व
भद्र गृहस्थ से भी होंगे नीच काम...श्रमिक हो जाओगे न रहोगे श्रमणऽऽ
चक्री से भी पूज्य तू हो श्रमणऽऽ।। कनक...(7)

तेरे आदर्श हैं तीर्थंकर नहीं क्षुद्रजन...'वन्दे तद्गुणलब्धये हेतु करो यत्न'
नकल-प्रतिस्पर्द्धा परे करो आत्मोद्धार-स्व-उद्धार से ही पार होगा संसार
'कनक' बनो सत्य शिव-सुन्दर ऽऽ।। कनक...(8)

बहिरात्मा व अन्तरात्मा के भाव-व्यवहार व फल

शरीरे वाचि चात्मानं सन्धते वाक्शरीरयोः।
भ्रान्तोऽभ्रान्तःपुनस्तत्त्वं पृथगेषां निबुध्यते।। (54)

पद्यभावानुवाद- (चाल : आत्मशक्ति...)
शरीर-वचन को आत्मा मानने वाला, स्वयं को दोनों में जोड़ता है।
शरीर-वचन को पर (अनात्म) मानने वाला, स्वयं को दोनों से पृथक करता है।

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञानभावनात्।। (55)

भगवान् की शक्ति की उपलब्धि

(चालः 1. आत्मशक्ति...2. क्या मिलिए...) -आचार्य कनकनन्दी

तन में यदि इतनी शक्ति है तो, मन में होगी कितनी शक्ति ?
मन में यदि इतनी शक्ति है तो, आत्मा में होगी कितनी शक्ति ?
विद्युत में इतनी शक्ति है तो, परमाणु में होगी कितनी शक्ति ?
संसारी जीवों में इतनी शक्ति है तो, शुद्धात्मा में होगी कितनी शक्ति ?
तीनलोक तीनकाल के सभी जीवों से, अनंन्त गुणित शक्ति सिद्ध की।
तथाहि सुख-ज्ञान आत्मवैभव भी, अनन्त गुणित है सिद्ध के।। (1)
इसलिए तो तीन-तीन पदवी के धारी, शान्ति-कुन्थु व अरहनाथ भी।
समस्त वैभव त्यागकर बने श्रमण, अक्षय-अनन्त सुखादि हेतु ही।। (2)
प्रत्येक जीव में अनन्त आत्म वैभव, कर्मो के कारण हुए सुप्त-गुप्त।
यथा घने बादल के कारण सूर्य न दिखता, कर्म नाश से प्रगट होंगे स्व वैभव।।
पाप से पुण्य की शक्ति अधिक होती, पुण्य से भी अधिक है शुद्धात्मा की।
स्कन्द से अधिक शक्ति-विद्युत् की होती, विद्युत् से भी अधिक शक्ति अणु की
तन-मन से भी स्वास्थ्य-सबल जीव, मरने के बाद तन-मन न होते समर्थ
इस से भी सिद्ध होता आत्म शक्तिशाली, आत्मा की शक्ति से तन-मन संचालित।।
ऐसे महान् शक्तिशाली आत्मा ही, हर शरीर में होता है विद्यमान।
किन्तु अज्ञानी-मोही स्व-आत्मा को न जानते, स्वयं को मानते हैं शरीरमय।।
आत्मविश्वास बिन न आत्मज्ञान होता, जिससे न होता हैं आत्मानुभव।

जिससे जीव अनान्तमय काम करते, अन्याय-अत्याचार से ले भोगोपभोग।।
इतना ही नहीं और भी करते अनर्थ, सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि स्वार्थ हेतु।
धर्म को भी अधर्ममय पालन करते, संकीर्ण-कट्टर-क्रूरता से स्वार्थ हेतु।।
अतएव स्वशुद्धात्मा स्वभाव जानने योग्य, शुद्धात्मा है शुद्ध-बुद्ध-आनन्द।
समता-शान्ति व शुचिता से पूर्ण, अहिंसा-सत्य व अविकार पूर्ण।।
शुद्धात्मा के गुणों को प्राप्त करने हेतु, करणीय धर्म का परिपालन सदा।
जितने अंश में शुद्धात्मा गुण होते प्रगट, उतने अंश में ही जीव होते धार्मिक।
यथा बीज ही अंकुर से बने विशाल वृक्ष, तथाहि भव्यात्मा ही बनते भगवान्।
भगवान् बनने की साधना ही धर्म है,भगवान् बनने हेतु 'कनक' पालता धर्म
नन्दौड़ 24.09.2018 रात्रि 8.17

सन्दर्भ-

यत्रभावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरुवर्तिनी।
यो नयत्यासु गव्यूतिं क्रोशर्धे किं स सीदति।। (4) ईष्टोप

The soul that is capable of conferring the divine status when mediated upon, how for can the heavens be from him ? can the man who is able to carry a load to a distance of two Koses feel tired when carrying it only half a Kos ?

गुरूपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः।
अनन्तशक्तिरात्मायं भुक्तिं मुक्तिं यच्छति।। 196।।
ध्यातोऽर्हसिद्धरूपेण चरमांगस्य मुक्तये।
तद्ध्यानोपात्तपुण्यस्य स एवान्यस्य भुक्तये।। 197।। तत्त्वानु.

पुनः विनेय अर्थात् शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा की भक्ति के बिना केवल व्रतादि से चिर भावित मोक्ष सुख नहीं मिलता है किन्तु व्रतों से संसार के सुख सिद्ध हो जाते हैं। संसार के सुख प्राप्त होने पर चिद्रूप स्वरूप आत्मा में भक्ति विशुद्ध भाव और अन्तरंग अनुराग नहीं होगा और वह आत्मा में भक्ति ही मोक्ष के लिए कारण है। व्रत होते हुए और संसार के सुख सद्भाव होते हुए भी मोक्ष के लिए उत्तम साधन स्वरूप सुद्रव्यादि साध्य अभी दूर है। अतः मध्य में मिलने वाले से स्वर्गादि सुख व्रतादि के द्वारा ही साध्य है। इस प्रकार प्रश्न होने पर आचार्य उसका उत्तर देते हैं कि वह भी नहीं है। व्रतादि का आचरण निरर्थक नहीं होता है। उसी प्रकार आत्म भक्ति

आदि जो तेरे द्वारा की जाती है वह भी असाधु अर्थात् अयोग्य नहीं है। इसे ही स्पष्ट करते हैं-

जिसे आत्मा के विषय में प्रणिधान-अर्थात् भक्ति होने पर शिव अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है वही आत्म भक्ति से भव्यों के लिए स्वर्ग क्या दूर हो सकता है! आत्मध्यान, आत्मभक्ति, आत्मअनुराग के फलस्वरूप प्राप्त पुण्य से यदि मोक्ष सुख मिल सकता है तब स्वर्ग सुख क्या नहीं मिलेगा ? अर्थात् अवश्य स्वर्गसुख उसके लिए निकट है, मिलने योग्य है। तत्वानुशासन में कहा भी है-

जो गुरु के उपदेश को प्राप्त करके जो आत्मध्यान को समाहित चित्त से करता है उसे आनन्द शक्ति सम्पन्न यह आत्मा मुक्ति और भुक्ति को प्रदान करता हैं जो चरम शरीरी है जब वह स्वयं को अरिहंत-सिद्ध रूप से ध्यान करता है तब उसके पुण्य से मोक्ष मिलता है तथा अन्य अचरम शरीर को स्वर्ग सुखादि मिलता है।

उपर्युक्त विषय को दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं। यथा-जो भार वाहक जिस भार को लेकर 2 कोश (4 मील) प्रमाण दूरी को शीघ्र पार कर लेता है वह क्या उस भार को 1/2 कोश लेने में थक जायेगा अर्थात् नहीं थकेगा। सिद्धान्त है कि महाशक्ति में छोटी शक्ति निहित होती है।

समीक्षा-

होतिं सुहावसव-संवर-णिज्जरामर सुहाई विउलाई।
ज्झाण वरस्स फलाइं सुहाणुबंधीणि धम्मस्स।। 56।।
जह वा घण संघात खणेण परणाहा विलिज्जति।
ज्झाणप्प वणोवहया तह कम्म घणा विलिज्जाति।। 57।।

अर्थ :- इस धर्म ध्यान का क्या फल है ?

समाधान :-अक्षपक जीवों को देव पर्याय सम्बन्धी विपुल सुख मिलना उसका फल है और गुण श्रेणी में कर्मों की निर्जरा होना भी उसका फल है, तथा क्षपक जीवों के तो असंख्यात गुण श्रेणी रूप से कर्म प्रदेशों की निर्जरा होना और शुभ कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग का होना उसका फल है। अतएव जो धर्म से अनुप्रेत अतीन्द्रियज देवों में स्व-स्व स्पर्शनादि इन्द्रियों के विषयों में अनुभव से सर्वांगीण आल्हादकारी सुख उत्पन्न होती है। जिस प्रकार राजा के राज्यादि सुख, विरोधी राजादि के आतंक से आतंकित, चित्त विक्षोभकारी होता है उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं होती है। जिस प्रकार

भोगभूमि का सुख पल्योपम प्रमाण दीर्घकाल होता है। स्वर्ग में देव स्व विलासादि से उत्कृष्ट सुख अनुभव करते हैं।

समीक्षा - हमारे नभस्तल में घनघटा, वज्रपात, इन्द्रधनुष, विद्युत प्रकाश, मेघों की गर्जना, धूमकेतु या पुच्छलतारे का उदय, वृष्टि तथा हिमवृष्टि जिस प्रकार अकस्मात् होते हैं उसी प्रकार स्वर्गलोक में देवों का जन्म भी पहले से कोई चिन्ह न होते हुए भी सहसा होता है। वे अत्यन्त रमणीय शय्या (जिसको इसी कारण से उत्पाद शय्या कहा है) पर जन्म लेते हैं तथा जन्म लेते ही एक मुहूर्त के भीतर ही उनका संपूर्ण शरीर परिपूर्ण हो जाता है तथा उसके सब संस्कार भी हो लेते हैं।इसके बाद जब वे उठते हैं तो उनकी क्रान्ति से दशों दिशाएँ जगमगा उठती हैं, वे परम प्रसन्न रहते हैं और आनन्द से अपने पूर्वकृत तप का फल भोगते हैं। जब अन्य देव अकस्मात् ही नूतन देवों को जन्मते देखते हैं तब वे अत्यन्त मंगलमय स्तुतियों तथा उनके पुण्यत्मापन को प्रकट करने वाले 'जय' आदि घोषों को करते हैं। इतना ही नहीं अपितु वे उनके जन्म की सूचना देने के लिये तालियाँ बजाते हैं, पटाखों आदि स्फोटक पदार्थों को फोड़ते हैं, तोपों आदि की सी क्ष्वेणित (धड़ाका) ध्वनि करते हैं तथा बड़े उल्लास के साथ निकट आकर उन्हें प्रणाम करते है। अति आकर्षक श्रेष्ठ सुन्दर शरीरधारिणी वरांगी अप्सराएँ उनके सामने नृत्य करती हैं, वे बड़े हाव-भाव के साथ वीणा का विविध प्रकार से बजाती हैं, मन को मुग्ध कर देने वाले मधुर गीत गाती है, तथा रंग-बिरंगे फूलों को हर तरफ से उनके ऊपर बरसाती हैं। अतीव सुन्दर अलौकिक वस्त्र, माला तथा सुललित भूषणों को धारण किये हुए वे देवलोक-सी परिपूर्ण प्रभुता, असाधारण तथा अविकल सम्पत्ति को प्राप्त करते हैं। उनकी सुख सामग्री विषयक समस्त अभिलाषाएँ मन से सोचते ही पूर्ण हो जाती हैं तथा उनके लिये ही प्रतीक्षा में बैठी अनेक देवाङ्गनाओं के साथ वे दिन रात विहार करते हैं।

स्वभाव से ही उनका तेज अरुणाचल पर विराजमान सूर्य के समान होता है। किसी बाह्य प्रयत्न अथवा संस्कार के बिना ही वे पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान शीतल और कान्तिमान् होते हैं। उनके स्वभावतः सुन्दर अंगों पर किसी अन्य व्यक्ति की सहायता के बिना ही सुन्दर अलंकार दिखलाई देते हैं इसी प्रकार बाहरी सामग्री के बिना ही उनकी देह से अद्भुत सुगन्ध युक्त गन्ध आती है।

जन्म के क्षण से ही उनका रूप अत्यन्त कमनीय और कान्त होता है तथा पूरे

जीवन भर उसमें न ह्रास होता है और न वृद्धि, जो सुगन्धित मालाएँ जन्म के समय उनके गले में पड़ती हैं वे जीवन भर उनका साथ नहीं छोड़ती हैं। जन्म के मुहूर्त भर में ही वह युवावस्था को प्राप्त कर लेते हैं जो कि स्थायी होता है तथा जीवन के प्रथम क्षण से आरंभ कर जीवन भर उन्हें इष्ट पदार्थों की निबोध प्राप्ति होती है।

उनकी परम पूर्ण असाधारण ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ सर्वदा उनकी सेवा करती हैं, उनकी हृदयाकर्षक तथा निर्मल मुस्कान भी कभी रूकती नहीं है, कभी भी म्लान न होने वाली उनकी द्युति भी निरन्तर जगमगाती ही रहती है तथा उन्हें प्राप्त महासुख भी बिना अन्तराल के हर समय उसका रंजन करते हैं।

उनके लहराते तथा घुँघराले सुन्दर बालों का रंग नीलिमा लिए होता है। बुढ़ापा, रोगों, तथा सैकड़ों रोगों से वे सब प्रकार बचे हैं, उनकी देहों में हड्डी नहीं होती है, न उनके कपड़ों पर कभी धूल ही बैठती है। इस प्रकार किसी भी देव को न पसीना आता है और न रज-शुक्र का स्राव ही होता है।

न तो उन्हें नींद आती है, न उनकी आँखे कभी पलक झपकाती हैं और न उन्हें कभी किसी कारण से शोक ही होता है। वे चलते अवश्य है पर उनके पैर पृथ्वी को नहीं छूते हैं, आकाश में भी वे अपने-अपने वाहन विमानों पर आरूढ़ होकर चलते हैं तथा उनके समग्र भोग समस्त प्रकार की त्रुटियों से रहित होते हैं।

देव अपने भुजबल से सुमेरू पर्वत को भी उखाड़ कर फेंक सकते हैं, सारी पृथ्वी को एक हाथ से उठा सकना भी उनके सामर्थ्य के बाहर नहीं है, एक झटके में वे सूर्य-चन्द्र को पृथ्वी पर गिरा सकते हैं। वे अपनी शक्ति से समुद्र को भी सुखाकर चौरस स्थल बना सकते हैं, यदि एक क्षण में वे तीनों लोकों को अपने आकार से व्याप्त करके बैठ सकते हैं तो दूसरे ही क्षण में वे ऐसे अन्तर्धान (विलीन) हो सकते हैं कि उनके रूप का पता लगाना ही असंभव हो जाता है। एक बार पलक मारने के समय में वे पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक चल सकते हैं, वे सर्वशक्तिशाली संसारी अपने आकार इच्छानुसार बदल सकते हैं।

देवों की स्त्रियाँ अपनी विक्रिया ऋद्धि के द्वारा वेशभूषा को अत्यन्त ललित बनाती है, उनके हावभाव भी अतीव मनमोहक होते हैं, कोई ऐसी ललित कला नहीं है जिसमें वे दक्ष न हों, वे एक से एक उत्तम ऋद्धियों और गुणों की खान होती हैं। इस प्रकार अपनी बहुमुखी विविध विशेषताओं के कारण वे देवों के मन को हरण करती

हैं।

उनका रूप ऐसा होता है कि उसे देखकर उनके पतियों के शरीर में ही विकार होता है, वे अपने-अपने प्राणनाथों के अनुकूल ही प्रिय वचन बोलती हैं, उनका वेश एवं शृंगार ऐसा होता है कि जो उनके पतियों की आँखों में समा जाता है तथा उनका मन सदा ही अपने पतियों की आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत रहता है।

अपरिमित सौन्दर्य और कान्ति की स्वामिनी स्वर्गीय अंगनाओं की शारीरिक रचना, वेशभूषा, प्रेमलीला, हाव-भाव आदि का मनुष्य कैसे अविकल रूप से वर्णन कर सकता है क्योंकि नितम्ब, स्तन आदि प्रत्येक अंग की कान्ति की कोई सीमा नहीं है तथा प्रत्येक अंग ही मनोहर होता है।

भवनवासी देवों की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण एक सागर प्रमाण है। व्यन्तरों की आयु का प्रमाण पल्य की उपमा देकर समझाया गया है। ज्योतिषी देवों की आयु का प्रमाण कुछ अधिक एक पल्य ही है। प्रथम स्वर्ग सौधर्म में देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर प्रमाण है, ऐशान कल्प में भी आयु का यही प्रमाण है।

सानत्कुमार, और महेन्द्रकल्प में सात सागर उत्कृष्ट आयु है, ब्रह्म तथा ब्रह्मोत्तर कल्पों में उत्कृष्ट आयु को दस सागर गिनाया है, यतियों के राजा केवली प्रभु ने लांतव तथा कापिष्ठ स्वर्गों में अधिक से अधिक चौदह सागर प्रमाण आयु कही है।

शुक्र, महाशुक्र स्वर्गों में ऐसी ही (उत्कृष्ट) अवस्था का प्रमाण सोलह सागर है, अष्टम कल्प शतार तथा सहस्रार में उत्तम आयु अठारह सागर है, इसके ऊपर आनत-प्रानत कल्पों में बीस सागर है तथा आरण और अच्युत नाम के स्वर्गों में बाइस सागर प्रमाण है।

इसके ऊपर प्रत्येक ग्रैवेयक में क्रमशः एक-एक सागर आयु बढ़ती जाती है अर्थात् अन्तिम ग्रैवयेक में उत्कृष्ट आयु का प्रमाण इकतीस सागर गिनाया है, विजय, वैजयंत, जयन्त और अपराजित कल्पों में बत्तीस सागर है तथा लोक के शिखर पर स्थित सर्वार्थसिद्धि विमान में उत्पन्न देवों की उत्कृष्ट आयु का प्रमाण तैंतीस सागर है।

पूर्वोक्त भवनवासी देवों की जघन्य आयु का प्रमाण (तीन शून्यों के पहले दश वर्ष (10,000 लिखने से) अर्थात् उनकी जघन्य आयु दश हजार वर्ष है। उत्कृष्ट और जघन्य आयु के प्रमाण के विशेषज्ञों ने इसी प्रकार व्यन्तरों की जघन्य आयु को गिनाया है, अर्थात् 10,000 वर्ष बताया है।

जाज्वल्यमान उद्योत के पुंज ज्योतिषी देवों के लोक में उत्पन्न हुए देवों की कम से कम अवस्था प्रमाण एक पल्य का आठवाँ भाग होता है। प्रथम सौधर्म और ऐशान कल्प में जघन्य आयु का प्रमाण एक पल्य है इसके आगे पहिले की उत्कृष्ट आयु ही उसके अगले कल्प में जघन्य आयु हो जाती है। यथा सौधर्म ऐशान कल्प की उत्कृष्ट आयु दो सागर ही सानत्कुमार माहेन्द्र कल्प में जघन्य हो जाती है।

स्वर्ग का सुख भी दुःख रूप ही है

वासनामात्रमेवैतत्सुखं दुःखं च देहिनां।
तथा ह्युद्वेजयंत्येते भोगा रोगा इवापदि।(6)

The experiences of preasures an rains of the Samsari jivas (unemancipated souls) are purely imaginary: for this reason the sense, produced plesures give rise, like disease, to uneasiness on the approach of trouble!

यह जो स्वर्ग में या संसार में इन्द्रिय जनित सुख है वह सुख नहीं है दुःख स्वरूप ही है। यह सुख केवल वासना मात्र है। परमार्थ से उपकार एवं अपकार से रहित देहादि उपेक्षणीय तत्त्व में यह मेरा उपकारी है ऐसा मान करके इष्ट मानना और यह पदार्थ अनुपकारी है इसलिये अनिष्ट मानना इस प्रकार के विभ्रम से उत्पन्न होने वाले संस्कार को वासना कहते हैं। इस इष्टानिष्ट अनुभव के अनन्तर स्वयं में अभिमान का परिणाम उत्पन्न होता है वह सब वासना मात्र है, स्वाभाविक नहीं है। देह को आत्मा मानना अर्थात् देह में रहने वाली देही अर्थात् आत्मा को देह मानना यह बहिरात्म अर्थात् मिथ्यात्वपना है। यह इन्द्रिय जनित सुख केवल उद्वेग को, विक्षोभ को, अशान्ति को उत्पन्न करता है न कि सुख शान्ति को देता है। जिसको लोक में सुख जनन कहते हैं या प्रतीति करते हैं वह इन्द्रियजनित रमणीय भोग ज्वरादि व्याधि के समान रोग है। यह भोग सुख कठिनाई से दूर होने वाली विपत्ति है। इससे मन दुःखी संतापित हो जाता है। कहा भी है :-

मुचांगं ग्लपयस्यलं क्षिप कुतोऽप्यक्षाश्च विद्धात्यदो।
दूरे धेहि न हृष्य एष किमभूरन्या न वेत्सि क्षणम।
स्थेयं चेद्धि निरुद्धि गामिति तवोद्योगे द्विषःस्त्रीक्षिपं
तथाश्लेषक्रमुकांगरागललितालापैर्विधित्सू रतिम्।।

भोग उद्वेग जनक हैं, इस विषय के स्पष्टीकरणार्थ टीकाकार द्वारा उद्धृत एक

पद्य ऊपर दिया गया है। उसका भाव यह है कि पति पत्नी परस्पर अपने सुख में रत थे कि इतने में अकस्मात अर्थ संकटादि की कोई ऐसी भारी घटना घटी, जिससे पति चिन्तित होकर रति-सुख से कुछ उदास हो रहा था, तब पत्नी आलिंगन की इच्छा से अङ्गों को इधर-उधर चलाती हुई रागवश अनेक ललित वचनों से रति करना चाहती है। तब पति उससे कहता है कि तू अङ्गों को छोड़, क्योंकि तू आतापकारिणी है। तू हट जा इससे मेरी छाती-उत्पीड़ित होती है। दूर चली जा, इससे मुझे हर्ष नहीं होता, तब पत्नी ताना मारती हुई कहती है कि क्या अन्य से प्रीति कर ली है। तब फिर पति कहता है कि तू समय को नहीं देखती है। यदि धैर्य है तो अपने उद्योग से इन्द्रियों को वश में रख, इस तरह कहता हुआ वह पत्नी को दूर फेंक देता है। मन के व्यथित होने पर भोग भी उद्वेग उत्पन्न कर देते हैं। और भी कहा है-

''रम्यं हर्म्यं चन्दनं चंद्रपादा वेणुर्वीणा यौवनस्था युवत्यः।
नैते रम्याक्षुत्पिपासार्दितानां सर्वारम्भस्तंदुलाप्रस्थमूलाः।। ''

जो मनुष्य भूख प्यास से पीड़ित है- दुःखी है- उन्हें सुन्दर महल, चन्दन चन्द्रमा की किरणें, वेणु बीनबाजा और युवती स्त्रियाँ रमणीय मालूम नहीं होते हैं क्योंकि जीवों के सभी आरम्भ तंदुलप्रस्थ मूल होते है- घर में चावल विद्यमान है तो ये उपरोक्त सभी बातें सुन्दर प्रतीत होती है अन्यथा नहीं। और भी कहा है-

आतपे धृतिमता सह बध्वा यामिनीविरहिणा विहगेन
सेहिरे न किरण हिमरश्मेर्दुःखिते मनसि सर्व्वमसह्यम्।।

'जो पक्षी धूप में अपनी प्यारी प्रिया के साथ उड़ता फिरता था परन्तु उसे धूप का कष्ट मालूम नहीं होता था, रात्रि को जब उस पक्षी का अपनी प्राण प्यारी के साथ वियोग हो गया तब उसे चन्द्रमा को शीतल किरणें भी अच्छी नहीं लगती, क्योंकि मन के दुःखित होने पर सभी चीजें असह्य हो जाती हैं।'

इससे सिद्ध होता है कि इन्द्रिय जनित सुख वासना मात्र है। आत्मा का स्वाभाविक अनाकुल रूप सुख नहीं है, नहीं तो इस प्रकार लोक में सुखी दिखाई देने वाले भाव दुःख के लिये कारण बनते। इस प्रकार संसार के लिये भी जान लेना चाहिये।

समीक्षा :- जिस प्रकार खुजली के रोगी खुजली को खुजाते समय कुछ सुखाभास होता है परन्तु वह सुख वस्तुतः सुख नहीं है। जब खुजली असहनीय हो

जाती है तब उसको वह खुजलाता है और खुजलाने के बाद उसमें पीड़ा होती है और खुजली बढ़ जाती है। इसी प्रकार मोहकर्म के कारण जीव दुःखी होकर इन्द्रिय जनित सुख को भोगता है और वह जितना-जितना उस सुख को भोगता है उस सम्बन्धी और भी तृष्णावान् होकर दुःखी हो जाता है। इतना ही नहीं, उस भोगासक्ति से वह और भी पाप बांधकर आगामी दुःख को आमंत्रण देता है। कुन्दकुन्द देव ने प्रवचन सार में कहा भी है-

इन्द्रिय सुख के भोगने के कारण

मणुयासुरामरिदा अहिद्दुदा इंदियेहिं सहजेहिं।
असहंता तं दुक्खं रमंति विसएसु रम्मेसु।। 63।।

(मणुआसुरामरिंदा) मनुष्य, भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी तथा कल्पवासी देव, मनुष्यों के इन्द्र चक्रवर्ती राजा तथा चार प्रकार के देवों के सर्व इन्द्र (सहजेहिं) अपने-अपने शरीर में उत्पन्न हुई अथवा स्वभाव से पैदा हुई (इंदिएहिं) इन्द्रियों की चाह के द्वारा (अहिद्दुदा) पीड़ित या दुःखित होकर (तदुक्खंअसहंता) उस दुःख की तीव्र धारा को न सहन करते हुए (रममेसुविषएसु) सुन्दर मालूम होने वाले इन्द्रियों के विषयों में (रमंतति) रमण करते हैं।

इसका विस्तार यह है कि जो मनुष्यादिक जीव अमूर्त अतीन्द्रिय ज्ञान तथा सुख के आस्वाद को नहीं अनुभव करते हुए मूर्तिक इन्द्रियजनित ज्ञान तथा सुख के निमित्त पाँचों इन्द्रियों के भोगों में प्रीति करते हैं उनमें जैसे गरम लोहे का गोला चारों तरफ से पानी को खींच लेता है उसी तरह पुनःपुनः विषयों से तीव्र तृष्णा पैदा होती है। उस तृष्णा को न सह सकते हुये वे विषय भोगों का स्वाद लेते हैं इसलिए ऐसा जाना जाता है कि पाँचों इन्द्रियों की तृष्णा रोग के समान है। तथा इसका उपाय विषय भोग करना यह औषधि के समान है। इसलिए संसारी जीवों को वास्तविक सच्चे सुख का लाभ नहीं होता है।

प्रत्येक जीव का स्वाभाविक स्वरूप सुख स्वरूप है इसलिए प्रत्येक जीव सुख चाहता है, परन्तु अनादिकालीन परतन्त्रता के कारण संसारी जीव सहज आध्यात्मिक सुख को प्राप्त करने में असमर्थ है। उस कर्म परतन्त्रता के कारण शारीरिक, मानसिक एवं इन्द्रिय जनित दुःख होते हैं। उन दुःखों से पीड़ित होकर सुख की इच्छा से मोह से मोहित होकर इन्द्रिय जनित सुख का भोग करते हैं। बिना दुःख कोई इन्द्रिय जनित

सुख को नहीं चाह सकता है। जिस प्रकार प्यासा व्यक्ति पानी को चाहता है, भूखा व्यक्ति भोजन को चाहता है, सर्दी वे पीड़ित व्यक्ति उष्ण वस्तु को चाहता है, रोग से संतप्त व्यक्ति औषध को चाहता है, खुजली रोग से पीड़ित व्यक्ति खुजलाता है उसी प्रकार संसार के जीव विभिन्न दुःखों से पीड़ित होकर उसकी तात्कालिक निवृत्ति के लिए इन्द्रिय जनित सुख चाहते हैं। परन्तु जिस प्रकार प्यासादि से रहित व्यक्ति पानी आदि को नहीं चाहता है उसी प्रकार इन्द्रिय जनित दुःखों के बिना, इन्द्रिय जनित सुखों को नहीं चाह सकता है। यह क्रम स्वर्ग के देवों से स्पष्ट प्रतिभासित हो जाता है क्योंकि नीचे-नीचे के स्वर्ग के देव इन्द्रिय जनित दुःख से अधिक पीड़ित होने के कारण अधिक-अधिक भोग सेवन करते हैं और उत्तरोत्तर (ऊपर-ऊपर) के देव इन्द्रिय जनित दुःख से कम पीड़ित होने के कारण इन्द्रिय जनित भोग कम सेवन करते हैं। जैसे स्वार्थसिद्धि आदि के कुछ विशिष्ट देव प्रवीचार (मैथुन) ही नहीं करते हैं, क्योंकि उन्हें वेद कर्म जनित विशेष पीड़ा का अभाव है। गुणस्थान की अपेक्षा पहले-पहले गुणस्थानों में इन्द्रिय जनित पीड़ा अधिक है और उत्तरोत्तर इन्द्रिय जनित पीड़ा कम होती जाती है। जीव इन्द्रिय जनित भोगों को क्यों भोगना चाहता है इसका आगमोक्त अनुभव परक सुन्दर वर्णन महाप्राज्ञ पं. आशाधरजी ने किया है -

अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुः संज्ञाज्वरातुराः।
शश्वत्स्वज्ञानविमुखा सागरा विषयोन्मुखाः।। 2।।

अनादिकालीन अविद्या रूपी दोष से उत्पन्न हुई चार संज्ञा रूपी ज्वर से पीड़ित, सदा आत्मज्ञान से विमुख और विषयों में उन्मुख गृहस्थ होते हैं।

अनाद्यविद्यानुस्यूतां ग्रन्थसंज्ञामपासितुम।
अपारयन्तः सागराः प्रायो विषयमूर्च्छितः।।3।।

अनादि विद्या के साथ बीज और अंकुर की तरह परम्परा से चली आयी परिग्रह संज्ञा को छोड़ने में असमर्थ और प्रायः विषयों में मूर्च्छित सागर होते हैं।

ज्ञानिसङ्गत्तपोध्यानैरध्यसाध्यो रिपुः स्मरः।
देहात्मभेदज्ञानोत्थवैराग्यैणैव साध्यते।। 32।।

आत्मदर्शी ज्ञानी पुरुषों की संगति, तप और ध्यान से भी वश में न आने वाला यह शत्रु कामदेव शरीर और आत्मा के भेदज्ञान से उत्पन्न हुये वैराग्य से ही वश में आता है।

धन्यास्ते येऽत्यजन् राज्ये भेदज्ञानाय तादृशम्।
धिङ्मादृशकलत्रैच्छातंत्रगार्हस्थ्य दुःस्थितान्।।

भरत चक्रवर्ती आदि जिन पुरुषों ने भेदज्ञान के लिए ऐसे विशाल राज्य को त्याग दिया, वे धन्य हैं। जिसमें स्त्री की इच्छा ही प्राधान्य है उस गृहस्थाश्रम में दुःख पूर्ण जीवन बिताने वाले हमारे जैसे विषयी लोगों को धिक्कार है।

इतःशमश्री स्त्रीचेतः कर्षतो मां जयेन्नु का।
आज्ञातमुत्तरैवात्र जेत्री आ मोहराट्चमूः।। 34।।

इस ओर से प्रशम सुखरूप लक्ष्मी और दूसरी ओर से स्त्री मेरे चित्त को आकृष्ट करती है। इनमें से किसकी जीत होगी? अथवा मुझे निश्चय हो गया कि इन दोनों में से स्त्री ही जीतेगी, जो मोह राजा की सेना है।

चित्रं पाणिगृहीतीयं कथं मा विण्वगाविशत्।
यत्पृथग्भावितात्माऽपि समवैम्यनया पुनः।। 35।।

आश्चर्य है कि यह पाणिगृहीती अर्थात् जिसका मैंने पाणि ग्रहण किया है कैसे मुझ में चारों ओर से घुस गयी। क्योंकि मैं भिन्न हूँ और यह मुझसे भिन्न है इस तत्त्व ज्ञान से बारम्बार विचार करने पर भी मैं फिर उसके साथ अपने को एकमेक कर लेता हूँ।

स्त्रीतश्चित्त निवृत्तं चेन्ननु वित्तं किमीहसे।
मृतमण्डनकल्पो हि स्त्रीनिरीहे धनग्रहः।। 36।।

हे चित्तः! यदि तुम विवेक के बल से स्त्री से निवृत्त हो तो फिर धन की इच्छा क्यों करते हो ? क्योंकि स्त्री के प्रति निस्पृह होने पर धन का अर्जन-रक्षण आदि वैसा ही है जैसे मुर्दे को सजाना।

जहाँ तक इन्द्रिय सुख है वहाँ तक दुःख है-

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जदि तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं।। 64।।

(जेसि विसयेतु रदी) जिन जीवों की विषय रहित अतीन्द्रिय परमात्म स्वरूप से विपरीत इन्द्रियों के विषयों में प्रीति होती है। (तेसिं सब्भावं दुक्खं वियाण) उनको स्वाभाविक दुःख जानों अर्थात् उन बहिर्मुख मिथ्यादृष्टि जीवों को अपने शुद्ध आत्मद्रव्य के अनुभव से उत्पन्न, उपाधि रहित निश्चय सुख से विपरीत स्वभाव से ही दुःख होता है, ऐसा जानो (जदि तं सब्भावं ण हि) यदि वह दुःख स्वभाव से निश्चय करके न

होवे तो (विसयत्थ वावारो णात्थि) विषयों के लिये व्यापार न होवे। जैसे रोग से पीड़ित होने वालों के लिये औषधि का सेवन होता है, वैसे ही इन्द्रियों के विषयों के सेवन के लिये व्यापार दिखाई देता है। इसी से यह जाना जाता है कि उनके दुःख है, ऐसा अभिप्राय है।

कारण के बिना कार्य नहीं होता है, और जहाँ कार्य है वहाँ अवश्य कारण होगा ही। जिस प्रकार जहाँ अग्नि जनित धुआँ है वहाँ अग्नि अवश्य होगी क्योंकि अग्नि के बिना धुआँ होना असम्भव है उसी प्रकार जहाँ विषय सम्बन्धी राग है,भोग है वहाँ उस विषय सम्बन्धी दुःख अवश्य ही होगा। जिस प्रकार एक व्यक्ति रूचि पूर्वक भोजन कर रहा है तो वह व्यक्ति शारीरिक रूप से या मानसिक रूप से होगा। इसी प्रकार कोई औषधि सेवन करता है तो वह किसी न किसी रोग से ग्रसित होगा क्योंकि जीवों की प्रवृत्ति आवश्यकतानुसार ही होती है, अनाावश्यक नहीं होती है। जिस प्रकार जिसके लिये धन की आवश्यकता होती है वह धन उपार्जन करता है परन्तु जिसको धन की आवश्यकता नहीं है वह न धन संचय करता है, न उत्पादन करता है जैसे- निस्पृही (दिगम्बर संत)। परन्तु अज्ञानी, मोही, रागी जीव उस दुःख को ही सुख मान बैठता है एवं उसमें ही रमण करता है। कहा भी है -

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।
तथापि रमतेबालस्तत्रैवाज्ञान भावनात्।। 55।।(समाधितन्त्र)

तत्त्वदृष्टि से यदि विचार किया जाय तो ये पांचों ही इन्द्रियों के विषय क्षणभंगुर हैं, पराधीन है, विषम है, बंध के कारण है, दुःख स्वरूप हैं और बाधा सहित है- कोई भी इनमें आत्म के लिये सुखकर नहीं फिर भी वह अज्ञानी जीव उन्हीं से प्रीति करता है, उन्हीं की सम्प्राप्ति में लगा रहता है और रात-दिन उन्हीं का राग अलापता है। यह सब अज्ञान भाव को उत्पन्न करने वाले मिथ्यात्व संस्कार का ही महात्म्य है।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिनिर्भरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।।22।।

हे कौंतेय! इस त्रिविध नरक द्वार से दूर रहने वाला मनुष्य आत्म के कल्याण का आचरण करता है और इससे परम गति को पाता है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तपन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।। 22।। (गीता)

विषय जनित भोग अवश्य दुःखों के कारण हैं। हे कौन्तेय! वे आदि और अन्त वाले हैं। बुद्धिमान मनुष्य उन में नहीं फँसता।

अपि संकल्पिताः कामाः संभवन्ति यथा यथा।
तथा तथा मनुष्याणां तृष्णा विश्वं विसर्पति।।

ज्यों-ज्यों अभिलाषित भोग प्राप्त होते जाते हैं और उनमें सुख की कल्पना की जाती है त्यों-त्यों तृष्णा भी बढ़ती जाती है और उनसे सदा अतृप्ति ही बनी रहती है। कदाचित् यह कहा जाये कि भोगों के यथेष्ट भोग लेने पर मनुष्य की तृष्णा शांत हो जाएगी और तृष्णा-शांति से संतोष हो जायेगा सो यह भी संभव नहीं है, क्योंकि अन्त समय में आसक्ति होने पर भी भोग नहीं छोड़े जा सकते। भले ही वे हमें स्वयं छोड़ दे। पर भोगों की वृद्धि में तृष्णा भी उतनी हो बढ़ती जाती है, फिर तृप्ति या सन्तोष नहीं होता। कहा भी है -

दहनस्तृणकाष्टसंचययैरपि तृष्यदुदधिर्नदीशतैः।
ननु कामसुखैः पुमानहो बलवत्ता खलु कापि कर्मणः।।

अग्नि में कितना ही तृण और काष्ठ क्यों न डाला जाय लेकिन तृप्ति नहीं होती, शायद वह तृप्त हो जाय, सैकड़ों नदियों से भी समुद्र की तृप्ति नहीं होती, यदि कदाचित् उसकी भी तृप्ति हो जाय, परन्तु भोगों से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकात। कर्म बड़ा ही बलवान् है और कहा भी है-

तदात्व सुखसंज्ञेषु भावेष्वज्ञोऽनुरज्यते।
हितमेवानुरूध्यंते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः।।

अतएव जो मनुष्य मूढ़ है- हित अहित के विवेक से शून्य हैं। वे भोग भोगते समय उन्हें सुखकारी समझ भोगों में अनुराग करते हैं - किन्तु जो मनुष्य परीक्षा प्रधानी है- हेयोपादेय के विवेक से जिनका चित्त निर्मल है, वे इन दुःखकारी क्षणिक विनाशी भोगों की ओर न झुककर हितकर मार्ग का ही अनुसरण करते हैं।

एहिकं यत्सुखं नाम सर्व वैषयिकं स्मृतम्।
न तत्सुखं सुखाभासं किन्तु दुःखमसंशयम्।। पंचा.

सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि जो सांसारिक(इस लोक सम्बन्धी) सुख है वह सब पंचेन्द्रिय सम्बन्धी विषयों से उत्पन्न होने वाला है। वास्तव में वह सुख नहीं है, किन्तु सुख का आभास मात्र है, निश्चय से वह दुःख ही है।

तस्माद्धेयं सुखामासं दुःखं दुःखफलं यतः।

हेयं तत्कर्म यद्धेतुस्तस्यानिष्टस्य सर्वतः।। 239।।

इसलिये वह सुखाभ्यास छोड़ने योग्य है। वह स्वयं दुःख स्वरूप है और दुःख रूप फल को देने वाला है। उस सदा अनिष्ट करने वाला वैषयिक सुख का कारण कर्म है, इसलिये इस कर्म का ही नाश करना चाहिये।

तत्सर्वं सर्वतः कर्म पौद्गलिकं तदष्टधा।

वैपरीत्यात्फलंतस्य सर्व दुःखं विपच्यतः।। 240।।

वह सम्पूर्ण पौद्गलिक कर्म सर्वदा आठ प्रकार का है, उसी कर्म का उल्टा विपाक होने से सभी फल दुःख रूप ही होता है।

नैवं यतः सुखं नैतत् तत्सुखं यत्र नाऽसुखम्।

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तच्छुमं यत्र नाऽशुभम्।। 244।।

शंकाकार का उपर्युक्त कहना ठीक नहीं है। क्योंकि जिसको वह सुख समझता है वह सुख नहीं है। वास्तव में सुख वही है जहाँ पर कभी थोड़ा भी दुःख नहीं है, वही धर्म है, जहाँ पर अधर्म का क्लेश नहीं है और वही शुभ है जहाँ पर अशुभ नहीं है।

इदमस्ति पराधीनं सुखं बाधापुरस्सरम्।

व्युच्छिन्नं बन्धहेतुश्च विषमं दुःखमर्थतः।। 245।।

यह इन्द्रियों से होने वाला सुख पराधीन है, कर्म के परतन्त्र है, बाधापूर्वक है, इसमें अनेक विघ्न आते हैं, बीच-बीच में इसमें दुःख होता जाता है, वह दुख बन्ध का कारण है, तथा विषम है। वास्तव में इन्द्रियों से होने वाला सुख दुःख रूप ही है।

मोही स्वभाव को प्राप्त नहीं करता है

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते नहि।

मत्तः पुमान् पदार्थनां यथा मदनकोद्रवैः।।7।।

Deluded by infatuation the knowing being is unable to acquire adequat knowledge of the nature of things. in the same way as a person who has lost his wits in coneguence of eating intoxicating is unable to know thow them properly!

''धातुनाम् अनेक अर्थत्वात्'' अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होने के कारण यहाँ लाभ धातु का अर्थ ज्ञान है। जब ज्ञान मोहनीय कर्म के विपाक से आविर्भूत हो

जाता है तब वह ज्ञान वस्तु स्वरूप को यथार्थ प्रकाशन करने में असमर्थ हो जाता है। शुद्ध स्वरूप से ज्ञान कथंचित् आत्मा से अभिन्न है और वस्तु स्वरूप को यथार्थ से जानने के लिए पूर्ण समर्थ है परन्तु कर्म परवशता के कारण ज्ञान में/आत्मा में विकार उत्पन्न हो जाता है। कहा भी है - जिस प्रकार मल से आबद्ध मणि एक प्रकार का नहीं होता है, एक प्रकार का प्रकाश नहीं देता है उसी प्रकार कर्म से आबद्ध आत्मा भी एक प्रकार का नहीं होता है और एक प्रकार का नहीं जानता है।

गुणस्थानों से प्राप्त मुझे शिक्षायें-
''मैं बनूँगा आत्मा से परमात्मा

(चाल :- तेरे प्यार का आसरा...आत्मशक्ति...) **- आचार्य कनकनन्दी**

शिक्षा मिलती है मुझे गुणस्थानों से,
आत्मा से परमात्मा बनने की प्रेरणा इसी से।
अन्तरंग-बहिरंग कारण सहयोग से,
मैं ही बनूँगा शुद्ध-बुद्ध (आनन्द) स्व-साधना से।। (1)

यथा बीज ही बनता विशाल वृक्ष,
मृदा-जल-वायु आदि के प्राप्त कर निमित्त।
तथाहि मैं सुद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पाकर,
बहिरात्मा से बनूँगा परमात्मा-अन्तरात्मा होकर।। (2)

कर्मफलचेतना व कर्मचेतना से परे होकर,
ज्ञान चेतना से बनूँगा शुद्धात्मा कर्म नष्टकर।
आत्मश्रद्धान व ज्ञान चारित्र को पाकर,
बना हूँ अभी आचार्य परिग्रह को त्यागकर।। (3)

पंचलब्धि-देव-शास्त्र-गुरु को पाकर,
बना हूँ मैं अभी 'गुरु' आत्मशुद्धि पाकर।
अभी मेरे गुणस्थान षष्टम-सप्तम,
गुणस्थान वृद्धि से बनूँगा अरिहंत-सिद्ध।। (4)

भले पंचम काल में यह नहीं होता संभव,

समाधिमरण से बनूँगा स्वर्ग में देव।
वहाँ से च्युत होकर बनूँगा श्रेष्ठ मानव,
श्रमण बनकर साधना से बनूँगा अरिहंत-सिद्ध।।(5)

इस प्रक्रिया से बने अनन्त अरिहंत-सिद्ध,
उनके उपदेश से आगम में गुणस्थान वर्णित।
इससे होता सिद्ध आत्मा ही बने परमात्मा,
इस क्रम में बनूँगा मैं भी परमात्मा।। (6)

अतएव मेरा परमात्मा भी मुझ में ही स्थित,
यथा तिल में तैल दूध में घृत।
तथाहि मेरा परमात्मा मुझ से हो रहा जाग्रत,
जितने अंश में मुझ में रत्नत्रय प्रगट।। (7)

आत्म जागृति हेतु कर रहा हूँ प्रयत्न,
आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र से संयुक्त।
मैं हूँ निश्चय से शुद्ध-बुद्ध-परमात्मा,
कर्मबन्ध से बना हूँ अभी संसारी/(अशुद्ध) आत्मा/(8)

कर्म नाश हेतु मैं कर रहा हूँ पुरुषार्थ,
ध्यान-अध्ययन तप-त्याग से सहित,
संकल्प-विकल्प-संक्लेश-द्वन्द्व त्याग से,
समता-शान्ति-निस्पृहता-धैर्य-क्षमा से।। (9)

ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व त्यागकर,
आत्मानुभव कर रहा हूँ आत्मविशुद्धि पाकर।
जिससे बढ रही मेरी ज्ञान चेतना,
पूर्ण ज्ञान चेतना से 'कनक' बनूँगा परमात्मा।। (10)

नन्दौड़ 17.10.2018 मध्याह्न 05:52

सन्दर्भ –

जेहिं दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहि भावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं।।8।। गो.जी.

अर्थ – दर्शनमोहनीय आदि कर्मों की उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम, आदि अवस्था के होने पर होने वाले जिन परिणामों से युक्त जो जीव देखे जाते हैं उन जीवों को सर्वज्ञदेव ने उसी गुणस्थान वाला और उन परिणामों को गुणस्थान कहा है।

भावार्थ- जिस प्रकार किसी जीव के दर्शनमोहनीय कर्म की मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से मिथ्यात्व (मिथ्यादर्शन) रूप परिणाम हुए तो उस जीव को मिथ्यादृष्टि और उस मिथ्यादर्शनरूप मिथ्यात्व (मिथ्यादर्शन) परिणाम को मिथ्यात्व गुणस्थान कहा जायगा। गुणस्थान यह अन्वर्थ संज्ञा है, क्योंकि विवक्षित कर्मों के उदयादि से होने वाले पाँच प्रकार के जीव के भाव गुणशब्द से अभिप्रेत हैं। उन्हीं के स्थानों को गुणस्थान कहते हैं। यहाँ पर मुख्यतया मोहनीय कर्म के उदय आदि से होने वाले भाव ही लिये हैं। मोहनीयके दो भेद हैं- दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। इनमें से किन-किन गुणस्थानों में दर्शनमोहनीय के उदयादिकी और किन-किन में चारित्र मोहनीय के उपशमादिकी अपेक्षा है यह बात गाथा नं11 से 14 तक में बताई जायगी।

विवक्षित पाँच भावों का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है- कर्मों के उदय से होने वाले औदयिक, उपशम से होने वाले औपशमिक, क्षय से होने वाले क्षायिक, क्षयोपशम से होने क्षायोपशमिक और जिनमें उदयादिक चारों ही प्रकार की कर्म की अपेक्षा न हो वे परिणामिक भाव है। इन्हीं को गुण कहते हैं। तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में इन्हीं को जीव के स्वतत्व नाम से बताया है।

गुणस्थान के 14 चौदह भेद

मिच्छो सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुहमो य।। 9

अर्थ- 1. मिथ्यात्व, 2 सासादन, 3 मिश्र, 4 अविरतसम्यग्दृष्टि, 5 देशविरत, 6 प्रमत्तविरत,7 अप्रमत्तविरत, 8 अपूर्वकरण, 9.अनिवृत्तिकरण, 10. सूक्ष्म साम्पराय।

इस सूत्र में चौथे गुणस्थान के साथ जो अविरत शब्द है वह अन्त्यदीपक है। अतएव पहले के तीनों गुणस्थानों में अविरतपना समझना चाहिये। इसी प्रकार छट्ठे प्रमत्त गुणस्थान के साथ जो विरत शब्द है वह आदिदीपक है। इसलिये यहाँ से लेकर सम्पूर्ण गुणस्थान विरत ही होते हैं, ऐसा समझना चाहिये।

अवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगी य।

चउदस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा।। 10

अर्थ – 11 उपशान्त मोह, 12 क्षीण मोह 13 सयोगकेवलिजिन, और 14 अयोग केवली जिन ये चौदह जीवसमास (गुणस्थान) हैं। और सिद्ध इन जीवसमासों-गुणस्थानों से रहित हैं।

भावार्थ- इस सूत्र में क्रमेण शब्द जो पड़ा है, उससे यह सूचित होता है कि जीव के सामान्यतया दो भेद है, एक संसारी दूसरा मुक्त। मुक्त अवस्था संसारपूर्वक ही हुआ करती है। संसारियों के गुणस्थानों की अपेक्षा चौदह भेद हैं। इसके अनन्तर क्रम से गुणस्थानों से रहित मुक्त या सिद्ध अवस्था प्राप्त होती है। इस प्रकार क्रमेण शब्द के द्वारा एक ही जीव की क्रम से होने वाली दो संसार और सिद्ध-मुक्त अवस्थाओं के कथन से यह भी सूचित हो जाता है कि जो कोई ईश्वर को अनादि मुक्त बताते हैं, अथवा आत्मा को सदा कर्मरहित या मुक्त स्वरूप मानते हैं, या मोक्ष में जीव का निरन्वय विनाश कहते हैं सो ठीक नहीं है।

इस गाथा में सयोग शब्द अन्त्यदीपक है, इसलिये पूर्व के मिथ्यादृष्टयादि सब ही गुणस्थानवर्ती जीव योग सहित होते हैं। जिन शब्द मध्यदीपक है इससे असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर अयोगी पर्यन्त सभी जिन होते हैं। केवली शब्द आदि दीपक है अतएव सयोगी अयोगी तथा सिद्ध तीनों ही केवली होते हैं यह सूचित होता है।

पाँचवें गुणस्थान का नाम देशविरत है। क्योंकि यहाँ पर जीव पूर्णतया विरत नहीं हुआ करता। इससे ऊपर के सभी जीव विरत ही हुआ करते हैं। अतएव छट्ठे और सातवें गुणस्थान का विरत के साथ प्रमत्त और इतर अर्थात् अप्रमत्त शब्द विशेषण रूप से जोड़कर क्रम से प्रमत्तविरत अप्रमत्तविरत ऐसा नाम निर्देश किया गया है। इन विशेषणों के कारण यह भी सूचित हो जाता है कि छट्ठे गुणस्थानतक के सभी जीव सामान्यतया प्रमाद सहित ही हुआ करते हैं। तथा सप्तम गुणस्थान से लेकर ऊपर के सभी जीव पूर्णतया विरत होने के साथ-साथ प्रमाद रहित ही हुआ करते हैं।

सभी गुणस्थानों के नाम अन्वर्थ है। आगे जो लक्षण विधान है उसके अनुसार वह अर्थ और उन गुणस्थानों के पूरे नाम का बोध हो सकेगा। क्योंकि यहाँ दोनों गाथाओं में गुणस्थानों के दो नाम दिये हैं वे उनके पूर्ण नाम नहीं, प्रायः एकदेशरूप ही हैं। दोनों गाथाओं में पाँच जगह पर ''य'' अर्थात् ''च'' शब्द का प्रयोग किया है।

इससे कुछ-कुछ विशिष्ट अर्थों का सूचन होता है। यथा पहले च से प्रथम तीन गुणस्थानों के साथ दृष्टि शब्द भी जोड़ना चाहिये, जैसे कि मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि। दूसरे च से पाँचवे गुणस्थान की शुद्ध और मिश्र इस तरह दो अवस्थाएँ सूचित होती है। तीसरे च से अप्रमत्त आदि सूक्ष्मसाम्परायान्त गुणस्थानों की दो अवस्थायें सूचित होती है। अपूर्वकारणादिके तो उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणीकी अपेक्षा दो-दो प्रकार हैं। तथा अप्रमत्तविरत के सातिशय और निरतिशय इस तरह दो भेद है। जो श्रेणी के सम्मुख है अधःप्रवत्तकरणादि परिणामों को धारण करने वाला है वह सातिशय और जो ऐसा नहीं है वह निरतिशय है। चौथे च से सूचित होता है कि संसार और मोक्ष मार्ग का यही अंतिम स्थान है। यहीं पर शैलेश्य अवस्था प्राप्त हुआ करती है और व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्ल-ध्यान-रूप वे परिणाम हुआ करते हैं जो कि संसार का पूर्णतया अन्त करने में सर्वथा समर्थ हैं। जीव की अन्तिम साध्य सिद्धावस्था का उपाय या मार्गरूप रत्नत्रय यहीं पर समर्थ कारण बनता है- करणरूप को प्राप्त किया करता है जिसके होते ही संसारातीत-गुणस्थानातीत सिद्धपर्याय को यह जीव प्राप्त हो जाता है। इससे सभी गुणस्थानों में इसी की महत्ता सर्वाधिक सूचित होती है।

पाँचवें 'च' से जीव का वास्तविक सर्वविशुद्धि स्वरूप प्रकट होता है जिससे कि मोक्ष के स्वरूप के विषय में जो अनेक अयुक्त मिथ्या मान्यताएँ हैं उन सबका परिहार हो जाता है।

इस प्रकार सामान्य से गुणस्थानों का नाम निर्देश कर व प्रत्येक गुणस्थान में जो-जो भाव पाये जाते हैं जिनको कि यहाँ पर गुणनाम से तथा मोक्ष शास्त्र में स्वतत्त्व नाम से कहा गया है उनका उल्लेख करते हैं।

मिच्छे खलु ओदइओ, विदिये पुण पारणामिओ भावो।

मिस्से खओवसमिओ, अविरदसम्मम्हि तिण्णेव।।11

अर्थ – प्रथम गुणस्थान में औदायिक भाव होते हैं, और द्वितीय गुणस्थान में परिणामिक भाव होते हैं। मिश्र में क्षायोपशमिक भाव होते हैं। और चतुर्थ गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक इस प्रकार तीनों ही भाव होते हैं।

भावार्थ – औदयिक आदि शब्दों का अर्थ स्पष्ट है अर्थात् कर्मों के उदय से होने वाले आत्मा के परिणामों को औदायिक भाव, प्रतिपक्षी कर्म के उपशम से होने वाले जीव के परिणामों को औपशमिक भाव, कर्म के क्षय से-प्रतिपक्षी कर्म का निर्मूल

अभाव हो जाने पर प्रकट होने वाले जीव के भाव को क्षायिक भाव कहते हैं। प्रतिपक्षी कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों के वर्तमान निषेकों के बिना फल दिये ही निर्जरा होने पर उन्हीं के (सर्वघाति स्पर्धकों के) आगामी निषेकों का सदवस्थारूप उपशम रहने पर एवं देशघाति स्पर्धकों का उदय होने पर जो आत्मा के परिणाम होते हैं उनको क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। जिनमें कर्मों के इन उदय आदि चारों ही प्रकारों की अपेक्षा नहीं है ऐसे जीव के परिणामों को परिणामिक भाव कहते हैं।

उक्त चारों ही गुणस्थानों के भाव किस अपेक्षा से कहे हैं, उनको हेतुपूर्वक दिखाने के लिये सूत्र कहते हैं।

एदे भावा णियमा, दंसणमोहं पडुच्च भणिदा हु।
चारित्तं णत्थि जदो, अविरदअंतेसु ठाणेसु।। 12

अर्थ – मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में जो नियम रूप से औदयिकादिक भाव कहे हैं वे दर्शन मोहनीय कर्म की अपेक्षा है। क्योंकि चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त चारित्र नहीं पाया जाता।

भावार्थ – मिथ्यादृष्टि सभी गुणस्थानों में यदि सामान्य रूप से देखा जाय तो केवल औदयिकादि भाव ही नहीं होते, किन्तु क्षायोपशमिकादि भाव भी होते हैं; तथापि यदि केवल दर्शन मोहनीय कर्म की अपेक्षा से देखा जाय तो औदयिकादि भाव ही हुआ करते हैं : क्योंकि प्रथम गुण स्थान में दर्शन मोहनीय कर्म की मिथ्यात्व प्रकृति के उदय मात्र की अपेक्षा है। इसलिये औदयिक भाव ही है। द्वितीय गुणस्थान में दर्शन मोहनीय की अपेक्षा ही नहीं है इसलिये पारिणामिक भाव ही है। तृतीय गुणस्थान में जो जात्यन्तर सर्वघाति मिश्रप्रकृति का उदय है इसलिये क्षायोपशमिक भाव कहे गये हैं। इसी प्रकार चतुर्थ गुणस्थान में दर्शन मोहनीय कर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम तीनों का ही सद्भाव पाया जाता है इसलिये तीनों ही प्रकार के भाव बताये गये हैं।

विशेष यह कि यद्यपि यहाँ पर सासादन गुणस्थान में परिणामिक भाव कहा है किन्तु ग्रन्थान्तरों में अन्य आचार्यों ने इस गुणस्थान में औदयिक भाव भी बताया है। क्योंकि मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धि चतुष्क का उपशम हो जाने के बाद अनन्तानुबन्धी कषायों से किसी भी एक के उदय में आजाने पर सम्यक्त्व की विराधना-आसादना से यह गुणस्थान उत्पन्न हो जाता है। अतएव अनन्तानुबन्धी के उदय दृष्टि में मुख्यतया रखने वाले आचार्य यहाँ पर औदयिक भाव बताते हैं। किन्तु दर्शनमोहनीय को दृष्टि में

रखने वाले आचार्य परिणामिक भाव कहते हैं। क्योंकि दर्शन मोहनीय की उदय आदि चार अवस्थाओं में से किसी की भी यहाँ अपेक्षा नहीं है।

यद्यपि तीसरा गुणस्थान मिश्र प्रकृति के उदय से होता है अतएव उसमें औदयिक भाव कहना चाहिये और उसमें देशघाति कर्म प्रकृति के न रहने से क्षायोपशमिक भाव कहा भी नहीं जा सकता; फिर भी प्रकारान्तर से यहाँ क्षायोपशमिकपना बताया गया है। क्योंकि इस मिश्र प्रकृति को अन्य सर्वघातियों के समान न मानकर जात्यन्तर सर्वघाति कहा गया है। टीकाकारों ने यहाँ पर क्षायोपशमिकपना इस तरह बताया है कि मिथ्यात्व प्रकृति के सर्वघाति स्पर्धकों का उदयभाव रूप क्षय, सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृति का उदय और अनुदय प्राप्त निषेकों का उपशम होने पर क्षायोपशमिक मिश्रभाव होता है। अथवा सर्वथा घात करने वाले अनुभाग युक्त स्पर्धकों का उदयाभाव रूप क्षय और हीन अनुभाग रूप से परिणत स्पर्धकों का सद्वस्थारूप उपशम एवं देशघातिस्पर्धकों का उदय रहने पर जो मिश्र परिणाम होते हैं वे क्षायोपशमिक भाव हैं। फिर भी यहाँ यह ज्ञातव्य कि किन्ही किन्ही आचार्यों ने इस मिश्र गुणस्थान के भाव को औदयिक भी कहा है और माना है।

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में तीनों भाव बताये हैं। इससे प्रथम तीन गुणस्थानों में निर्दिष्ट औदयिक, परिणामिक और क्षायोपशमिक ये तीन भाव नहीं लेकर ''व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्ति'' के आधार पर सम्यक्त्व के विरोधी पाँच अथवा सात कर्मों के उपशमादि से होने वाले औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक ये तीन भाव ही लेने चाहिये।

पंचमादि गुणस्थानों में

देसविरदे पमत्ते, इदरे व खओवसमियभावो दु।
सो खलु चरित्तमोहं, पडुच्च भणियं तहा उवरिं।।13

अर्थ – देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्त इन गुणस्थानों में चारित्र मोहनीय की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव होते हैं। तथा इनके आगे अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में भी चारित्रमोहनीय की उपेक्षा ही भावों को कहेंगे।

विशेष यह कि गाथा के पूर्वार्ध के अन्त में जो तू शब्द दिया है, उसका अर्थ 'अपि' अर्थात् 'भी' ऐसा न करके अवधारण रूप से ''एवं'' अर्थात् 'ही' ऐसा करना चाहिये। क्योंकि यहाँ दर्शनमोहनीय को अपेक्षा ही नहीं है। यद्यपि यह सत्य है कि दर्शनमोहनीय की अपेक्षा से होने वाले तीनों ही भाव यहाँ पर पाये जाते हैं। किन्तु

चारित्र मोहनीय की अपेक्षा से जिसकी कि यहाँ पर विवक्षा है क्षायोपशमिक भाव ही पाया जाता है।

अप्रमत्तविरत से ऊपर के गुणस्थान उपशमश्रेणी और क्षपक श्रेणी की अपेक्षा से दो भागों में विभक्त हैं। अतएव उन दोनों भागों को लक्ष्य में रखकर उनमें पाये जाने वाले भावों को बताते हैं।

तत्तो उवरिं उवसमभावो, उवसामगेसु खवगेसु।
खइओ भावो णियमा, अजोगिचरिमो त्ति सिद्धे य।। 14

अर्थ – सातवें गुणस्थान से ऊपर उपशमश्रेणी वाले आठवें नौवें दशवें गुणस्थान में तथा ग्यारहवें उपशांतमोह में औपशमिक भाव ही होते हैं। इस प्रकार क्षपकश्रेणीवाले उक्त तीनों ही गुणस्थानों तथा क्षीणमोह, सयोग केवली, अयोगकेवली इन तीन गुणस्थानों में और गुणस्थानातीत सिद्धों के नियम से क्षायिक भाव ही पाया जाता है। क्योंकि उपशम श्रेणीवाला तीनों गुणस्थानों में चारित्रमोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों का उपशम करता है। और ग्यारहवें में सम्पूर्ण चारित्रमोहननीय कर्म का उपशम कर लेता है। इसलिये यहाँ पर औपशमिक भाव ही हुआ करते हैं। इसी तरह क्षपकश्रेणीवाला उन्हीं इक्कीस प्रकृतियों का उन्हीं तीन गुणस्थानों में क्षपण करता है। और क्षीणमोह, सयोग केवली, अयोग केवली तथा सिद्धस्थान में पूर्णतया क्षय हो चुका है, इसलिये इन स्थानों में क्षायिकभाव ही होता है।

यहाँ इन सब भावों का कथन चारित्रमोहनीय की अपेक्षा से ही है, शेष कर्मों की अपेक्षा से अन्य भाव भी पाया जाता है। परन्तु मुख्यतया सिद्धों के केवल क्षायिकभाव ही रहा करता है।

आपका अवचेतन मन कैसे काम करता है

मान लें कि कोई मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषक आपको सम्मोहित कर दे उस अवस्था में आपका चेतन, तार्किक मन शिथिल हो जाता है और आपका अवचेतन सुझाव का अनुगामी होता है। और फिर आपको सुझाव दे कि आप अमेरिका के राष्ट्रपति है। आपका अवचेतन उस कथन को सच के रूप में स्वीकार कर लेगा। यह आपके चेतन मन की तरह तर्क नहीं करता है, चुनता नहीं है या भेद नहीं करता है। आप अपने आप वैसे ही महत्व और गरिमा को धारण कर लेंगे, जिसे आप राष्ट्रपति पद की वैध आवश्यकता मानते हैं।

यदि आपको पानी का गिलास दिया जाए और बताया जाए कि आप नशे में है, तो आप अपनी सर्वश्रेष्ठ योग्यता से शराबी की भूमिका निभाने लगेंगे। अगर आप मनोविश्लेषक को बताएँ कि आपको टिमोथी ग्रास से एलर्जी है और वह आपकी नाक के नीचे पानी का गिलास रखकर आपसे कहे कि यह टिमोथी ग्रास है, तो आपमें एलर्जी के सारे लक्षण उभर आएँगे और शारीरिक प्रतिक्रियाएँ वही होगी, मानो पानी सचमुच टिमोथी ग्रास हो।

यदि आपको बताया जाए कि आप एक भिखारी हैं, एक बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण और मुश्किल स्थिति में है, तो आपका पूरा हुलिया तुरंत बदल जाएगा। आप एक विनम्र और कातर मुद्रा अपना लेंगे तथा आपके हाथ में एक काल्पनिक कटोरा होगा।

संक्षेप में, आपको यह यक़ीन दिलाया जा सकता है कि आप मूर्ति, कुत्ता, सिपाही या तैराक कुछ भी हैं। फिर आप उस सुझाई गई भूमिका के बारे में जितना जानते हैं, उसके अनुरूप उसे निभाने लगेंगे। याद रखने वाला एक और महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि आपका अवचेतन मन हमेशा दो विचारों से ज्यादा प्रबल को ही स्वीकार करता है, यानि वह बिना सवाल किए आपके विश्वास को स्वीकार करता है, चाहे आपका आधार वाक्य सच हो या सरासर झूठ हो।

वैज्ञानिक चिंतक किसी दूरस्थ ईश्वर से भीख क्यों नहीं माँगता, विनती क्यों नहीं करता और याचना क्यों नहीं करता

आधुनिक, वैज्ञानिक, सीधी लकीर का चिंतक ईश्वर को अपने अवचेतन मन के भीतर मौजूद ईश्वरीय प्रज्ञा के रूप में देखता है । उसे इस बात की परवाह नहीं होती कि लोग इसे अतिचेतन, अचेतन, व्यक्तिपरक मस्तिष्क कहते हैं या वे इस परम प्रज्ञा को अल्लाह, ब्रह्मा, जेहोवा, वास्तविकता या परमात्मा या सर्वदृष्टा नेत्र कहते हैं।

ईश्वर की सारी शक्तियाँ आपके भीतर है। ईश्वर आत्मा है और आत्मा कोई चेहरा, रूप या आकृति नहीं होती। यह कालातीत, स्थानरहित और अमर है। यही आत्मा हर व्यक्ति में वास करती है।

हाँ, ईश्वर आपके विचार, आपकी भावना, आपकी कल्पना में है। दूसरे शब्दों में, आपका अदृश्य हिस्सा ईश्वर है। ईश्वर आपमें मौजूद जीवन सिद्धांत हैः असीम प्रेम पूर्ण सद्भाव, असीम प्रज्ञा। जान लें कि आप अपने विचार के ज़रिये इस अदृश्य

शक्ति से संपर्क कर सकते हैं। प्रार्थना की पूरी प्रक्रिया में रहस्य, अंधविश्वास, शंका और आश्चर्य को हटा दें।

आपका शब्द आपका व्यक्ति विचार है। आप इस अध्याय में जो पढ़ चुके हैं, उसके आधार पर हर विचार सृजनात्मक होता है और आपके विचार की प्रकृति के अनुसार आपके जीवन में प्रकट होता है। यह तर्कसंगत लगता है कि जब भी आप सृजनात्मक शक्ति को खोज लेते हैं, तो आप ईश्वर को खोज लेते हैं, क्योंकि केवल एक ही सृजनात्मक शक्ति है-दो नहीं, तीन या 1,000 भी नहीं, बस एक...

वैज्ञानिक चिंतक कभी याचना या विनती क्यों नहीं करता

जो सीधी लकीर का चिंतक अपने मन के नियम जानता है, उसे उस चीज़ के लिए भीख माँगना बकवास, मूर्खतापूर्ण और हास्यापद लगता है, जो पहले ही उसे दे दी गई है। दूसरे शब्दों में, अगर आप एस्ट्रोफ़िजिक्स, रसायन शास्त्र, मानव संबंध,एकाकीपन, बीमारी, गरीबी या जंगल में खोने संबंधी समस्या का समाधान माँगते हैं, तो यह जान लें कि धरती की हर समस्या का जवाब पहले से ही मौजूद है और आपका इंतजार कर रहा है। इसका कारण यह है कि आपके अवचेतन की ईश्वीरय प्रज्ञा हर सवाल का जवाब जानती है, चाहे इसकी प्रकृति जो भी हो।

यह सहज बोध या प्राचीन सामान्य ज्ञान है। आपके अवचेतन में मौजूद ईश्वरीय प्रज्ञा सर्व-बुद्धिमान है, सब कुछ जानती है और इसने सृष्टि व इसकी सारी चीजें बनाई हैं। सारी चीज़ें बनाने के बाद, जिसमें सृष्टि के सारे लोग और असंख्य आकाशगंगाएँ शामिल हैं, किसी भी सोचने वाले व्यक्ति को इस निष्कर्ष पर क्यों पहुँचना चाहिए कि उसके अवचेतन के भीतर की परम प्रज्ञा जवाब नहीं जानती है ? दरअसल, आपके अवचेतन की बुद्धिमत्ता केवल जवाब जानती है, क्योंकि इसे कोई समस्या नहीं होती। पल भर के लिए सोचेः अगर ईश्वरीय प्रज्ञा को कोई समस्या होगी, तो इसे कौन सुलझाएगा ?

मुझे मेरे रक्षक देवदूत ने बचाया

जब मैं बहुत छोटा था, तो मेरी माँ ने मुझे बताया था कि मेरा एक खास रक्षक देवदूत है, जो हमेशा मेरी रक्षा करेगा। जब भी मैं मुश्किल में रहूँगा, देवदूत मुझे बचाने आ जाएगा। सभी बच्चों की तरह मेरा मन भी कोमल था और मैंने अपने माता-पिता

के विश्वास को स्वीकार कर लिया।

एक बार दूसरे लड़कों के साथ में जंगल में पूरी तरह भटक गया। मैंने लड़कों से कहा कि मेरा रक्षक देवदूत हमें बाहर निकालेगा और बचाएगा। कुछ लड़के हँसे और उन्होंने इस विचार का मखौल उड़ाया। बाक़ी लड़के मेरे साथ आ गए और मुझमें एक निश्चित दिशा में जाने की आंतरिक भावना, एक तरह की प्रबल अनुभूति आई। उस दिशा में जाने पर हमें अंततः एक शिकारी मिला, जो हमारे साथ दयालुता से पेश आया और जिसने हमें बचा लिया। दूसरे लड़के, जिन्होंने हमारे साथ आने से इन्कार किया था, कभी नहीं मिल पाए।

किसी की रक्षा करने वाला कोई पंखों वाला रक्षक देवदूत नहीं होता। रक्षक देवदूत में मेरे अंधविश्वास की वजह से मेरे अवचेतन मन ने अपने तरीक़ से प्रतिक्रिया की और मुझे एक ख़ास दिशा में जाने की प्रेरणा दी। मेरा ज़्यादा गहरा मन यह भी जानता था कि शिकारी कहाँ था और उसने उसी अनुसार हमें निर्देशित किया। आपके भीतर ईश्वरीय प्रज्ञा आपके आह्वान की प्रकृति पर प्रतिक्रिया करती है।

अगर हम जंगल में भटक जाते हैं और हमारे पास कम्पास न हो और हमें ज़रा भी पता न हो कि ध्रुव तारा कहाँ है, दूसरे शब्दों में आपको दिशा का कोई अहसास न हो, तो याद रखें कि आपके अवचेतन के भीतर की सृजनात्मक प्रज्ञा ने सृष्टि को और उसकी सारी चीज़ों को बनाया था। निश्चित रूप से इसे आपको मुसीबत से बाहर निकालने के लिए किसी कम्पास की ज़रूरत नहीं है। अगर आप अपने भीतर की बुद्धिमत्ता को नहीं पहचानते हैं, तो यह तो वैसा ही होगा, जैसे यह मौजूद ही न हो।

मान ले, आप किसी आदिमानव को अपने घर में लाते हैं, जिसने कभी नल या बिजली का स्विच न देखा हो। आप उसे अपने घर में एक सप्ताह तक छोड़कर चले जाते हैं। यह प्यास से मर जाएगा और अँधेरे में ही रहेगा, हालाँकि सारे समय पानी और प्रकाश उपलब्ध था। संसार के करोड़ों लोग इसी आदिमानव जैसे हैं। वे यह नहीं देख पाते हैं कि चाहे समस्या कोई भी हो, जवाब उनका इंतजार कर रहा है। इसे पाने के लिए उन्हें बस इतना करना है कि वे विश्वास और आस्था के साथ अपने व्यक्तिपरक मन की बुद्धिमत्ता का आह्वान करें। इसके बाद जवाब आपके भीतर की गहराईयों से अपने आप उभरकर ऊपर आ जाएँगे।

वैज्ञानिक प्रार्थना के समृद्धि और पुरस्कारदायक अनुभवों का आनंद लें

'प्रार्थना' शब्द के इतने सारे अर्थ और इतना लंबा इतिहास रहा है कि इस पुस्तक में मैं प्रार्थना और प्रार्थना चिकित्सा की प्रक्रिया को सबसे सरल शब्दावली में समझाने की कोशिश कर रहा हूँ।

मैंने संसार के अलग-अलग हिस्सों में कई लोगों से बात की है, जिनके भीतर पुराने विचार निश्चित रूप से पगड़ी की तरह जमे हुए हैं, जिन्हें हाई स्कूल का कोई भी आधुनिक लड़का सच नहीं मान सकता। साथ ही उनके पुराने रीति-रिवाज़ और रस्में होती है जिनमें कोई भी बुद्धिमान पुरुष या महिला यक़ीन नहीं कर सकती। उन ज़बर्दस्त लाभों और नियामतों से ख़ुद को वंचित न रखे, जो असली प्रार्थना के ज़रिये आप तक आ सकती है- सिर्फ़ उन अवधारणाओं और पूर्वाग्रहों की वजह से, जो आपने बचपन में इकट्ठी किए थे और बरसों से पाल रखे हैं।

आकाश में ईश्वर से भीख न माँगे

सीधी लकीर का चिंतक जानता है कि ईश्वर या उसके अवचेतन मन की सृजनात्मक प्रज्ञा उसके व्यक्तिगत विश्वास या मान्यता के अनुरूप प्रतिक्रिया करेगी। वह जानता है कि पूरी सृष्टि की कार्यविधि को संचालित करने वाले नियम हैं और जैसा एमर्सन कहते हैं, 'कोई भी चीज़ संयोग से नहीं होती। हर चीज़ पीछे से धकेली जाती है।' यानी अगर आपकी प्रार्थना का जवाब मिलता है,तो इसका जवाब आपके ही मन के नियमों के अनुसार मिलेगा, चाहे आप इस बारे में जागरूक हों य न हों।

आपके भीतर की जीवंत आत्मा किसी पर अहसान करने के लिए जीवन के नियमों को शिथिल नहीं करती है। यह किसी की धार्मिक संबद्धताओं या संत जैसे चरित्र की ख़ातिर नियमों को शिथिल नहीं करते हैं। जीवन के नियम अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग नही होते। यह पक्षपात करने वाला नियम नहीं है, क्योंकि ईश्वर लोगों में भेदभाव नहीं करता है...(ईश्वर के लिए सभी समान हैं।) आपके सामने एक सर्वव्यापी नियम है, जो आपके विचारों और विश्वासों की छाप लेता है और उसी अनुसार काम करता है; अगर आप अपने ज़्यादा गहरे मन पर नकारात्मक छाप डालते हैं, तो आपको नकारात्मक परिणाम मिलेंगे। अगर आप अवचेतन पर

सृजनात्मक छाप डालते हैं, तो आपको सृजनात्मक परिणाम मिलेंगे।

केवल एक ही शक्ति है

आप जो सबसे महत्त्वपूर्ण सत्य सीख सकते हैं, वह यह है कि केवल एक ही शक्ति है। यह शक्ति सर्वत्र उपस्थित है। इसलिए यह आपके भीतर-आपके जीवन में भी होनी चाहिए। जब आप इस शक्ति का इस्तेमाल सृजनात्मक और सौहार्दपूर्ण तरीक़े से तथा इसकी अंतरिक प्रकृति के अनुसार करते हैं, तो लोग इसे ईश्वर या नेकी कहते हैं। जब आप अपने भीतर की इस शक्ति का इस्तेमाल नकारात्मक और विनाशकारी तरीक़े से करते हैं, तो लोग इसे शैतान, बुराई, नरक, दुर्भाग्य आदि नामों से पुकारते हैं। अपने साथ ईमानदार रहें और खुद से यह सरल सवाल पूछें। 'मैं अपने भीतर की शक्ति का कैसा इस्तेमाल कर रहा हूँ ?'' अपनी समस्या का जवाब ठीक वहीं होगा। यह इतना ही आसान है।

प्रार्थना करने के कई तरीक़े हैं

अगर कोई मुझसे पूछे कि मैं कैसे प्रार्थना करता हूँ, तो मैं यह जवाब दूँगा कि मेरे लिए प्रार्थना का अर्थ शाश्वत सत्यों या सर्वोच्च संभव दृष्टिकोण से ईश्वर के सत्यों का मनन है। ये सत्य कभी नहीं बदलते हैं; वे कल भी वही थे, आज भी वही है और हमेशा वही रहेंगे।

एक नाविक ने कैसे प्रार्थना की ओर वह बच गया

पिछले साल मैंने अलास्का में समुद्र-पर सेमिनार आयोजित किया। एक जहाजी ने बातों-बातों में मुझे बताया कि पिछले युद्ध में उसका जहाज़ गोलाबारी में तबाह हो गया था और उसे छोड़कर बाक़ी सभी लोग लापता थे। उसने ख़ुद को समुद्र में एक तख़्ते पर पाया, जहाँ वह केबल ईश्वर के बारे में ही सोच सकता था। उसे अपने मन के नियमों का कोई ज्ञान नहीं था, लेकिन इस ख़तरनाक परिस्थिति में वह ख़ुद से बार-बार कहता रहा, 'ईश्वर मुझे बचा रहा है,' और फिर वह बेहोश हो गया। जब वह जागा, तो उसने ख़ुद को एक ब्रिटिश नाव पर पाया, जिसके कप्तान ने उसे बताया कि उसे जहाज़ की दिशा बदलने की एक प्रबल प्रेरणा हुई थी । इस जहाज़ी को निगरानी करने वाले अफ़सर ने देखा था।

जहाज़ी ने ऊपर आसमान में बैठे ईश्वर से प्रार्थना की थी; उसे यक़ीन था कि

वह ईश्वर ऊपर कहीं पर है- एक तरह का आदिम व्यक्ति जो उसकी प्रार्थनाओं और आग्रह को सुन सकता है। उसके मन में एक तरह का अंधविश्वास था और वह पूरे दिल से ईश्वर पर विश्वास करता था। बेशक, उसका सरल या अंधा विश्वास उसके अवचेतन मन में भर गया, जिसने उसके विश्वास पर प्रतिक्रिया की और उसे बचा लिया।

मानसिक और आध्यात्मिक नियमों के दृष्टिकोण से इसे देखें, तो उसके अवचेतन मन की बुद्धिमत्ता जानती थी कि सबसे क़रीबी जहाज़ कहाँ था और इसने कप्तान के मन पर कार्य किया, उसे दिशा बदलने पर मजबूर किया, जिससे नाविक की जान बच गई।

आपके अवचेतन मन में कोई समय या स्थान का भेद नहीं होता है; यह सारी बुद्धिमता, सारी शक्ति के साथ सह-व्याप्त है। दरअसल, ईश्वर के सारे गुण, लक्षण और शक्तियाँ आपकी व्यक्तिपरक गहराइयों में मौजूद है। आप इसे आंतरिक बुद्धि मत्ता, शाश्वत मन, जीवन सिद्धांत, अचेतन मन या अति-चेतन मन भी कह सकते है। दरअसल यह अनाम है। आपको तो बस इतना जानने की ज़रूरत है कि आपके भीतर एक बुद्धि और ईश्वरीय प्रज्ञा है, जो आपकी बुद्धि और अहं या आपकी पाँच इंद्रियों के पार जाती है। यह हमेशा आपकी मान्यता, आस्था और आशा पर प्रतिक्रिया करती है। जहाजी ने संकट काल में अपना पूरा विश्वास ईश्वर में रख दिया और यक़ीन किया कि किसी तरह उसे बचा लिया जाएगा। यह विश्वास उसके अवचेतन में भर गया, जिसने उसके विश्वास के अनुरूप प्रतिक्रिया की।

याचना की प्रार्थना आम तौर पर क्यों ग़लत होती है

यह एक कारण से ग़लत है।

वे मुझे पुकारें, इससे पहले मैं जवाब दूँगा; और जब वे बोल रहे होंगे, तो मैं सुनूँगा। ***इसाइया 65:24।***

आप चाहे जो खोजते हों, यह पहले से ही मौजूद है, क्योंकि सारी चीज़ें आपके भीतर के ईश्वर में वास करती है। बाहर निकलने का रास्ता, जवाब, उपचारक उपस्थिति, प्रेम, शांति, सद्भाव, खुशी, बुद्धिमत्ता, शक्ति ये सारी और इससे भी ज़्यादा चीज़ें इसी समय अस्तित्व में हैं और आपके आह्वान करने तथा पहचानने का इंतजार

कर रही है।

शांति अभी है। प्रेम अभी है। ख़ुशी अभी है। सद्भाव अभी है। दौलत अभी है। मार्गदर्शन अभी है। सही कर्म अभी है। उपचारक उपस्थिति अभी है। साथ ही इस धरती की किसी भी समस्या का समाधान अभी है। आपके भीतर के ईश्वरीय मस्तिष्क के सृजनात्मक विचार अनगिनत और असंख्य हैं। आपको तो बस दावा करना है, महसूस करना है, जानना है और विश्वास करना है कि जवाब इसी समय आपके पास आ चुका है। समाधान आ जाएगा।

सारी चीज़े ईश्वरीय मस्तिष्क में विचारों, छवियों, आदर्शों या आपके मस्तिष्क में मानसिक साँचे के रूप में वास करती हैं और जब आप अपनी मनचाही चीज़ के साथ तादात्म्य कर लेते हैं और साहस के साथ उस पर दावा करते हैं, तो आपको जवाब मिल जाएगा। यह वैज्ञानिक प्रार्थना है। जब आप भीख माँगते हैं और याचना करते हैं, तो आप यह मानकर चल रहे हैं कि आपकी मनचाही चीज़ इस वक़्त आपके पास नहीं है। अभाव का यह अहसास ही अधिक नुकसान, अभाव और सीमा को आकर्षित करता है।

जिस ईश्वर से आप गिड़गिड़ाकर याचना कर रहे हैं, उसने पहले ही आपको हर चीज़ दे दी है। आप यहाँ अपने विचार या इच्छा की वास्तविकता पर मनन करने और पाने के लिए हैं। ख़ुश हों और धन्यवाद दें, यह जानते हुए कि जब आप अपनी इच्छा, विचार, योजना या उद्देश्य की वास्तविकता पर मनन करते हैं, तो आपका अवचेतन इसे साकार कर देगा। अच्छे प्राप्तकर्ता बनें। ईश्वर के उपहार आपको समय की शुरुआत से दिए गए हैं। आपको अपनी भलाई को इसी समय स्वीकार करना चाहिए। इसका इंतज़ार क्यों करे ? आपको जिन चीज़ों की ज़रूरत है, वे सभी इसी समय मौजूद हैं।

सभी चीज़ें ईश्वर में विचारों के रूप में रहती हैं और सृष्टि में हर चीज़ के पीछे एक मानसिक तंत्र रहता है। मान लें कि कोई विभीषिका संसार के सारे इंजनों को नष्ट कर दे, तो क्या होगा, इंजीनियर करोड़ों की तादाद में असेम्बली लाइन से उन्हें बना लेंगे। इसका कारण यह है कि आप इस संसार में जो भी चीज़ देखते हैं, वह या तो मनुष्य के दिमाग से आई है या ईश्वर के दिमाग़ से। आपके मन में आने वाला विचार, इच्छा, आविष्कार या नाटक आपके हाथ या हृदय जितना ही वास्तविक है। इसे आस्था और

विश्वास के साथ पोषण देंगे, तो यह संसार के पर्दे पर वस्तु का रूप ले लेगा।

ईश्वर का निवास कहाँ है ?

ईश्वर आत्मा है। आत्मा सर्वत्र मौजूद है; यह आपके भीतर भी है और पूरी सृष्टि में भी है।

देखों मैं दरवाज़े पर खड़ा होता हूँ और खटखटाता हूँ : यदि कोई मनुष्य मेरी आवाज़ सुन लेता है और दरवाज़ा खोल देता है, तो मैं अंदर उसके पास आ जाऊँगा और उसके साथ भोजन करूँगा और वह मेरे साथ करेगा। रैवेलशन 3:20

यह कथन प्रार्थना में अंतरंगता को बताता है, जहाँ आप दरअसल अपने ही ज़्यादा ऊँचे स्व के साथ संवाद करते हैं। आप किसी दूर के देवता से याचना नहीं कर रहे हैं, जो आपकी प्रार्थना का जवाब दे भी सकता है या नहीं भी दे सकता। आप जानते हैं कि आपकी प्रार्थना का पहले ही जवाब मिल गया है, लेकिन आपको इसे पहचानना होगा, संपर्क करना होगा, पूरी तरह स्वीकार करना होगा और फिर आपको प्रतिक्रिया मिलेगी।

आपके अवचेतन की सर्वोच्च प्रज्ञा या जीवन सिद्धांत आपके हृदय के दरवाज़े पर हमेशा खटखटा रहा है। मिसाल के तौर पर, यदि आप बीमार हो जाते हैं, तो जीवन सिद्धांत आपसे स्वस्थ होने का आग्रह करेगा। यह हमेशा आपसे कहता है, 'ज्यादा ऊँचे उठो; मुझे तुम्हारी ज़रूरत है।' अपने हृदय का द्वार खोल दें और साहस के साथ घोषणा करें :

मैं जानता हूँ और यक़ीन करता हूँ कि मुझे बनाने वाली ईश्वरीय उपचारक उपस्थिति मेरा उपचार कर सकती है। मैं अभी पूर्णता, जीवंतता और आदर्श का दावा करता हूँ। मेरे अवचेतन में ईश्वरीय प्रज्ञा मेरे हृदय का द्वार खटखटा रही है और मुझे याद दिला रही है कि जवाब और बाहर निकलने का तरीक़ा मेरे भीतर हैं। मेरा मन ईश्वरीय बुद्धिमत्त के प्रति खुला और ग्रहणशील है। मैं उसे समाधान के लिए धन्यवाद देता हूँ, जो मेरे चेतन, तार्किक मन में स्पष्टता से आता है।

ईश्वर वह शाश्वत बुद्धिमत्ता और शक्ति है, जो सभी लोगों के लिए उपलब्ध है, चाहे उनका रंग या धर्म कोई भी हो। ईश्वर नास्तिक या संदेहवादी को भी उतना ही अच्छा

फल देगा, जितना कि संत या पवित्र व्यक्ति को देता है; इकलौती शर्त विश्वास है।

क्या ईश्वर कोई व्यक्ति हैं या ईश्वर एक सिद्धांत है ?

ईश्वर को आदिकालीन व्यक्ति के रूप में सोचना या महिमामंडित व्यक्ति मानना, जिसमें मनुष्य की सारी झक, असामान्यताएँ और विचित्रताएँ हों- विक्षिप्त बुद्धिमंदता है और सरासर विवेकशून्यता है। ईश्वर इस अर्थ में आपके लिए व्यक्ति है : आप इसी पल प्रेम, शांति, सद्भाव, खुशी, सौंदर्य, बुद्धिमता, शक्ति और मार्गदर्शन पर मनन कर सकते हैं। जैसे ही आप इन गुणों को व्यक्त करना शुरू करेंगे, आप ईश्वर के गुणों को व्यक्तिगत बना लेते हैं, क्योंकि आप जिस पर मनन करते हैं, वही बन जाते हैं। ईश्वर असीम प्रेम पूर्ण सद्भाव, परम आनंद, असीम बुद्धिमत्ता, सर्वोच्च प्रज्ञा और अतत जीवन है, जो सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है। ईश्वर नियम भी है, क्योंकि यह पूरी सृष्टि नियम और व्यवस्था पर चलती है।

व्यक्तित्व के सभी तत्व आपके भीतर के ईश्वरीय अस्तित्व में हैं और जब आप अपने भीतर ईश्वर के गुणों पर मनन करते हैं, तो आप एक अद्भुत और शक्तिशाली ईश्वर-सदृश व्यक्तित्व विकसित करेंगे। उसी समय आप ईश्वर या अपने ख़ुद के अवचेतन के नियम को संचालित कर रहे हैं, क्योंकि आप जिस पर भी दावा करते हैं, ग्रहण या मनन करते हैं, उसकी छाप आपके अवचेतन मन पर छूट जाती है, जिसके बाद आपका अवचेतन उसे प्रकट कर देता है, जिसकी भी छाप इस पर छोड़ी जाती है। आप नियम का इस्तेमाल किए बिना एक अद्भुत व्यक्तित्व विकसित नहीं कर सकते, क्योंकि नियम यह है कि आपका विचार और भावना आपकी तक़दीर उत्पन्न करती है जिस पर आप मनन करते हैं, आप वही बन जाते हैं।

कुल मिलाकर कहें, तो ईश्वर ही है जो है; यह सब कुछ है। गोल-मोल बातें बंद करें। यह अहसास करें कि ईश्वर असीम व्यक्तित्व और नियम है।

कई लोग मुझसे कमोबेश कहते हैं, 'मैं किसी सिद्धांत से प्रार्थना नहीं कर सकता।' वे चाहते हैं कि आसमान में एक बूढ़ा आदमी हो, जो उन्हें इंसानी पिता की तरह तसल्ली दे, क्षमा करे और रक्षा करे। यह नज़रिया बेहद आदिकालीन और बचकाना है। याद रखे, आपके भीतर की ईश्वरीय प्रज्ञा प्रतिक्रियाशील है। जब आप विश्वास के साथ इसका आह्वान करते हैं, तो यह आपके आदर्श की अभिव्यक्ति बन जाती है।

आप अपने मन के नियम का इस्तेमाल किए बिना चुबंकीय या अद्भुत आध्यात्मिक व्यक्तित्व विकसित ही नहीं कर सकते। आप जो बनना चाहते हैं, करना चाहते हैं या पाना चाहते हैं, आपको उस हर चीज़ का मानसिक समतुल्य स्थापित करना होगा। कायाकल्प की उम्मीद में किसी दूरस्थ देवता के प्रति भावनात्मक उत्कटता या पवित्र भावुकता वास्तव में विक्षिप्तता और दुविधा की ओर ही ले जाती है।

ईश्वर आपके लिए बहुत व्यक्तिगत बन जाएगा, जब आप नियमित रूप से और सुनियोजित रूप में अपनी आत्मा को प्रेम और खुशी, शांति और सद्भाव से भरेंगे; और इन गुणों को ग्रहण करने के बाद आप उन्हें व्यक्त करेंगे। ईश्वर प्रेम है और सबसे अच्छी चीज़ जो आप कर सकते हैं, वह यह है कि जो आपको पहले ही दिया जा चुका है, उसके लिए भीख माँगना, याचना करना और प्रार्थना करना छोड़ दें।

कई लोग सकारात्मक प्रार्थना करते हैं

आज अमेरिका में करोड़ों लोग इस नीति का अनुसरण करते हैं। ये लोग ईश्वर से किसी चीज़ की भीख नहीं माँगते हैं, बल्कि इसके बजाय वे महान सत्यों को याद करते हैं जो कभी असफल नहीं होते, जैसे

ईश्वर मेरा चरवाहा है; मुझे कमी नही होगी।

उनके लिए इसका मतलब यह है कि लोगों को इस तथ्य के प्रमाण की कभी कमी नही होगी कि उन्होंने अपने मार्गदर्शन के लिए, रक्षा के लिए, पोषण के लिए और शक्ति के लिए ईश्वर या ईश्वरीय शक्ति को चुना है, क्योंकि वे जानते हैं कि 'चरवाहा' शब्द का मतलब है ईश्वर के प्रेम और मार्गदर्शन पर गहरा विश्वास, जो उन्हें हरे चरागाहों (समृद्धि) और शांत पानी (शांत मस्तिष्क) की ओर ले जाएगा। यह प्रार्थना है।

आह्वान की प्रार्थना

जब आप विश्वासपूर्वक ईश्वर की नियामतों, रक्षा और मार्गदर्शन का आह्वान करते हैं, तो जवाब मिल जाएगा। सेंट ऑगस्टिन के हिप्पों शहर के दरवाज़े पर जब शत्रु दस्तक दे रहा था, जिसके वे बिशप थे, तो उन्होंने आह्वान की इस प्रार्थना में आराम, राहत और संरक्षण पाया, जो उनके दिल से निकली थी। :

मेरी आत्मा को पंखों की छाया के नीचे सांसारिक विचारों की भीड़ भरी उथलपुथल से आश्रय लेने दे; मेरे दिल को, बैचेन लहरों के इस समुद्र को, आपमें

शांति पाने दे, हे ईश्वर।

इस प्रार्थना के बाद वे सो गए और उन्हें अपनी आत्मा के लिए विश्राम मिल गया। ***(टेलीसाइकिक्स, डॉ. जोसेफ मर्फी)***

मैं पॉजिटिव थिंकिंग को बढ़ा रहा हूँ

(नेगेटिव थिंकिंग त्याग से बहुविध लाभ)

(चाल : तेरे प्यार का आसरा... (2) छोटी-छोटी गैया...) - आचार्य कनकनन्दी

नेगेटिव थिंकिंग को मैं दूर कर रहा हूँ,
समता-शान्ति-शुचिता को बढ़ा रहा हूँ।
आत्म श्रद्धान ज्ञान चारित्र को बढ़ा रहा हूँ,
शोध-बोध-प्रयोग से आत्मशुद्धि बढ़ा रहा हूँ।।(1)

परम नेगेटिव हैं स्व को मानना दीन-हीन
अहंकारी ईर्ष्यालु व कायर, वीर्यहीन।
पराजित भयभीत व किंकर्तव्य विमूढ,
परनिन्दा-अपमान व अहित चिन्तन।। (2)

परम पोजेटिव हेतु उक्त कुगुणों को त्यागूँ,
सनम्र सत्यग्राही व सरल-सहज बनूँ।
उदार-सहिष्णु व क्षमाशील-विनम्र बनूँ,
स्व-पर-विश्वहित हेतु चिन्तन करूँ।। (3)

इस हेतु प्रमाद-आलस्य व बहाना त्यागूँ,
कुतर्क व अवचेतन संतुष्टी से दूर रहूँ।
अन्य से प्रतिस्पर्द्धात्मक तुलना न करूँ,
परदोषारोपण से स्वदोषो को सही न मानूँ।। (4)

स्व-शुद्धात्मा के अनन्त गुणों का विश्वास करूँ,
इस के परिज्ञान हेतु शोध-बोध भी करूँ।
इस हेतु धर्म-दर्शन विज्ञान भी पढ़ूँ,
साहित्य लेखन-काव्य-निबन्ध लिखूँ।। (5)

इस से मुझे हो रहे है पॉजिटिव अनुभव,
समता-शान्ति-शक्ति का तो ले रहा उद्भव।
बढ़ रही है मेरी I.Q. E.Q. व S.Q.
जिस से मेरी क्रियेटीविटि की हो रही है वृद्धि ।। 6

स्वसंघ व शिष्य-भक्तों में हो रही जागृति/(क्रान्ति)
हर प्रकार के सेवादान में तो हो रही प्रवृत्ति/(वृद्धि)
उत्तरोत्तर मेरी आध्यात्मिकता को मान रहे हैं,
स्वज्ञान व पुण्य को भी बढ़ा रहे है।।7

ग्रन्थ प्रकाशन व देश-विदेशों में ज्ञान प्रचार/(धर्म प्रभावना)
आजीवन दान ले चातुर्मास कराने की प्रतिज्ञा
दिगम्बर-श्वेताम्बर जैन-हिन्दू भक्तों की भावना,
बढ़ रही है 'कनक' करे सदा मंगल भावना।। 8

नन्दौड 22.09.2018 रात्रि 08:16
(यह कविता ब्रायन ट्रेसी व देवेन्द्र जैन (चितरी) के कारण बनी)

अनावश्यक पापों से बचकर विजयी(अमृत) बनूँ
(अनावश्यक पाप ही जीव अधिक करते)

(चाल...एकान्त मौन में...2. तेरे प्यार का आसरा...) -आचार्य कनकनन्दी

अनावश्यक पापों से मैं बच रहा हूँ खोटे-छोटे चिन्तन नहीं कर रहा हूँ।
तदनुकूल कथन काम नहीं कर रहा हूँ,स्व-पर-विश्व अहित से मैं बच रहा हूँ।

सनम्र सत्यग्राही, आत्मविश्वासी बनकर, आत्मज्ञान-ध्यान कर रहा हूँ निरन्तर।
शोध-बोध प्रयोग कर रहा हूँ सतत, निस्पृह-निराडम्बर मौन-एकान्तवास।।

'कर्मफल चेतना'व'कर्म चेतना' से भी परे,'ज्ञान चेतना'हेतु करूँ सदा प्रयत्न सारे
समता-शांति-आत्म विशुद्धि हेतु, सतत प्रयत्नशील आत्म उपलब्धि हेतु।।

आत्मोपलब्धि ही मेरा सर्वोच्च ध्येय,उसकी उपलब्धि हुई(अभी)मुझे अत्यल्प भाग।

इस हेतु ही मैं सदा व्यस्त-मस्त(प्रसन्न)हूँ,छोटे-छोटे भाव काम हेतु अयोग्य हूँ

आत्मचिन्तन ज्ञान-ध्यान से, अध्ययन-अध्यापन-लेखन-काव्य में।
आनन्द अनुभव होता मुझे प्रचुरता से, आनन्द न आवे छोटे-खोटे भाव-काम से।

रागी-द्वेषी मोही स्वार्थी-कामी को, (भले) आनन्द आवे ऐसे छोटे भाव/(काम) से।

ये तो हिंसानन्दी आदि अशुभ भाव (नेगेटिव) है, इससे वे स्व-पर को कष्ट देते हैं।

ऐसे लोग होते ईर्ष्या घृणा द्वेष सहित, स्वदोषों को न देखते जो सुमेरू समान।
अन्य के सरसों सम दोषों को देखते सुमेरू सम, सुगुण को भी मानते (कहते) दुर्गुणी समान।। (7)

समय-शक्ति बुद्धि इस में वे लगाते, पाप-ताप-संताप को भोगते रहते।
स्व-दुःख से भी अन्य के सुख से दुःखी होते, नारकी सम बनकर भावी नारकी होते।। (8)

इन (से भी) नेगेटिव फिड बेक से शिक्षा मिलती, ऐसे भाव व्यवहार से मेरी निवृत्ति होती।

इससे मेरी साधना व उपलब्धि अधिक होती, अतिचेतना से ले मुझे समता-शान्ति मिलती(9)

जिससे मुझे ख्याति पूजा लाभ न सुहाते, प्रदर्शन-भीड़-धन-मान न सुहाते।
माईक-मंच-पांडाल-होर्डिंग-पत्रिका, न चाहिये मुझे भौतिक निर्माण की योजना।। (10)

ये सभी अनात्मकाम अनन्त बार भी किया, आत्मोपलब्धि बिन इस से दुःख ही मिला।

अभी स्व उपलब्धि हेतु जीऊँगा मरूँगा, स्व उपलब्धि हेतु मरकर अमृत ही बनूँगा।। (11)

पर हेतु मैं मरा अनन्तानंत बार, शत्रु-मित्र-भाई-हेतु दारा-परिवार।
कर्मशत्रु को मारकर, बनूँगा विजयी, इस हेतु ही पुरुषार्थरत ''कनक सूरी''।।

नन्दौड़ दि. 18.09.2018 रात्रि 8.35(यह कविता देवेन्द्र कुमार चीतरी के कारण बनी)

सन्दर्भ-

जं सक्कइ तं कीरई जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।

अर्थात् जो करने में समर्थ हो वह करो और जो करने में असमर्थ हो उसकी श्रद्धा करो इससे सम्यक्त्व भाव होता है।

हे आत्मन्! ''शक्तितस्त्यागतपसी'' के अनुसार शक्ति के अनुसार तप एवं त्याग करो जिससे संक्लेश न हो और धीरे-धीरे शक्ति/साधना/अनुभव की वृद्धि से तप तथा त्याग में वृद्धि करो। प्रवचनसार, धवलादि महान् ग्रंथों में कहा गया है कि कर्म नष्ट करने के लिए भी यदि संक्लेश करते हैं तो कर्म तो नष्ट नहीं होता, परन्तु उल्टा कर्म बंध होता है। शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है और अनुभव में आता है कि यदि द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव, शक्ति, शरीर की अवस्था, प्रकृति, बीमारी, आहार-विहारादि अन्तरंग-बहिरंग एवं विरोधी कारण के सद्भाव तथा अभाव को ध्यान में रखकर तप, त्याग, साधना आहार-विहार, स्वाध्याय,समाधि, उपदेश, पंचकल्याणक, चातुर्मास, निवास नहीं करते हैं तो वात-पित्त-कफ-विकृति, शीत-उष्ण की बाधा, शारीरिक-मानसिक अत्याधिक श्रमादि के कारण अम्लपित्त, शारीरिक उष्णता, अल्सर, खांसी, जुकाम, निमोनिया, क्षयरोग (टी.बी.) सिरदर्द, शारीरिक-मानसिक-विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिससे सामान्य सुख-शान्ति में भी बाधा पहुँचती है। तप, त्याग, साधनादि के माध्यम से आत्मा में जो समता, विशुद्धि, पवित्रता,शान्ति आदि आत्मा के गुण प्रगट होते हैं उससे ही कर्म के संवर, निर्जरा, मोक्ष होते हैं न कि संक्लेश, कष्ट, अशान्ति, तनाव, आकुलता-व्याकुलता से। यथा ''आनन्दो निर्दहत्युद्ध कर्मेन्धनमनारतं'' अर्थात् आत्मानन्द कर्मरूपी ईन्धन को प्रकृष्ट रूप से जलाता है। समतादि भावों का प्रादुर्भाव मोह, क्षोभादि के अभाव से होता है। अतः बाह्य तपादि से अन्तरंग विशुद्धि के कारण भूत कषायों को जीतने के लिए अधिक महत्व दिया है। यथा-

करोतु न चिरं घोरं तपः क्लेशासहो भवान्।
चित्तसाध्यान् कषायारीत्र जयेद्यत्त्वज्ञता।। आत्मानुशासन

हे भगवान्! यदि कष्ट साध्य घोर तप को नहीं कर पाते हो तथापि यदि चित्त से साधन योग्य कषाय रूपी शत्रु को नहीं जीत पाते हो तो यह तुम्हारी अज्ञानता है।

पंचमकाल में भावमुनियों का सद्भाव

हे छद्मस्थ आत्मन्! स्व-अवचेतन संतुष्टि के लिए या दूसरों को ठगने के लिए यह भी न सोचे और न कहें कि वर्तमान में कौन सच्चे साधु बन सकते हैं ? कौन कठोर साधना कर सकते हैं ? यथा-

संकाकंखा गहिया विसय वसत्था सुमग्गयब्भट्ठा।
एवं भणंति केई ण हु कालो होइ झाणस्स।। 14।। तत्त्वसार

संदेहशील विषय सुख के प्रेमी, भोगों में आसक्त एवं विषय भोगों में अपना हित मानने वाले जिनेन्द्रप्रणीत रत्नत्रयरूपी सुमार्ग से भ्रष्ट कितने ही इस प्रकार कहते हैं कि वर्तमान पंचमकाल ध्यान योग्य काल नहीं है, इस काल में मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तो मुनि होकर क्या करना है। पूर्वोक्त समस्त प्रश्नों का समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं-

अज्जवि तिरयणवंता अप्पा झाऊन जंति सुरलोयं।
तत्थ चुया मणुयत्ते उप्पज्जिय लहहि णिव्वाणं।। 15

आज भी इस पंचमकाल में रत्नत्रयधारी मुनि आत्मा का ध्यान कर स्वर्ग लोक को जा सकते हैं, वहाँ से च्युत होकर उत्तम मानव कुल में जन्म लेकर मुनि होकर निर्वाण की प्राप्ति कर सकते हैं -

मुनि निवास

कलौःकाले वने वासो वर्जनीयो मुनीश्वरेः।
स्थीयते च जिनागारे ग्रामादिषु विशेषतः।। (इन्द्रनंदी नीतिसार)

कलिकाल में मुनिश्वरों को वनवास छोडने योग्य है। विशेषतः जिनमंदिर, ग्रामादिक में रहना चाहिए।

कुन्दकुन्दाचार्य मोक्ष पाहुड में कहते हैं :-

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं, हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहाव ठिदे ण हु मण्ण सो वि अण्णाणी।। 76
अज्ज वि तिरयण सुद्धा अप्पा झाए वि लहइ इंदव्वं।
लोयंतियं दवत्त तत्थं चुआ णिव्वुदिं जंति।। 77

भरत क्षेत्र में दुःषमाकाल में मुनियों को धर्मध्यान होता है, वे धर्मध्यान के

माध्यम से आत्मा में स्थिर रहते हैं, जो इस प्रकार नहीं मानता है वह भी अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है।

अभी भी सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से शुद्ध मुनि आत्म ध्यान कर इन्द्रत्व एवं लोकान्तिक देव होते हैं, वहाँ से च्युत होकर उत्तम मानवपर्याय को प्राप्त कर मुनि होकर परम निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

शंका :- वर्तमान काल में मुनियों को शुक्लध्यान नहीं होता है तो क्या चारित्र भी नहीं हो सकता है। ''वीतरागी चारित्रभाव कथंगौणत्वमित्याशंकाहः''

समाधानः- माइल्ल धवल ''द्रव्य स्वभाव प्रकाशक'' में इसका निर्णय करते है।

मज्झिम जहाणुक्कस्सा सराग इव वीयराय सागग्गी।
तम्हा सुद्धचरितं पंचमकाले वि देसदो अत्थि।। 344

''द्रव्य स्वभाव प्रकाशक नयचक्र''

जिस प्रकार सरागदशा के भी जघन्य, मध्यम,उत्कृष्ट भेद होते हैं, अतः एकदेश वीतराग चारित्र पंचमकाल में भी होता है। श्री नागसेन मुनि भी कहते हैं :-

अत्रेदानीषेधंति शुक्लध्यानं जिनोत्तमाः।
धर्मध्यानं पुनः प्राहुः श्रेणीभ्यां प्राग्विवर्तिनां।। 83
यत्पुनः वज्रकायस्य ध्यानामित्यागमे वचः।
श्रेण्यो ध्यानं प्रतीत्योक्तं तन्नाधस्तन्निषेधकं।। 84
ध्यातारश्चेत्र सन्त्यद्यश्रुत सागरपारगाः।
तत्किमल्पश्रुतैर्न ध्यातव्यं स्वशक्तितः।। 85
चरितारोन चेत्सन्ति यथाखयातस्य संप्रति।
तत्किमन्ये यथाशक्तिमाचरन्तु तपस्वितः।। 86
समग्गुरूपदेशेन समभ्यस्यन्नारतं।
धारणासौष्ट वादृध्यानं प्रत्ययानपि पश्यति।। 87
यथाअभ्यासेन शास्त्राणि स्थिराणिस्युर्महान्त्यपि।
तथा ध्यानमपि स्थैर्य लभन्तऽअभ्यासवर्तिनां।88।।

श्री जिनेन्द्र भगवान् ने इस पंचमकाल में यहाँ पर भरत क्षेत्र में शुक्लध्यान का अभाव बताया है। उपशम क्षपक श्रेणी से नीचे रहने वालों को धर्मध्यान होना बताया है। वज्रकायधारी उत्तम संहननवालों को जो ध्यान आगम में कहा है वह श्रेणी की

अपेक्षा से कहा है। अद्यस्तन ध्यान निषेध नहीं है। यद्यपि वर्तमान में श्रुतकेवली समान ध्यानी मुनि नहीं हो सकते हैं, तो भी क्या अल्पश्रुत ज्ञाताओं को अपनी शक्ति के अनुसार ध्यान नहीं करना चाहिए? अर्थात् अवश्य करना चाहिए। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा गया है ''शक्तितस्त्यागतपसी'' शक्ति के अनुसार त्याग और शक्ति के अनुसार तपस्या करनी चाहिए। वर्तमान काल में यथाख्यातचारित्र के आचरण करने वाले नहीं हो सकते हैं तो क्या तपस्वियों को यथाशक्ति सामायिक, छेदोपस्थापनादि सरागचारित्र नहीं पालन करना चाहिए ? अर्थात् अवश्य ही पालन करना चाहिए। जो साधक भली प्रकार गुरुपदेश से भली प्रकार आध्यात्मिक अभ्यास निरन्तर करता रहेगा, तो उसकी धारणा उत्तम हो जाएगी तो वह अनेक चमत्कारों को भी देख सकेगा। जैसे बड़े-बड़े शास्त्र भी आभ्यास के बल से समझने में आते हैं उसी प्रकार अभ्यास करने वालों का ध्यान भी स्थिर हो जाता है। इसलिए पंचमकाल में भी यथाशक्ति प्रमाद रहित होकर काम, भोग, पंचेन्द्रियों के विषयों से, स्त्री, कुटुम्ब, व्यापारादि से विरक्त होकर ख्याति, पूजा, लाभादि से रहित होकर धर्म-ध्यानपूर्वक आत्मध्यान करना चाहिए। इससे पाप कर्मों का संवर, निर्जरा होगी। निरिच्छक सातिशय पुण्य बंध होगा, जिससे परम्परा से स्वर्ग, मोक्ष की प्राप्ति होगी। जैसे करोड़पति, अरबपति स्वमूल धन के अनुसार व्यापार करते हैं, उसी प्रकार साधारण व्यक्ति भी स्वशक्ति के अनुसार व्यापार करता है। अधिक धन नहीं रहने पर निरुद्यम होकर बैठा नहीं रहता है, यदि बैठा रहेगा तो पेटपोषण भी नहीं हो पायेगा, श्रीमंत होने की बात तो दूर रही इसी प्रकार पंचम काल में स्वशक्ति अनुसार श्रावक दान, पूजा, शील, व्रत,उपवासादि जघन्य देशचारित्र पालन भी नहीं करेंगे तो पाप संचय के कारण नरक, निगोद ही मिलेगा, संसार वृद्धि होगी, मोक्ष तो अत्यन्त दूर की बात है, सुस्वर्ग की भी प्राप्ति नहीं होगी।

पंचमकाल में मुनियों की एक वर्ष की तपस्या चतुर्थ काल में एक हजार वर्ष के समान है :-

हे आत्मन्! इस अत्यन्त विपरीत हुण्डावसर्पिणी रूप इस पंचम काल में अत्यन्त दुर्द्धर महाव्रतादि धारण कर अत्यन्त भौतिक भोग विलास रूपी वातावरण में विचरण करना लोहे के चने चबाने के समान है। यह कोई बच्चों का खेल नहीं हैं, अथवा बहुरूपियों का खेल नहीं है, वाग्विलास नहीं है। जो धीर, वीर हैं वही पंचमकाल में जिनेन्द्र भगवान् के निर्ग्रंथ लिंग को धारण कर सकता है।

सहणणं अइणीचं कालो सो दुस्समो मणो चवलो।
तह विहु धीरा पुरिसा महव्वयभर धरण उच्छहिया। 130 भा.सं.
वरिस सहस्सेण पुरा जं कम्मं हणह तेण काएण।
तं संवइ वरिसेण हु णिज्जरयइ हीण संहणणे।। 131

इस पंचमकाल में संहनन अत्यन्त हीन है, काल अत्यन्त दुःषम है, मन अत्यन्त चंचल है, तथापि जो धीर-वीर पुरुष महाव्रतरूपी महाभार को धारण करने के लिए उत्साहित है, वह महान् प्रशंसनीय, वंदनीय, पूजनीय है।

चतुर्थ काल में जिस उत्तम संहनन युक्त शरीर के माध्यम से तपश्चरण द्वारा जो कर्म एक हजार वर्ष में नष्ट होता था, उतना ही कर्म वर्तमान दुःषम काल में हीन संहनन-युक्त हीन शरीर से एक वर्ष के तपश्चरण द्वारा नष्ट होता है। इससे सिद्ध होता है, चतुर्थ काल अपेक्षा पंचम काल में मुनिव्रत धारण, पालन, तपश्चरण आदि एक हजार गुणा दुश्कर है। निर्ग्रन्थ रूप की दुर्द्धरता के लिए आचार्य जिनसेन स्वामी आदिपुराण में लिखते हैं :-

अश्यक्य धारणं चेदं जंतुना कातरात्मनाम्।
जैनं निस्संगता मुख्य रूपं धीरैः निषेव्यते।।

जिसमें यथाजात रूप अन्तरंग बहिरंग ग्रन्थ रहितता मुख्य है ऐसा निर्ग्रन्थलिंग उसी प्रकार दुर्द्धर, दुरासाध्य, अत्यन्त कठिन रूप को कातर, कायर, मन एवं इंद्रियों के दास, भोगों के कीड़ों के द्वारा धारण करना अत्यन्त अशक्य है। जो धीर, वीर गंभीर, दमी, यमी होते हैं उनके द्वारा ही निर्गन्थ लिंग धारण किया जा सकता है। जैसे चक्रवर्ती के चक्र को कायर पुरुष प्रयोग नहीं कर सकता, केवल वीर पुरुष पुण्यात्मा पुरुष धारण कर सकता है, उसी प्रकार इस निर्ग्रन्थ रूप को धीर वीर एवं पुण्यात्मा पुरुष धारण कर सकते हैं।

अन्तर विषय वासना वरतैं बाहर लोक लाज भय भारी।
यातै परम दिगम्बर मुद्रा धर नहिं सकै दीन संसारी।।
ऐसी दुर्धर नगन परिषह जीतै साधु शील व्रतधारी।
निर्विकार बालकवत् निर्भय तिनके चरणों धोक हमारी। 7

हे अन्तरात्मन्! तुमने अनन्त दुःख के कारण मूलभूत बहिरात्मपना को त्यागकर परमात्मपना के साधकस्वरूप परम पवित्र, सर्वश्रेष्ठ, समतारूप, सत्य-अहिंसा-अपरिग्रह-

ब्रह्मचर्य-रत्नत्रय दस धर्म के जीवन्त/प्रयोगिक रूप जो साधुत्व को प्राप्त किया है उसमें मनसा-वचसा-कर्मणा एकनिष्ठ होकर समस्त कल्याण के मूलभूत आत्मकल्याण में सतत, समग्रता से प्रयत्न करो क्योंकि ये ही एक कार्य है जो कि तुमने अनन्त काल से अनन्त जन्म में भी नहीं किया है। इसके अतिरिक्त और समस्त कार्य यथा-जन्म-मरण, भोग-उपभोग शत्रुता-मित्रता, युद्ध-कलह, मान-अपमान, मरना-मारना, सत्ता-सम्पत्ति, प्रसिद्धि-बुद्धि, वैभव, राज-पाट, अमीरी-गरीबी, रोग-शोक, भय-उद्वेग, क्लेश-संक्लेश, तनाव-उदास आदि समस्त कार्य अवस्थाओं को तुमने किया, करवाया, अनुभव किया है। इन सब कार्यों से तुमने अनन्त दुःख भी भोगे हैं अतः एव हे सुखेच्छु, संवेग-वैराग्य युक्त आत्मन्! अभी तो कम से कम एक बार भी स्वयं के लिए मरकर भी देखो कि स्वयं के लिए मरण से तुम कैसे अमृत बन जाते हो, अजर-अमर,शाश्वतिक ''सच्चिदानंद''''सत्यं शिवं सुंदरम्'' बन जाते हो। यथा :-

अयि कथमपि मृत्वा तत्वाकौतुहली सन् अनुभव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्। पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन त्यजसि झगति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्।। अमृत कलश

हे शान्ति के इच्छुक आत्मन्! तत्त्व कौतुहल आदि किसी भी प्रकार से मरकर भी स्व-विज्ञानघनस्वरूप आत्म तत्त्व को मोह, माया, शोक-दुःख से मुहूर्तमात्र के लिए अलग अनुभव करो और जब ऐसा अनुभव करो तो तत्काल स्वशुद्धात्मा से भिन्न भौतिक/अनात्म/विकारभूत मोहादि को हठात् त्याग कर दो। इससे तुम निर्मल/पवित्र आनन्द घनस्वरूप हो जाओगे।

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहनेन स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षणमासमेकम्।
हृदयसरसि पुंसः पुद्गलदिभन्नधाम्नो ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धि।।

हे आत्मन्! संसार के अकार्य कोलाहल से विराम लो। स्वयं ही समस्त संकल्प-विकल्पों से अवकाश प्राप्त करके स्व-आत्मस्वरूप का अवलोकन/अनुभव करो। तब स्वयं को अनुभव हो जाएगा कि तुम्हारा चैतन्य शुद्ध-स्वरूप समस्त भौतिक स्वरूप से भिन्न है या नहीं ? अर्थात् निश्चय से भिन्न है।

अतएव हे आत्मन्! आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, आत्म अनुसंधान, आत्म परीक्षण-निरीक्षण, आत्म विश्लेषण, आत्मानुचरण से ही स्वात्मोपलब्धि रूप सुख-शान्ति, संवर, निर्जरा, मोक्ष प्राप्त किया जाता है। अन्य सब धार्मिक क्रिया-काण्ड, व्रत-नियम-

उपनियम, तप-त्याग, परीषह-उपसर्ग सहन-पूजा-पाठ, जप-तप, मंत्र-ध्यान आदि इसके लिए साधन/निमित्त/कारण/उपाय हैं।

हे साधकात्मन्! तुम्हारा निज आत्म वैभव अक्षय अनन्त है। वर्तमान पंचमकाल के समस्त देश-विदेश के सामान्य जन से लेकर उद्योगपति, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, वैज्ञानिक, साधु-संत के वैभव सीमित हैं, क्षायोपशमिक, कर्म सापेक्ष है। अतएव आत्म वैभव की अपेक्षा वर्तमान के स्व-पर के वैभव अत्यन्त तुच्छ हैं/हेय हैं, इसलिए वर्तमान के स्व-पर वैभव से न राग करो, न ईर्ष्या करो, न अहंभाव करो, न दीनभाव करो। जो कुछ तुम्हारी वर्तमान की उपलब्धि है उसका सतत सदुपयोग निज आत्म वैभव की उपलब्धि के लिए ही करो। वर्तमान की उपलब्धि का उपयोग ख्याति, पूजा, लाभ प्रसिद्धि, संक्लेश-तनाव, ईर्ष्या-द्वेष, लन्द-फन्द में करके इह-परलोक में दुःखी मत हो। शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है कि प्राचीनकाल के तीर्थंकर, गणधर आदि चार ज्ञान एवं चौसठ ऋद्धियों के स्वामी होते हुए भी उन सब का उपयोग ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि या यहाँ तक की उनके ऊपर उपसर्ग-परीषह करने वालों के निवारण के लिए नहीं किया क्योंकि ऐसा करने से उपलब्धि का (1) सम्यक् सदुपयोग नहीं होता (2) प्राप्त उपलब्धि में मन्दमता आती है (3) आत्मोत्थ अक्षय उपलब्धि में बाधा होती है। अतः हे आत्मन्! ''वन्दे तद्गुण लब्धये'' के अनुसार तुम्हारी पंचपरमेष्ठी में जो पूजा/ भक्ति/ प्रार्थना तब यथार्थ होगी जब तुम उनके गुणों को स्वीकार करोगे क्योंकि गुणनुस्मरण, गुणानुवादन तथा गुणानुकरण ही यथार्थ भक्ति है, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र है। हे आत्मन् ''आदहिदं कादव्वं यदि चेत् परहिदं कादवं, आदहिदं परहिदादं आदहिदं सुट्ठू कादव्वं। उत्तमा स्वात्मचिंतास्यान्मोहचिन्ता च मध्यमा, अधमा कामचिन्ता स्यात् परचिंताऽधमाधमा।।'' अर्थात् जिस प्रकार दीपक स्वयं पहले प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तुम स्वयं स्वउपकार करते हुए परोपकार करो। इसके बिना अन्य समस्त प्रपंच, ढोंग-पाखण्ड, संक्लेश त्याग करो।

सिद्धि एवं श्रेय मार्ग

कुबोध रागादि विचेष्टितैः फलं, त्वयाऽपि भूयोजननादि लक्षण्।

प्रतीहि भव्य प्रतीलोम वर्तिभि, ध्रुव फलं प्राप्स्यसि तद्विलक्षणम्।।

106 आत्मानुशासनम्

हे भव्य! तूने बार-बार मिथ्यात्व, अज्ञान एवं राग द्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जो जन्म-मरणादि रूप फल प्राप्त किया है उसके विरूद्ध प्रवृत्तियों सम्यग्ज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल अजर-अमर पद को प्राप्त करेगा, ऐसा निश्चय कर।

दयादमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।

नयत्यवश्यं वचसामनगोचर, विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ।। 10

हे भव्य! तू प्रयत्न करके सरल भाव से दया, इंद्रिय दमन, दान और ध्यान की परंपरा के मार्ग में प्रवृत्त हो जा। वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद को प्राप्त करता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित है।

दया-दम-त्याग-समाधि निष्ठम् नय प्रमाण प्रकृताङ्ञ्सांऽर्थम्।

अधृत्यमन्यैरखिलैः प्रवादैः, जिन! त्वदियं मतद्वितीयम्। युक्तनुशासनम्

हे वीर जिन! आपका यह अनेकान्त रूप शासन अद्वितीय है। इसमें दया, दम, त्याग और समाधि में तपाता है। नयों एवं प्रमाणों द्वारा इसमें द्रव्य पर्याय स्वरूप जीवादिक तत्त्वों का अविरोध रूप से सुनिश्चित असंभव बोधकरूप से निर्णय किया गया है एवं इसमें समस्त एकान्त प्रवादों दर्शनमोहनीय के उदय से सर्वथा एकान्तवादियों की कल्पित मान्यताओं द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती है।।

हे आत्मन्! मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण अद्वितीय मार्ग रत्नत्रय ही है। अनन्त अनंतदर्शियों ने इस मार्ग पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त किया है। वे अनंतज्ञान को प्राप्त करके पूर्णरूप से प्रत्यक्ष से अनुभव करके रत्नत्रयात्मक मार्ग को ही यथार्थ मार्ग और इससे अतिरिक्त कुमार्ग, दुःख का मार्ग एवं संसार का मार्ग कहा है। आचार्यप्रवर समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है :-

सदृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्म धर्मेश्वरा विदुः।

यदिय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति।। 3

सद्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ही धर्म है, मोक्ष का मार्ग है, इससे विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं कुचारित्र ही कुधर्म है, दुःख का मार्ग है, संसार का मार्ग है, ऐसा धर्म के ज्ञाता धर्म के प्रभु ने बताया है। आचार्य उमास्वामी भी मोक्ष प्रतिपादक

शास्त्र का प्रतिपादन करते हुए प्रथम पंक्ति में बताते हैं कि :-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।। ''तत्त्वार्थ सूत्र''

Right belief, Right knowledge, Right conduct, these (Together contribute) the path to liberaion.

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, एवं सम्यक्‌चारित्र इन तीनों का सम्यक् संयोग रूप त्रयात्मक मोक्ष का मार्ग है।

"Self reverence, self knowldege and self control, these three alone lead life to sovereign power."

त्याग से दुर्गुण त्याग की शिक्षा मैं लहूँ

(चालः तेरे प्यार का आसरा...) -आचार्य कनकनन्दी

नेगेटिव फिडबैक से मैं शिक्षा ले रहा हूँ,
डॉक्टर-वैद्य-गुरु सम मैं बन रहा हूँ।
समस्याओं से समाधान प्राप्त कर रहा हूँ,
आवश्यकता से आविष्कार मैं कर रहा हूँ।। (1)

हर महापुरुष भी ऐसा ही करते,
तीर्थंकर-बुद्ध से ले वैज्ञानिक कवि भी।
दुर्गुणी से शिक्षा लूँ अतः घृणा न करूँ,
घृणा करने से शिक्षा कैसे मैं लहूँ ?।। (2)

मद्यपि यथा स्व-दोषों को भी नहीं जानता,
मदमस्त होकर अन्य को भी कष्ट देता,।
तथाहि कुज्ञानी मोही रागी द्वेषी स्वार्थीकामी,
स्वदोषों को न त्यागते दोषी मानते गुणी को।। (3)

इनसे शिक्षा ले (मैं) करूँ इनसे विपरीत भाव/(काम)
स्वदोष दूर करूँ (किन्तु) दोषी से न करूँ कुभाव/(कुकाम)
अन्य के गुण-दोष जानूँ स्व पर हित हेतु से,
यथा सर्वज्ञ जानते सभी के दोष निस्पृहता से।। (4)

इससे मुझे अनेक विध लाभ भी होते,

स्वयं दोषी न होने से उसके कुफल न मिलते।
दोषी प्रति भी राग द्वेष मोहादि भी न होते।
धर्माधर्म द्रव्य सम उदासीन निमित्त होते।। (5)

दोषी भी निर्दोष बने ऐसा शुभभाव भाऊँ,
शिष्य-भक्त या भद्र होने से उपदेश देऊँ।
अन्यथा मैत्री माध्यस्थ भावना भाऊँ
इससे समता-शान्ति-पुण्य को पाऊँ।। (6)

बारह भावनाओं का भी मैं अनुचिन्तन करूँ,
सर्वज्ञ से ले आचार्यों का अनुकरण करूँ,
''हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ ज्ञान'' करूँ,
'भेद-विज्ञान' से 'कनक' ''वीतरागी विज्ञानी'' बनूँ।। (7)

नन्दौड-19.09.2018 मध्याह्न 2.37

वरिष्ठ अधिकारियों के अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ व्यवहार को लेकर मिशिगन यूनिवर्सिटी की रिपोर्ट

अपमानजनक व्यवहार करने वाले बॉस मानसिक बीमारी का शिकार हो सकते हैं ; इससे प्रोडक्टिविटी कम होती है, कर्मचारियों का भरोसा घटता है

ऐसे अधिकारियों को कर्मचारियों से आक्रामक प्रतिक्रिया मिल सकती है

किसी कंपनी या दफ्तर में अपने मातहत या जूनियर कर्मचारियों से दुर्व्यवहार या अपमानजनक व्यवहार करने वाले बॉस या वरिष्ठ अधिकारी मानसिक बीमारी के शिकार हो सकते हैं। ऐसे लोगों की वजह से कर्मचारियों का भरोसा घटता है और प्रोडक्टिविटी में भी कमी आती है। हालांकि ऐसे लोगों को थोड़े समय के लिए संतुष्टि का अहसास हो सकता है, लेकिन लंबी अवधि में उन्हें इसका कोई फायदा नहीं होता। ये जानकारी मिशिगन यूनिवर्सिटी की ताजा रिसर्च में सामने आई है। इसके मुताबिक ऐसे अधिकारियों के व्यवहार की वजह से कर्मचारी प्रतिक्रिया में आक्रामक भी हो सकते है। रिपोर्ट में कहा गया है, हालांकि कई अध्ययनों ने अपमानजनक

व्यवहार के नकारात्मक प्रभावों का उल्लेख किया है, लेकिन फिर भी कई लोग ऐसा करते हैं। अशिष्ट व्यवहार उनकी मानसिक ऊर्जा और संसाधनों के लिए नुकसानदायक है।' मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी के एसोसिएट प्रोफेसर रसेल जॉनसन कहते हैं; 'अपमानजनक व्यवहार मानसिक थकान को जन्म दे सकता है। जो लोग इस आवेग पर मनन करते हैं, वे मानसिक रूप से बचे रहेंगे। लेकिन इस आवेग को दबाने के लिए सुदृढ़ मानसिक प्रयास जरूरी है। रिपोर्ट के मुताबिक, 'कर्मचारी अपमानजनक व्यवहार के तुरंब बाद कोई प्रतिक्रिया नहीं देते, लेकिन समय के साथ-साथ वे नकारात्मक तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं। इनमें आक्रामक व्यवहार और यहां तक नौकरी छोड़ना भी शामिल है।

अपमानजनक व्यवहार से थोड़े समय की संतुष्टि, बाद में नुकसान

अध्ययन में कहा गया है कि जो वरिष्ठ या अधिकारी अपने कर्मचारियों को कष्ट देते हैं उन्हें केवल थोड़ी देर के लिए अच्छा अनुभव होता है। एक हफ्ते के बाद ऐसा व्यवहार उनकी मानसिकता बन जाता है। प्रो. रसेल जॉनसन ने कहा, 'कहानी की नैतिक शिक्षा यह है कि थोड़े समय के लिए ये व्यवहार ठीक लग सकता है। लेकिन बाद में काफी नुकसानदेह हो सकता है। बाद में इस व्यवहार के दुष्प्रभाव दिखने लगते हैं। ऐसे में मानसिक स्थिति सामान्य होने में काफी वक्त भी लग सकता है।

निगेटिव खत्म करने के लिए दोनों पक्षों में बातचीत जरूरी

शोधकर्ताओं ने निगेटिविटी रोकने के लिए बॉस और कर्मचारियों के बीच संवाद बढ़ाने की सलाह दी है। वरिष्ठ अपने अधीनस्थों के साथ साझेदारी, व्यक्तिगत और सामाजिक बातचीत कर सकते हैं। इससे उन्हें खुद के भीतर निगेटिविटी कम करने में मदद मिलेगी। इससे कर्मचारियों में भी ऊर्जा बनी रहेगी।

नकारात्मक भावनाएँ किस वजह से पैदा होती है

नकारात्मक भावनाओं के चार प्रमुख कारण होते हैं। पहला कारण है तर्कसंगति (Justification) यह तब होती है, जब आप अपने और दूसरों के सामने यह स्पष्ट

करने और तर्कसंगत साबित करने की कोशिश करते हैं कि आपको यह नकारात्मक भावना क्यों महसूस करनी चाहिए या आपका नाराज़ होने या विचलित महसूस करने का हक़ क्यों है। खुद को तर्कसंगत या सही साबित करना एक ही प्रक्रिया के दो पहलू हैं और एक से दूसरे को बल मिलता है।

जब भी आप किसी कारण ऐसा महसूस करते हैं कि आपके साथ बुरा या ग़लत किया गया है, तो आपकी पहली प्रतिक्रिया यह होगी कि आप नाराज़ हो जाएँगे। आपकी दूसरी प्रतिक्रिया यह होगी कि क्रोध को उचित प्रतिक्रिया ठहराने के सारे तर्क खोज लेंगे। आपको यह कहने की ज़रूरत होगी, ''मुझे नाराज़ होने का पूरा हक है'' फिर आप ऐसे लोगों की तलाश करते हैं, जो आपकी तार्किकता और भावनाओं से सहमत हों। आप उन्हें पूरे विस्तार से स्थिति बताते हैं, ताकि उन्हें स्पष्टता से दिख जाए कि आपके साथ सचमुच ग़लत व्यवहार हुआ है। दरअसल, ख़ुद को और अपने क्रोध को तर्कसंगत साबित किए बिना आप क्रोध को क़ायम नहीं रख सकते।

आप नकारात्मक भावनाओं को तर्कसंगत साबित करने से इंकार करके उनके ख़ात्मे की प्रक्रिया शुरू कर सकते हैं। नाराज़ होने या बुरा लगने के कारण ख़ुद को खोजने या गिनाने ही न दें। किसी दूसरे व्यक्ति को दोष देने या उसका मूल्यांकन करने से इंकार कर दें। आप पाएँगे कि दूसरों का मूल्यांकन अंततः निन्दा के किसी न किसी रूप की ओर ले जाता है और उस निंदा के साथ असंयम और क्रोध की नकारात्मक भावनाएँ भी जुड़ जाती हैं। जब आप दूसरों का मूल्यांकन करने से बचते हैं, जो मानसिक नियंत्रण का काम है, तो क्रोध की नकारात्मक भावना को रोकने के लिए अक्सर यही काफ़ी होता है।

जब कोई व्यक्ति गुस्सा दिलाने वाली चीज़ कहता या करता है, तो अपनी भावनाओं पर क़ाबू रखते हुए सामने वाले की तरफ़ से कोई बहाना बना दें। मैं अपनी भावनाओं को नियंत्रित करने के लिए कुछ इस तरह की बात कहता हूँ, ''ईश्वर उस पर कृपा करे; शायद आज उसका दिन बुरा गुज़रा होगा।''

एक उदाहरण देखें। आप कार चलाकर जा रहे और किसी दूसरे ड्राइवर ने आपको कट मार दिया ? क्या आपने कभी ग़ौर किया है कि आप किस तरह फ़ौरन भड़क जाते हैं ? भले ही आपने उस ड्राइवर को पहले कभी न देखा हो और उसने आपको पहले कभी न देखा हो, लेकिन आप ठीक उसी तरह प्रतिक्रिया करते हैं, जैसे

ड्राइवर ने सावधानी से कट मारने की योजना बनाई हो और वह मोड़ पर आपका इंतजार कर रहा हो। लेकिन जिस पल आप ख़ुद को यह बताना बंद करते हैं कि वह कितना बुरा ड्राइवर है और इस बात पर हँस देते हैं, तो आपका गुस्सा जल्दी ही काफ़ूर हो जाता है। ख़ुंद को जज और ज्यूरी बनाने से इंकार करके आप क्रोध शुरू करने वाले ट्रिगर को हटा देते हैं। इस तरह आप शांत रहते हैं और अपनी भावनाओं का नियंत्रण अपने हाथ में लेते हैं।

नकारात्मक भावनाओं का दूसरा मुख्य कारण, तादात्म्य (identification) या चीज़ों को व्यक्तिगत रूप से लेना हैं। आप किसी चीज़ के बारे में सिर्फ़ उसी हद तक नाराज हो सकते हैं, जिस हद तक आप व्यक्तिगत रूप से उसके साथ जूडे हों और उसे किसी तरह से ख़ुद को प्रभावित करते या नुकसान पहुँचाते देख रहे हों।

जिस पल आप चीज़ों को व्यक्तिगत मानना बंद कर देते हैं, उसी पल आप दोबारा भावनाओं को अपने नियंत्रण में ले आते हैं। ऐसा करने का तरीक़ा अलगाव का अभ्यास करना है। स्थिति से दूर हटकर खड़े हो जाएँ और निष्पक्ष तरीक़े से उसकी तरफ़ देखने के लिए ख़ुद को मजबूर करें। दार्शनिक बनें। दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण से इसे देखने की कोशिश करें। जो हुआ है, उससे ''अलग हटने'' की योग्यता आपको ज्यादा शांति और स्पष्टता प्रदान करती है। इससे आप समस्या को ज़्यादा प्रभावी ढंग से निबटा लेते हैं, चाहे वह जो भी हो।

मुश्किलों से निबटने में अलगाव और निष्पक्षता की इस ज़रूरत के कारण ही कहा जाता है, ''जो व्यक्ति ख़ुद अपने वकील की तरह काम करता है, उसका ग्राहक मूर्ख होता है। ''शायद सीनियर एक्ज़ीक्यूटिव का सबसे मूल्यांकन गुण संकट में अच्छी तरह काम करने की उसकी योग्यता है। यह योग्यता सिर्फ़ उस पल की भावनात्मकता से बचने का परिणाम होती है।

नकारात्मक भावनाओं का तीसरा प्रमुख कारण है सम्मान या महत्व का अभाव। जब आप महसूस करते हैं कि लोग आपके साथ उचित व्यवहार नहीं कर रहे या उतने सम्मान से पेश नहीं आ रहे हैं, जितने के आप हक़दार हैं, तो आप नाराज़ हो जाते हैं। अगर कोई आपसे बदतमीज़ी से बोलता है या आपको नीचा दिखाता है या किसी सामाजिक स्थिति में आपको उचित मान्यता नहीं देता, तो आपके अहं को चोट पहुँचती है और आप आहत्, नाराज़ तथा रक्षात्मक महसूस करने लगते

हैं। इसीलिए किसी समझदार आदमी ने एक बार कहा था, ''आपको इस बारे में ज़्यादा चिंता नहीं करनी चाहिए कि दूसरे लोग आपके बारे में क्या सोचते हैं, क्योंकि आप यह जान जाएँ कि वे ऐसा कितना कम करते हैं, तो शायद आप कभी अपमानित महसूस नहीं करेंगे।''

आपको अपनी नकारात्मक भावनाओं को भूखा सार देना चाहिए। आपको उन्हें तर्गसंगत साबित करने से इंकार करना चाहिए। आपको उनके साथ जुड़ने या तादात्म्य रखने से इंकार करना चहिए । इस तरह आप उनकी सारी उर्जा ख़त्म कर देंगे। लेकिन नकारात्मक भावनाएँ ख़त्म करने का सबसे तेज़ तरीक़ा उनकी जड़ तक पहुँचना और फिर उन्हें काट देना है और यह एक पल में किया जा सकता है।

दोष देना नकारात्मक भावनाओं का चौथा और अंतिम कारण है। यह लगभग सभी नकारात्मक भावनाओं की जड़ में होता है। शायद आपकी ९९ प्रतिशत नकारात्मक भावनाएँ इसी कारण है, क्योंकि आप अपने दुख के लिए किसी व्यक्ति या वस्तु को दोष दे रहे हैं। जिस पल आप दोष देना बंद कर देते हैं, जिस पल आप किसी चीज़ के लिए किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु को दोष देने से इंकार कर देते हैं, आपकी नकारात्मक भावनाएँ थम जाती है, जैसे उन्हें शक्ति देने वाली बिजली काट दी गई हो, ठीक उसी तरह जिस तरह क्रिसमस ट्री की स्विचं बंद कर देने पर सारी बत्तियाँ फ़ौरन बूझ जाती हैं।

दोबार विस्थापन का नियम

किसी नकारात्मक भावना को शॉर्ट सर्किट करने का तरीक़ा विस्थापन के नियम में समझाया गया है। यह नियम बताता है कि चेतन मन अपने भीतर एक समय में सिर्फ़ एक ही विचार रख सकता है। नकारात्मक या सकारात्मक और आप उस विचार को ख़ुद चुन सकते हैं। आप किसी नकारात्मक, विनाशकारी विचार की जगह सकारात्मक, सृजनात्मक विचार रख सकते हैं और ऐसा करके नकारात्मक विचार को अपने दिमाग़ से बाहर निकाल सकते हैं।

जब भी आप किसी कारण नकारात्मक या नाराज़ महसूस करें, तो आप दृढ़ता से यह कहकर नकारात्मक भावना पैदा करने वाले उस विचार को तत्काल रद्द कर सकते हैं, ''मैं ज़िम्मेदार हूँ!

यह मानसिक नियंत्रण का सबसे शक्तिशाली संकल्प है। ये शब्द आपको भावनात्मक ड्राइवर की सीट पर दोबारा बैठा देते हैं। ''मैं ज़िम्मेदार हूँ! ये शब्द आपके मस्तिष्क को तत्काल सकारात्मक बना देते हैं। इनसे आपको शांति मिलती है और आप ज़्यादा स्पष्ट तरीक़े से स्थिति को देखने में समर्थ बनाते हैं। ''मैं ज़िम्मेदार हूँ ''शब्द आपको अपने बेहतर नियंत्रण में लाते हैं और ज़्यादा प्रभावी ढंग से स्थिति से निबटने में समर्थ बनाते हैं।

आप अपनी नकारात्मक भावनाएँ कायम रखते हुए उससे आगे प्रगति नहीं कर सकते, जितनी आपने इस पल तक की है। यह आपके लिए संभव ही नहीं है कि आप समझ और प्रभावकारिता के ज़्यादा ऊँचे स्तरों तक पहुँच पाएँ। आप उसी हद तक विकास कर सकते हैं, जिस हद तक आप नकारात्मक शक्तियों जैसी हैं, जो आपको अपनी वर्तमान वास्तविकता में रोके हुए हैं। आपको उन्हें पीछे छोड़ना होगा।

वैकल्पिक नहीं, अनिवार्य

जिम्मेदारी लेना और नकारात्मक भावनाएँ ख़त्म करना वैकल्पिक नहीं है। यह तो अनिवार्य है। यह आपकी सेहत, खुशी और व्यक्तिगत प्रभावकारिता के लिए केंद्रीय है। अपने जीवन और स्वयं के प्रति सकारात्मक मानसिक नज़रिया नकारात्मक भावनाओं को ख़त्म करने से आता है। अगर आप उच्चतर मानसिक शक्तियाँ विकसित करना चाहते हैं, तो सकारात्मक मानसिक नज़रिया अनिवार्य हैं। सकारात्मक, सृजनात्मक भावनाएँ हर खुशी, उपलब्धि और लंबे जीवन की नींव हैं।

अपना मस्तिष्क स्पष्ट करने की प्रक्रिया शुरू करने के लिए एक पल ठहरें और अपने पूरे जीवन- अतीत और वर्तमान के बारे में सोचें। नकारात्मक महसूस कराने वाली हर स्मृति या स्थिति का विश्लेषण इस तरह करें, जैसे आप उसे रोशनी के सामने रखकर देख रहे हों। फिर उससे जुड़ी किसी भी नकारात्मकता को ख़त्म करने के लिए बार-बार बस यह कहें, ''मैं जिम्मेदार हूँ।''

यह सच है कि आप ही ज़िम्मेदार है। चाहे आपकी मुश्किल या समस्या जो भी हो, आपने शायद ख़ुद ही उसमें क़दम रखा है। आप चुनाव करने के लिए स्वतंत्र थे। और आप अब भी स्वतंत्र हैं। आप शायद उस वक़्त जानते थे कि आपको यह नहीं करना चाहिए, लेकिन फिर भी आपने वह काम किया। आप अपनी स्थिति के लिए अपने निर्णयों के परिणामों के लिए पूरी तरह, शत-प्रतिशत ज़िम्मेदार हैं।

अक्सर लोग पूछते हैं, ''क्या जिम्मेदारी स्वीकार करना दोष स्वीकार करना नहीं है ? '' इसका जवाब यह है कि जिम्मेदारी हमेशा आगे की ओर, भविष्य की तरफ़ देखती है। दोष हमेशा पीछे की ओर, अतीत की ओर देखता है, किसी ऐसे व्यक्ति या वस्तु की तरफ़ जो दोषी हो।

जिम्मेदारी कहती है, ''अगली बार'' या ''भविष्य में'' या ''मैं यहाँ से क्या करूँगा ?'' दोष हमेशा कहता है, ''उसने किया'' या ''अगर ऐसा होता या नहीं होता तो ''जिम्मेदारी आपको नियंत्रण, आत्मनिर्भरता, प्रोएक्टिविटी का एहसास दिलाती है। दोष आपमें क्रोध, कुंठा और प्रतिशोध की भावनाएँ जगाता है।

कोई ट्रैफिक सिग्नल पर आपकी कार को टक्कर मार देता है। कानून की दृष्टि से इसमें आपकी कोई ग़लती नहीं है। लेकिन आप उस तरीकें के लिए जिम्मेदार हैं, जिस तरीक़े से आप इस स्थिति पर प्रतिक्रिया करते हैं। आप अपने व्यवहार के लिए ज़िम्मेदार है। आप या तो गुस्सा, विचलित और भावुक होकर प्रतिक्रिया कर सकते हैं या फिर परिपक्व, शांत और नियंत्रण होकर। चुनाव आपका है। आप कैसा महसूस करते हैं, यह स्थिति से नहीं बल्कि इस बात से तय होता है कि आप वैसा महसूस करते हैं यह स्थिति से नहीं बल्कि इस बात से तय होता है कि आप कैसी प्रतिक्रिया करने का फैसला करते हैं। जिम्मेदारी या गैर-जिम्मेदारी चुनाव आपका है और हमेशा आपका ही हो रहा है।

ब्रेक से पैर हटा लें।

आम तौर पर जब इन संदर्भों में जिम्मेदारी के बारे में सोचते हैं, तो आप फैसला करते हैं कि आगे से आप अपनी जिंदगी का पूरी जिम्मेदारी स्वीकार करेंगे। बहरहाल, लगभग हर व्यक्ति अब भी काम से कम एक ऐसा नकारात्मक अनुभव लादे हुए है, जिसके लिए वह किसी तरीकें से जिम्मेदारी स्वीकार नहीं करने वाला। हर व्यक्ति की एक प्रिय नकारात्मक भावना होती है, जिससे वह अपनी भावनाओं या घटनाओं की जिम्मेदारी स्वीकार करके जुदा नहीं होगा।

आप कहते है, ''अगर आपको पता होता कि उस आदमी ने मेरे साथ क्या किया है, तो आप मुझसे जिम्मेदारी स्वीकार करने के लिए कभी नहीं कहते'' लेकिन यहाँ एक ख़ास बताना चाहूँगा। आपके चेतन या अवचेतन मन में एक भी नकारात्मक

भावना का लगातार क़ायम रहना खुशी की सारी संभावना को नष्ट करने के लिए काफी है। दोष या क्रोध की एक भी नकारात्मक भावना आपकी मानसिक शांति में अनंत काल तक हस्तक्षेप कर सकती है।

ये महत्वपूर्ण बिंदु रेखांकित करते हुए कल्पना करें कि आपने अभी-अभी एक बिलकुल नई मर्सिडीज 600 एसईएल कार फैक्ट्री से ख़रीदी है। कार सुंदर है और मशीनरी हर तरह से बेहतरीन है। इस कार के साथ सिर्फ एक ही समस्या है। ब्रेकिंग सिस्टम की असेम्बलिंग के समय ग़लती हो जाने से अगले पहिए का ब्रेक लॉक हो गया है। पहिया नहीं घूमेगा। अब मान लेते हैं कि आप इस सुंदर कार को चलाने का फैसला करते हैं, आप भीतर घुसते हैं, इंजन चालू करते हैं, गियर डालते हैं और ऐक्सीलरेटर दबाते हैं। अगर कार में सामने वाले पहिए के ब्रेक के सिवाय बाकी सब कुछ आदर्श है, तो एक्सीलरेटर को कितना भी दबा लें या पहिए को कितना भी घुमा लें, आप गोल-गोल ही घूमते रहेंगे।

आपकी दुनिया उस नई कार जैसे लोगों से भरी है। आप भी उनमें से एक हो सकते हैं। वे बुद्धिमान,आकर्षक और शिक्षित हैं। ऐसा लगता है कि उनके साथ हर चीज़ अच्छी तरह हो रही है, लेकिन उनकी जिंदगी बस गोल-गोल घूम रही है। लगभग हमेशा इसका कारण यह है कि वे अतीत के कम से कम एक ऐसे प्रमुख अनुभव पर ब्रेक लगाए बैठे हैं, जिसके लिए वे जिम्मेदारी लेने से इंकार कर रहे हैं। वे जब भी अपनी चोट के लिए किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु को दोष दे रहे हैं।

मैंने पचास साल की उम्र के स्त्री-पुरुषों से बात की है, जो अपने बचपन की किसी बात को लेकर नाराज़ और द्वेषपूर्ण थे। यह अनसुलझी कटुता उनके जीवनसाथियों, बच्चों, सहकर्मियों और दोस्ती के साथ उनके संबंधों पर असर डालती है। यह कई मनोदैहिक रोगों का कारण बनती है और गंभीर मामलों में मृत्यु की ओर भी ले जा सकती है।

मनोविज्ञान का क्षेत्र लोगों को क्रोध, अपराधबोध और द्वेष की अनसुलझी भावनाओं से निबटने में मदद करने के इर्द-गिर्द ही बना है। मरीज़ का इलाज हो सकता है, जब वह पहचान ले कि कौन सी चीज़ उसे पीछे रोके हुए है। जब वह ईमानदारी से उसका सामना कर लेता है और उसे जाने देता है, तो वह ठीक हो जाता है। आप यही काम अपने मन में कर सकते हैं। किसी के प्रति नकारात्मक की

भावनाएँ पहचानें, स्थिति के लिए ज़िम्मेदारी स्वीकार करें और फिर इसे छोड दें। जैसे ही आप यह करते हैं, आप पाएँगे कि आप ठीक हो गए हैं।

इसे दूसरों को सिखाएँ

आप वही बनते हैं, जो आप सिखाते हैं। एक बार जब आप अपने जीवन के हर हिस्से के लिए ज़िम्मेदारी स्वीकार करना शुरू कर लें, इसके बाद अपने मित्रों और सहयोगियों को भी ऐसा ही करने के लिए प्रोत्साहित करें। जब लोग आपको अपनी समस्याएँ और कुंठाएँ बताएँ, तो उनके साथ परानुभूति रखें और फिर उन्हें याद दिलाएँ, ''आप जिम्मेदार है।''

शायद किसी सच्चे दोस्त के लिए आप सबसे अच्छा काम यह कर सकते हैं कि उसे यह याद दिलाकर होश में ला दें कि वही जिम्मेदार है। जब भी कोई शिकायत करें, तो प्रतिक्रिया में यह कहें, ''आप ज़िम्मेदार है। आप इस बारें में क्या करने जा रहे है ?'' सलाह देने की कोशिश न करें। सलाह शायद कोई नहीं सुनना चाहता और वैसे भी उसे नज़रअंदाज कर दिया जाएगा। सिर्फ़ सुनें। सहनुभूति रखें। फिर उस व्यक्ति को जिम्मेदारी स्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित करें और स्थिति को लेकर कुछ करने में व्यस्त हो जाएँ।

एक वक्त था जब मेरी पत्नी बारबरा एक मार्गदर्शक परामर्शदाता बनना चाहती थी। उसका अंतिम लक्ष्य मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषक बनना था। वह लोगों की समस्याएँ सुलझाने में उनकी मदद करना चाहती थी। वह घंटों तक अपनी सहेलियों की समस्याएँ सुनने का अभ्यास करती थी, और फिर उन्हें अपनी तरफ़ से सबसे अच्छा रास्ता सुझाती थी। उनकी मुश्किलों को दूर करने के लिए वह उन्हें अपनी तरफ़ से सबसे अच्छा मार्गदर्शन और सलाह देती थी।

जब भी मैं इन ''परामर्श सत्रों'' में शामिल होता था, ख़ासकार उसकी सहेलियों और सहकर्मियों के साथ, तो मैं घटों तक समस्या की चीरफाड़ करने से बचता था और यह कहकर सीधे मामले की तह तक पहुँच जाता था, ''आप ज़िम्मेदार हैं। आप इसके बारे में क्या करने जा रही हैं ?''

बारबरा को लगता था कि वह बहुत सतही तरीक़ा है। उसने मुझे बताया कि मैं उन स्थितियों की जटिलताओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे रहा हूँ, जिनका लोग सामना

कर रहे हैं। फिर उसे यह देखकर हैरानी हुई कि उसकी कई सहेलियों, जो अनेक परामर्श सत्रों के बावजूद बेहतर नहीं हुई थी, इस एक सवाल की वजह से स्थिति से बाहर निकल आई और उन्होंने ख़ुद को सँभाल लिया। जब उन्हें साफ़-साफ़ बता दिया गया कि अपनी स्थिति के लिए वे खुद जिम्मेदार हैं। और इसके लिए कुछ करने का दायित्व उनका ही है, तो इसके बाद उन्होंने सही क़दम उठा लिया।

बारबरा और मेरे बीच एक स्थायी मज़ाक चलता है। जब भी बारबरा किसी समस्याग्रस्त या मुश्किल में फँसी सहेली के साथ लंच करती है, तो मैं उससे पूछता हूँ कि उसने उसे क्या करने की सलाह दी। वह यह कहकर जवाब देती है, ''मैंने उसे बस 'वही सलाह' दी।''

यह हर संबंधित व्यक्ति के लिए ज़्यादा आसान, बेहतर और सरल है। सलाह यह है, ''आप ज़िम्मेदार हैं। आप इसके बारे में क्या करने वाले हैं ?''

''मैं जिम्मेदार हूँ, मैं जिम्मेदार हूँ, मैं जिम्मेदार हूँ ''बार-बार मन ही मन यह दोहराकर ख़ुद अपना मनोविश्लेषक बन जाएँ। फिर दूसरे समस्याग्रस्त लोगों को भी ''यही सलाह'' बस कहें, ''आप जिम्मेदार हैं। आप इसके बारे में क्या करने वाले हैं?'' उन्हें अपनी बाक़ी जिंदगी अपने रास्ते जानें दे, ताकि आप अपने रास्ते जा सकें।

कर्म अभ्यास

एक कागज़ उठाकर नीचे की तरफ बीच में एक रेखा खींच लें। बाईं तरफ़ हर व्यक्ति या स्थिति की सूची बनाएँ, जिसके बारे में आपके मन में कोई नकारात्मक भावना है। हर एक पर क्रम संख्या डाल दें।

पेज के दाएँ हिस्से, में इस तरह के वाक्य लिखें, ''मैं इसके लिए जिम्मेदार हूँ, क्योंकि ''और फिर वाक्य पूरा कर दें। हर चीज़ के साथ ऐसा ही करें और ख़ुद पर पूरी सख़्ती बरते। पूरी तरह ईमानदार और सच्चे रहें। जो हुआ, आप उसके लिए जिम्मेदार क्यों हो सकते हैं, इसका हर कारण लिखें। अपने अतीत या वर्तमान की हर नकारात्मक स्थिति के मामले में यही करें।

यह अभ्यास पूरा करने के बाद इस बात पर हैरान हो जाएँगे कि आप कितने ज़्यादा सकारात्मक और नियंत्रण में महसूस करते हैं। आप उन मानसिक बोझों से

मुक्त हो जाएँगे, जिन्हें आप इतने लंबे समय से लादे हुए हैं।

खुद के रास्ते से हटना

ख़ास तौर पर दूसरों के साथ संबंधों में आंतरिक शांति और बाहरी सफलता की स्वर्णिम कुंजी आपके और अपने आस-पास की दुनिया पर आपकी प्रतिक्रियाओं के भीतर मौजूद है। उच्चतर चेतना के विकास और सभी मानसिक शक्तियों के पूर्ण उपयोग के लिए एक सिद्धांत अनिवार्य है। यह आपको सभी तरह की नकारात्मक भावनाएँ को काफ़ी हद तक ख़त्म करने और अपने हर काम की पूरी जिम्मेदारी लेने में समर्थ बनाएगा। यह सिद्धांत अतीत की असंख्य समस्याओं के बोझ से आपको मुक्त कर देगा, जिनकी जड़ें आपके बचपन तक जाती हैं। यह आपमें एक उदात्त और श्रेष्ठ चरित्र विकसित करेगा और उस क़िस्म का व्यक्ति बनाएगा, जिसके आस-पास लोग रहना पसंद करें। हमारे सेमिनार के हज़ारों प्रतिभागियों ने हमें बताया है कि इस सिद्धांत के अभ्यास ने उनके जीवन में क्रांति कर दी है। ऐसा ही आपके साथ भी होगा। आप इस अध्याय में यह सिद्धांत सीखेंगे।

आप आज जो भी है, अपनी सोच के आदतन तरीकों का नतीजा हैं। जैसा अनुरुपता का नियम बताता है, आपका बाहरी संसार आपके भीतरी संसार का भौतिक प्रगटीकरण है। आप अपने आस-पास जो भी चीजें देखते हैं- आपकी सेहत, आपके रिश्ते, आपका करियर, आपका परिवार और आपकी सांसारिक उपलब्धियाँ वे सभी आपके मानसिक विचारों या कार्यों की अभिव्यक्ति हैं।

व्यवहार, नज़रिए, जीवनमूल्य और विचार की आदतें आपने सीखी हैं । जब आप इस दुनिया में आए थे, तब ये चीजें आपके पास नहीं थी। बरसों तक इनपुट और दोहराव की प्रक्रिया से आपने इन्हें सीखा हैं। और चूँकि उन्हें सीखा गया है, इसलिए उन्हें भुलाया भी जा सकता है। आप विचार की सीखी हुई आदतों को त्याग सकते हैं, जो उस व्यक्ति के अनुरूप नहीं है, जैसा आप बनना चाहते हैं या उन लक्ष्यों के अनुरूप नहीं है, जिन्हें आप हासिल करना चाहते हैं।

आशावाद की भावना सफलता और ख़ुशी की पूर्व-शर्त है। बहरहाल, हममें से ज़्यादातर लोग हर तरह की नकारात्मक भावनाओं की वजह से कष्ट उठा रहे हैं, ख़ास तौर पर क्रोध, डर, शंका, ईर्ष्या, द्वेष, चिढ़, अधीरता, असहिष्णुता और जलन।

हमारे सर्वश्रेष्ठ इरादों के बावजूद ये नकारात्मक भावनाएँ अप्रत्याशित रूप से चली आती है, अक्सर सबसे बुरे संभावित पलों में और हमसे ऐसे काम कराती हैं, जिन पर बाद में हमें अफ़सोस होता है।

नकारात्मक भावनाएँ वे प्रतिक्रियाएँ हैं, जो हमने आदतों की तरह ही सीखी हैं। उन्हें भी भुलाया जा सकता है, बशर्ते आपके पास उस ताले को खोलने की कुंजी हो, जहाँ वे रहती है। बहरहाल, उन्हें भुलाने के लिए आपको मनोवैज्ञानिक तत्वों को समझना होगा, जो नकारात्मक भावनाओं के लिए उर्वर भूमि बनाते हैं।

सौभाग्य से, आपके अवचेतन मन में नकारात्मक भावनाओं के लिए कोई स्थाई जगह नहीं है। यदि नकारात्मक भावनाएँ, स्थाई बन जाती, तो कोशिशों से अपने स्वभाव या व्यक्तित्व को सुधारने की कोई उम्मीद ही नहीं होती। बहरहाल, ये तो खानाबदोश भावनाएँ हैं, जिन्हें सही तरीक़े से दूर भगाया जा सकता है।

उर्वर भूमि

जिस तरह आप बिना किसी आत्म-अवधारणा के पैदा हुए हैं, उसी तरह आप नकारात्मक भावनाओं के बिना भी पैदा हुए हैं। बड़े होते समय आपको नकारात्मक भावनाएँ सिखाई गई हैं। आप आम तौर पर अपने परिवार की सबसे ज़्यादा लोकप्रिय नकारात्मक भावनाएँ सीखते हैं। आप अपने माता-पिता की नकारात्मक भावनाओं और प्रतिक्रियाओं की नक़ल करते हैं। आप उन लोगों की नकारात्मक भावनाओं की नकल करते हैं, जिनके साथ आप जुड़ाव महसूस करते है। अगर कोई आपको यह सुझाव देता है कि आपके काम करने का तरीका अनुचित है, तो आप उनकी इस बात को यह कहकर नकार देते हैं, ''मैं ऐसा ही हूँ।''

अक्सर, आपके भीतर कुछ नकारात्मक विचार इतने लंबे समय से होंगे कि आपको मालूम ही नहीं होगा कि वे मूलतः कहाँ से आए। लेकिन आप एक चीज़ पर भरोसा कर सकते हैं : आप उनके साथ पैदा नहीं हुए थे। वे स्थाई नहीं हैं। अगर आप चाहें, तो उनसे आज़ाद हो सकते हैं।

नकारात्मकता की जड़ें

नकारात्मक भावनाओं के प्रति आपका झुकाव दो अनुभवों की वज़ह से हो जाता है और ये दोनों अनुभव आपको बचपन में जल्द ही हो जाते हैं। इनमें से पहला

अनुभव है विनाशकारी आलोचना। इस दुनिया में जितने ज़्यादा लोग विनाशकारी आलोचना के कारण तबाह हुए हैं, उतने इतिहास के सभी युद्धों को मिलाकर भी नहीं हुए हैं। फर्क यह है कि युद्ध में लोगों के शरीर मरते हैं, जबकि विनाशकारी आलोचना में भीतरी व्यक्तित्व नष्ट होता है, जबकि शरीर छूट जाते हैं। आपको अपने और बाक़ी लोगों के साथ जो समस्याएँ आ रही है, उनमें से लगभग हर समस्या किसी ऐसी घटना के परिप्रेक्ष्य में देखी जा सकती है, जिसमें आपकी आलोचना करके आपके महत्व और योग्यता को चुनौती दी गई थी या उस पर हमला किया गया था।

छह साल की उम्र तक बच्चे अपने जीवन के महत्वपूर्ण लोगों के प्रभावों के प्रति खुले और असुरक्षित होते हैं। उनमें सच्चे और झूठे मूल्यांकनों तथा आलोचनाओं के बीच भेद करने की कोई क्षमता नहीं होती है। बच्चे का दिमाग़ गीली मिट्टी की तरह होता है, जिस पर उसके माता-पिता और भाई-बहन लिखते हैं और छाप भी उतनी ही ज़्यादा गहरी होती है।

जब आप थोड़े बड़े होते हैं और भेद करने की शक्तियाँ विकसित करते हैं, तो आप नकारात्मक इनपुट के ''स्रोत पर विचार'' कर सकते हैं। अगर कोई आपकी आलोचना करता हैं या आपसे असहमत होता है, तो आप पीछे हटकर मूल्यांकन कर सकते हैं कि वह आकलन वैध और सही या नहीं। आप सहायक बातों को स्वीकार करने का चुनाव कर सकते हैं और बाक़ी को अस्वीकार कर सकते हैं।

बहरहाल, बचपन में आपमें ऐसी कोई योग्यता नहीं होती है। चूँकि आप अब भी यह सीखने की प्रक्रिया में है कि आप कौन है, इसलिए आप छोटे स्पंज जैसे होते हैं। आप अपने आस-पास के महत्वपूर्ण लोगों के मूल्यांकन को इस तरह सीख लेते हैं, जैसे वे आपको पूरी सच्चाई बता रहे हों, जैसे वे सचमुच आपके सच्चे चरित्र और क्षमताओं को जानते हों। आप उनके प्रेम और सम्मान को जितना ज़्यादा महत्व देते हैं, इस बात की उतनी ही ज़्यादा संभावना है कि आप अपने बारे में उनकी बात को अपने चरित्र और मूल्य के सही आंकलन के रूप में स्वीकार करेंगे। और जब अपने बारे में किसी चीज़ को सच मान लेते हैं, तो आप भी उस विश्वास की रोशनी में ख़ुद को देखने लगते हैं।

आपका मस्तिष्क इस बात की पुष्टि करके आपकी सेवा करने की कोशिश करता है कि आपने अपने बारे में जो फैसला किया है, वह सही है। यह आपकी

अनुभूतियों को क्रमबद्ध करता है। यह ऐसे उदाहरण खोज़ लाता है, जिनसे आपके विश्वास ''सही साबित'' होते हैं। साथ ही उन अनुभवों को अनदेखा करवा देता है, जो आपके विश्वास के विरोध में होते हैं।

अगर आपसे कहा जाता है कि ''आप गंदे लड़के हैं ''या ''आप पर भरोसा नहीं किया जा सकता, ''या आप झूठे है'' (सभी बच्चे झूठ बोलते हैं; यह तो बाक़ी लोगों के साथ व्यवहार करना सीखने का हिस्सा है) तो आप विश्वास करने लगते हैं कि आपके मूलभूत व्यक्तित्व की ये आलोचनाएँ अटल सत्य हैं। अगर आप उन्हें चेतन रूप से स्वीकार कर लेते हैं, तो फिर आपका अवचेतन मन भी उन्हें सच मान लेता है, जहाँ वे भावी व्यवहार के निर्देश के रूप में दर्ज हो जाती हैं।

बड़े होते वक़्त मुझे बताया गया कि मैं कभी ज़्यादा कुछ नहीं बन पाऊँगा और मेरे माता-पिता मुझसे बहुत निराश है। ऐसा जान-बूझकर तो नहीं किया गया, लेकिन उन्होंने मेरा मूल्यांकन बहुत ऊँचे पैमाने से किया था। वे यह नहीं समझते थे कि बच्चे छोटे होते हैं और सीखने की प्रक्रिया में लगातार ग़लतियाँ करते हैं। मुझसे उनके पहले बच्चे से वयस्क जितने अच्छे व्यवहार की उम्मीद की गई, जो मैं कर ही नहीं सकता था।

जब मेरे बच्चे हुए, तो मैंने संकल्प किया कि मैं उनके साथ वो नहीं करूँगा, जो मेरे साथ हुआ। मैं उन्हें हर दिन बताता हूँ कि मैं उनसे प्रेम करता हूँ और मेरे हिसाब से वे दुनिया के सबसे अच्छे बच्चे हैं। जब हम कार में एक साथ जाते हैं तो बारबरा से इस तरह बात करता हूँ, जैसे बच्चे पिछली सीट पर न बैठे हों और उसे बताता हूँ क हम कितने खुशकिस्मत हैं कि हमारे इतने अच्छे बच्चे हैं। निजी तौर पर मैं उनमें से हर एक से फुसफुसाकर कहता हूँ, ''तुम दुनिया के सबसे अच्छे बच्चे हो।'' जब मैं उन्हें डाँटता हूँ, तब भी मैं यह कहकर शुरू करता हूँ, ''मैं तुमसे बहुत ज़्यादा प्यार करता हूँ, लेकिन तुम्हें यह नहीं करना चाहिए, क्योंकि तुम्हें चोट पहुँच सकती है, ''या जो भी ज़रूरी हो।

माता-पिता बच्चे की मदद करने, उसका प्रदर्शन बेहतर बनाने के इरादे से उसकी आलोचना करते हैं। लेकिन विनाशकारी आलोचना की वजह से बच्चे का आत्मसम्मान कम हो जाता है और आत्म-अवधारणा कमज़ोर हो जाती है, जिससे बच्चे का सकल प्रदर्शन दरअसल कमज़ोर हो जाता है। उसका आत्मविश्वास घट

जाता है और उससे ग़लतियाँ होने की आशंका भी बढ़ जाती है। अगर बच्चे की आलोचना ज़्यादा होती है या अगर वह आलोचना को बहुत भावुकता से लेता है, तो वह चिंतित और भयभीत हो जाएगा और उन चीजों को करने से कतराने लगेगा।

सबसे बुरे मामले में बच्चा अति संवेदनशील और असुरक्षित बन जाएगा और किसी नई चीज़ की कोशिश करने से डरने लगेगा बड़े होते समय बच्चा हर तरह की आलोचना के बारे में बहुत भावुक बन जाएगा और जीवनसाथी, बॉस, मित्र या सहकर्मी की किस भी तरह की नापसंदगी पर क्रोध और रक्षात्मक ढंग से प्रतिक्रिया करेगा।

हर एक के जीवन में अति संवेदनशील क्षेत्र होते हैं, आमतौर पर जीवन के उन हिस्सों में जहाँ उनका सबसे बड़ा भावनात्मक निवेश होता है, जैसे परिवार या करियर। आप अपने के लिए जो सबसे महत्वपूर्ण काम कर सकते हैं, उनमें से एक यह है कि इन प्रमुख क्षेत्रों में आलोचना के प्रति तटस्थता या अलगाव विकसित करें। पीछे हटकर खड़े होना और बिना किसी भावना के दूसरों की राय का मूल्यांकन करना सीखें। यह आसान नहीं है, लेकिन इससे बहुत से तनाव और दबाव से बच जाते हैं। दूसरों की आलोचना से बहुत ज़्यादा प्रभावित होने से बचने की यह योग्यता आत्म-वास्तविकीकरण वाले व्यक्ति का प्रमुख गुण है।

खुशी का विनाशक

नकारात्मक भावनाओं की ओर आपको ले जाने वाला दूसरा तत्व है : प्रेम का अभाव। किसी बच्चे के लिए जो सबसे सदमे भरा अनुभव हो सकता है, वह है एक या दोनों अभिभावकों से मिलने वाले प्रेम का ख़त्म हो जाना। जब माता-पिता नाराज़गी और नापसंदगी की प्रतिक्रिया करते हैं, तो बच्चा दहशत में आ जाता है। वह तनाव ग्रस्त हो जाता है, डरने लगता है और मन ही मन काँपने लगता है। चूँकि बच्चे को अभिभावकों के प्रेम की बहुत ज़्यादा जरूरत होती है, इसलिए जब किसी कारण प्रेम रोक लिया जाता है, तो वह भीतर से कुम्हालने लगता है। अगर प्रेम अनिश्चित काल के लिए रोक दिया जाए या अप्रत्याशित रूप में दिया जाए, तो इससे व्यक्तित्व की गंभीर समस्याएँ पैदा हो सकती हैं, जिनसे वयस्क जीवन में क्रोध और नकारात्मकता का विस्फोट हो सकता है।

अगर आपको बचपन में प्रेम की पर्याप्त गुणवत्ता और मात्रा नहीं मिली (और ज़्यादातर लोगों के साथ ऐसा ही होता है), तो आप इसे जिंदगी भर खोजते हैं। आप

लगातार भावनात्मक कमी महसूस करेंगे- एक हसरत, एक असुरक्षा, जिसकी आप संतुष्टि या भरपाई करने की कोशिश करेंगे । आप अपने संबंधी में बिना शर्त प्रेम की खोज करेंगे और जब प्रेम में बाधा आएगी या आपको प्यार नहीं मिलेगा, तो आप तनाव और कष्ट महसूस करेंगे। जिस तरह कैल्शियम की कमी से बच्चों में रिकेट्स की बीमारी हो जाती है, जो वयस्क में झुके पैर के रूप में दिखती है, उसी तरह बचपन में प्रेम की कमी वयस्क जीवन में नकारात्मक भावनाओं के रूप में प्रकट होती है।

तीन शर्तें

बच्चे के रूप में पूरा महसूस करने के लिए तीन शर्तें मौजुद होनी चाहिए। इनमें से किसी एक की कमी भी किशोरावस्था और वयस्कता में असुरक्षा, नकारात्मक भावनाओं और विनाशकारी व्यवहार के रूप में नज़र आएगी।

स्वस्थ भावनात्मक विकास की पहली शर्त यह है कि आपके माता-पिता को खुद से प्रेम होना चाहिए। आपके माता-पिता आपको उससे ज़्यादा प्रेम नहीं दे सकते, जितना वे खुद से करते हैं। अगर माता-पिता खुद को बहुत ज़्यादा पसंद नहीं करते, तो उनके पास आपको देने के लिए बहुत कम प्रेम होगा। नियम यह है कि उच्च आत्म-अवधारणा वाले माता-पिता उच्च आत्म-अवधारणा वाले बच्चे पालते हैं, जबकि निम्न आत्म-अवधारणा वाले माता-पिता निम्न आत्म अवधारणा वाले बच्चों को पालते हैं। जैसा भीतर, वैसा बाहर। बच्चों की आत्म-अवधारणाएँ उनके माता-पिता की आत्म-अवधारणाओं का आईना होती हैं।

आपके माता-पिता ने आपको वह सारा प्रेम दिया, जो वे दे सकते थे। उन्होंने कोई प्रेम रोककर नहीं रखा। उनके पास देने के लिए उससे ज़्यादा था ही नहीं। आपको जितना प्रेम मिला, उससे ज़्यादा पाने के लिए आप कुछ नहीं कर सकते थे। आपको जितना मिला है, उनके पास बस उतना ही उपलब्ध था। बच्चे को प्रेम से पूर्ण संतुष्टि महसूस कराने के लिए दूसरी शर्त यह है कि उनके माता-पिता को एक-दूसरे से प्रेम करना चाहिए। बच्चे-प्रेम को सीधे महसूस करके और अपने परिवार में देखकर उसके बारे में सीखते हैं। यह कहा गया है कि कोई आदमी अपने बच्चों के लिए जो सबसे अच्छा काम कर सकता है, वह है उनकी माँ से प्रेम करना... और इसका उलट भी सच है। जब बच्चे बड़े होते समय देखते और अनुभव करते हैं कि

उनके माता-पिता में प्रेम हैं, तो इस बात की काफ़ी संभावना है कि वे सुरक्षा और आत्मविश्वास की भावनाओं के साथ बड़े होंगे।

आप अपने परिवार के संबंधों को देखकर सीखते हैं कि विपरीत लिंग के किसी सदस्य के साथ अपना वयस्क संबंध कैसे बनाएँ। अगर आप ऐसे परिवार में बड़े हुए हैं जिसमें आपको इसका अनुभव नहीं हुआ, तो आप अपने वयस्क जीवन के पहले कुछ वर्षों में ग़लतियाँ करके सीखते हैं कि दूसरे व्यक्ति के साथ कैसे रहा जाए। आजकल कई लोगों का पहला विवाह ''अभ्यास विवाह'' होता है, जिनमें वे सीखते हैं कि विवाहित जीवन में कैसे रहना है। वे सीखते हैं कि वे वैवाहिक साझेदार में क्या चाहते हैं या क्या नहीं चाहते और किस तरह संबंध को सफल बनाया जाए।

बच्चे को पूरी तरह प्रेम का एहसास मिले, इसकी तीसरी शर्त यह है कि अभिभावकों को उससे प्रेम करना चाहिए। यह उन सबसे संवेदनशील विषयों में से एक है, जिनमें किसी वयस्क का पाला पड़ता है। सच्चाई यह है कि बहुत से माता-पिताओं ने हमसे प्यार किया ही नहीं। वे करना तो चाहते थे, उनका ऐसा इरादा तो था और उनकी ऐसी योजना तो थी, लेकिन वे दरअसल इसे कभी नहीं कर पाए। शायद उनके पास समय, भावनात्मक ऊर्जा या दिलचस्पी नहीं थी या शायद उनके माता-पिता या जीवनसाथी के साथ उनके अनसुलझे संघर्ष थे, जिसकी वजह से उनके लिए हमें प्रेम करना संभव नहीं हुआ।

कई माता-पिता अपने बच्चों को बहुत ज़्यादा पसंद नहीं करते। कई बार ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि उन्हें लगता है कि बच्चे की भूमिका उनकी अपेक्षाओं को पूरा करना है। अगर बच्चे का अपना कोई व्यक्तित्व है, तो माता-पिता अक्सर इसे व्यक्तिगत निरादर मान लेते हैं। प्रतिकिया में वे बच्चे की आलोचना करते हैं या अपना प्रेम हटा लेते हैं। अगर वे लंबे समय तक ऐसा करते हैं, तो अंततः इसकी आदत पड़ जाती है। माता-पिता बच्चों से प्रेम करने और उनकी तारीफ़ करने की बजाय उनकी आलोचना करने और बर्दाश्त करने की आदत डाल लेते हैं।

आपके लिए यह जानना महत्वपूर्ण है कि आपके माता-पिता ने प्रेम किया हो या न किया हो, आप मूल्यवान और योग्य व्यक्ति हैं। आपके माता-पिता के प्रेम या उसकी कमी से आपकी निहित संभावनाओं के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता।

माता-पिता जैसे थे, वैसे थे। वे जितना कर सकते थे, उन्होंने किया। कम से कम वे आपको इस दुनिया में लाए और आपको जीने का मौका दिया। आपके माता-पिता में से एक या दोनों ने आपसे ज़रा भी या पर्याप्त प्रेम नहीं किया, यह स्वीकार करना पूर्ण परिपक्वता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

ज़्यादातर वयस्कों को बचपन में ऐसे घर में पाला गया था, जिसमें वे विनाशकारी आलोचना और प्रेम की कमी के शिकार हुए थे। अगर आपके साथ भी यही हुआ था, तो उस वक़्त आप इतने छोटे थे कि जानते ही नहीं थे कि यह क्यों हो रहा है। आप सिर्फ़ उसकी प्रतिक्रिया में यह भीतरी संदेश बना सकते हैं, ''किसी वजह से मेरे मम्मी-डैडी मेरी आलोचना करते हैं और मुझसे प्रेम नहीं करते। चूँकि वे मुझे सबसे अच्छी तरह जानते हैं, इसलिए ऐसा मेरे किसी ग़लत काम के कारण ही होगा।''

विनाशकारी आलोचना और प्रेम की कमी के तालमेल से अपराधबोध (guilt) की नकारात्मक भावना पैदा होती है। अपराधबोध बीसवीं सदी की प्रमुख भावनात्मक समस्या है। यह अधिकांश मानसिक रोगों, दुख और लगभग सभी नकारात्मक भावनाओं की जड़ है। अपराधबोध से ग्रस्त बच्चा महसूस करता है कि वह ज़्यादा लायक नहीं है या बिलकुल बेकार है। विनाशकारी आलोचना और प्रेम की कमी बच्चे के अवचेतन मन में अक्षमता की भावना भर देती है।

अपराधबोध का इस्तेमाल लोग जानते-बूझते हुए दो कारणों से करते हैं : सज़ा और नियंत्रण। किसी दूसरे व्यक्ति को भावनात्मक सज़ा देने के लिए अपराधबोध का इस्तेमाल करना बहुत असरदार होता है। यह नकारात्मक धार्मिक शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा है। कई माता-पिता इसका इस्तेमाल अपने बच्चों को बुरा महसूस कराने, अक्षम और महत्वहीन अनुभव कराने के लिए करते हैं।

अपराधबोध का इस्तेमाल नियंत्रण या शोषण (manipulation) के साधन के रूप में भी किया जाता है। किसी व्यक्ति को अपराधी महसूस कराकर आप उसकी भावनाएँ और व्यवहार नियंत्रित कर सकते हैं। अगर आप उसे पर्याप्त अपराधी महसूस करा सकें, तो आप उससे अपने लिए ऐसे काम करवा सकते हैं, जो वह अपराधबोध की भावनाओं के बिना कभी नहीं करता।

माताएँ अक्सर अपराधबोध के इस्तेमाल में माहिर होती हैं। मेरी माँ तो अपराधबोध के प्रयोग में ब्लेक बेल्ट थी और वे स्थानीय वायएमसीए में कोर्स

सिखाती थीं। मेरी माँ ने व्यवहार के साधन के रूप में अपराधबोध का इस्तेमाल अपनी माँ से सीखा था, जो उन्होंने उनकी माँ से सीखा था और इस तरह यह कार्यक्रम कई पीढ़ियों से चला आ रहा था। पिता भी अपराधबोध का इस्तेमाल करने में अक्सर माहिर होते हैं।

मेरे अलौकिक वृत्ति व आध्यात्मिक प्रवृत्ति

(चाल : रात कली इक...तुम दिल की...) **- आचार्य कनकनन्दी**

धन्य है! मेरा भाव जगा है, आत्मशुद्धि में सतत लगा हूँ।
लौकिक परे आध्यात्मिक हेतु, नवकोटि से सतत लगा हूँ।। (स्थायी)
लौकिक जन से अज्ञान-विपरीत, मेरा है लक्ष्य व साधना
समता-शान्ति-आत्मउन्नति, आत्मज्ञान व आत्म आराधना।
सनम्र सत्यग्राही आत्मविश्वास, उदार युक्त पावन भावना।
स्व-पर-विश्वहित हेतु, चिन्तन, मैत्री प्रमोद कारुण्य साम्य भावना।। (1)
अनेकान्तमय विचार मेरा, स्याद्वादमय मेरा कथन।
आत्मोपलब्धि लक्ष्य है मेरा, समतामय मेरी साधना।।
स्व-पर गुण दोषों से शिक्षा लहूँ, हितग्रहण करूँ अहित त्यागूँ।
स्व-पर-आत्म हित भावना भाऊँ, अन्य के अहित भावना त्यागूँ।।(2)
स्व-शिष्य-भक्तों के दोष दूर हेतु, उनके दोषों को उन्हें बताऊँ।
विश्वहित हेतु समूह दोष बताऊँ, ईर्ष्या घृणा द्वेष स्वार्थ न रखूँ।
अन्य के दोष होने पर भी सत्य, ऐसा सत्य का कथन न करूँ।
'गुणगणकथा दोषवादे च मौनं' गुण कथन करूँ दोष में मौन रहूँ।।(3)
आत्म विश्वास ज्ञान चारित्र बढाऊँ, इस हेतु ही ध्यान-स्वाध्याय करूँ
स्वशुद्धात्मा चिन्तन कथन-लेखन, अध्यापन प्रवचन भी करूँ।
निश्चय से 'मैं' को शुद्धात्मा मानूँ, व्यवहार से 'मैं' को अशुद्ध मानूँ
तन-मन-इन्द्रियों को 'मैं' न मानूँ, साधना हेतु उनकी सुरक्षा करूँ।। (4)
ऐसा ही 'मैं'' अन्य जीवों को मानूँ, हर जीव को जिनेन्द्र मानूँ

बीज में वृक्ष सम जीव ही जिनेन्द्र, आत्मा को ही परमात्मा मानूँ।
ऐसी दृष्टि से ही सभी को देखूँ, चारों ही गति के जीवों को देखूँ
किसी को भी ''मैं'' शत्रु न मानूँ, किसी से भी राग द्वेष मोह न करूँ।। (5)
मेरे ऐसे भाव-व्यवहार-कथन, विपरीत मानते अनेक जन।
उनकी भी मैं मंगल कामना करूँ, अक्षमाभाव न किसी से करूँ।
ऐसी ही ''मैं'' स्व साधना बढ़ाऊँ, जब तक ''मैं'' शुद्ध-बुद्ध न बनूँ।
आत्महित युक्त परहित भी करूँ, 'कनक' स्व आत्मा (मैं) का गौरव करूँ

नन्दौड़ दि. 25.09.2018 प्रातः 6.36
(यह कविता ब्र. रोहित व ब्र. पल्लवी (स्वसंघस्थ) के कारण बनी।)

सन्दर्भ

विजयी निर्णय

खुद को इससे मुक्त करने का चौथा तरीक़ा दूसरों के अपराधबोध पर बातचीत करने से इंकार करना है। दूसरे लोगों के बारे में आलोचना भरी गपशप या ''गंदी अफ़वाहों'' का आदान-प्रदान करने से इंकार करें। ''देखो कितनी बुरी बात है'' जैसी बातचीतों में शामिल न हों। अपनी बातचीत से बुरी बातों और पीठ पीछे की आलोचना को ख़त्म कर लें। याद दखें, आप जिस भी चीज़ के बारे में बात करते और सोचते हैं, उसका आपके अवचेतन मन और व्यक्तित्व पर असर पड़ता है। यह सुनिश्चित करें कि आप दूसरों के बारे में जो कह रहे हों, उसे अपने बारे में भी सच देखना चाहते हों। दूसरों के बारे में इस तरह की बातें बोलें जैसे वे मौजूद हों और आप उन्हें अच्छा महसूस कराना चाहते हों।

क्षमा का नियम

अपराधी भावनाएँ और प्रतिक्रियाएँ ख़त्म करने का पाँचवाँ तरीका सबसे असरदार है। यह लोगों के साथ अद्भुत संबंध बनाने और खुशी, सेहत, दौलत पाने के लिए सिखाया गया शायद सबसे शक्तिशाली और व्यावहारिक सिद्धांत है। इसका जिक्र मैंने पहले भी किया था। यह क्षमा का नियम है।

यह नियम बताता है कि आप मानसिक रूप से उसी हद तक स्वस्थ हैं,

जिस हद तक आप अपने खिलाफ़ हुए ग़लत कामों को खुलकर माफ़ करते और भूल जाते हैं।

क्षमा करने की अक्षमता अपराधबोध, द्वेष और अधिकांश अन्य नकारात्मक भावनाओं की जड़ है। अगर आपको लगता है कि किसी ने आपको चोट पहुँचाई है, तो आप अपने मन में उसके प्रति मनमुटाव और गुस्सा पाल लेते हैं। यह मनोदैहिक रोगों का प्रमुख कारण है। माफ़ी करने की अक्षमता से कई रोग पैदा होते हैं, जिनमें सामान्य सिर दर्द से लेकर हार्ट अटैक और कैंसर तक शामिल हैं।

अपनी संभावनाओं तक पहुँचने के लिए, अपनी संपूर्ण मानसिक क्षमताएँ विकसित करने के लिए और अपनी भावनात्मक तथा आध्यात्मिक ऊर्जाओं को मुक्त करने के लिए आपको हर उस व्यक्ति को पूरी तरह क्षमा कर देना चाहिए, जिसने आपको कभी कोई चोट पहुँचाई है। आपको ''छोड़ देना'' चाहिए और अपने ग़ुस्से तथा द्वेष को छोड़कर दूर चल देना चाहिए। आपको उस दुर्भाग्यशाली अनुभव की क़ीमत बार-बार चुकाने से इंकार कर देना चाहिए। आपमें महान जीवन जीने, अच्छा चरित्र विकसित करने और उत्कृष्ट व्यक्ति बनने की आकांक्षा होनी चाहिए, जो हर नकारात्मक भावना से ऊँचा हो और जो किसी के प्रति द्वेष या ग़ुस्सा न रखता हो।

चूँकि आपका बाहरी संसार आपके सच्चे भीतरी संसार को प्रतिबिंबित करता है, चूँकि आप अपने प्रबल विचारों के अनुरूप लोगों और परिस्थितियों को आकर्षित करते हैं, चूँकि आप वही बन जाते हैं, जिसके बारे में आप सोचते हैं, इसलिए सचमुच खुश, स्वस्थ और पूरी तरह स्वतंत्र होने के लिए क्षमा एक अनिवार्य गुण बन जाता है, जिसे आपको अभ्यास करके विकसित करना होगा।

क्षमा का अभ्यास

अपराधबोध हीनता, अक्षमता, नाक़ाबिलियत, द्वेष और क्रोध की नकारात्मक भावनाओं से मुक्त होने के लिए आपको अपने जीवन में ख़ास तौर पर तीन लोगों को क्षमा करने की ज़रूरत है। जब आप इन लोगों को क्षमा कर देते हैं, तो आप मुक्ति और खुशी की भावना अनुभव करेंगे और आपका जीवन अद्भुत तरीक़ों से संभावनाओं के प्रति खुलने लगेगा।

सबसे पहले तो आपको अपने माता-पिता के क्षमा करना होगा। चाहे वे

जीवित हों, या न हों, आपको आज ही उन्हें हर चीज़ के लिए खुलकर क्षमा कर देना चाहिए, जिसने उन्होंने आपको कभी चोट पहुँचाई हो। हर अन्याय, क्रूरता या असहिष्णुता के काम के लिए उन्हें क्षमा कर दें, जो आपके हिसाब से उन्होंने आपके साथ किया है। आपको बचपन की चोटों से ऊपर उठना होगा और उन्हें मुक्त करना होगा। आपको यह स्वीकार करना होगा कि आपके माता-पिता आपके साथ जितना अच्छे से अच्छा कर सकते थे, उन्होंने किया।

लगभग हर व्यक्ति इस बात पर विचलित और ग़ुस्सा होता है कि उसके एक या दोनों अभिभावकों ने बचपन से लेकर बड़े होने तक उसके साथ कितना ग़लत व्यवहार किया। चालीस-पचास साल के लोग अब भी भावनात्मक रूप से दुखी हैं, क्योंकि उन्होंने अपने माता-पिता को क्षमा नहीं किया है। जीवन भर द्वेष पालना उस चीज़ की बहुत ज़्यादा क़ीमत चुकाना है, जिसके बारे में कुछ नहीं किया जा सकता।

कई मामलों में तो माता-पिता को पता ही नहीं होता कि उन्होंने ऐसा कोई काम किया है, जिसके बारे में आप अब भी विचलित हैं। आम तौर पर उन्हें उसकी कोई याद ही नहीं होती है। अगर आप उन्हें अपनी नाराजी का कारण बताएँ, तो वे अक्सर हैरान होंगे, क्योंकि उन्हें तो वह घटना याद ही नहीं होगी।

आप अपने माता-पिता को तीन तरीकों से क्षमा कर सकते हैं। पहला और सबसे महत्वपूर्ण तरीका है उन्हें अपने लिए क्षमा करना। जब भी आप उनसे मिली चोट के बारे में सोचें, तो विस्थापन के नियम का इस्तेमाल करें और उस विचार की जगह दूसरे विचार को रखकर कहें, ''मँ उन्हें हर चीज़ के लिए क्षमा करता हूँ मै उन्हें हर चीज़ के लिए क्षमा करता हूँ।''

हर बार जब आपको वह चोट वाला अनुभव याद आए, तो तत्काल यह कहकर उसे ख़त्म कर दें, ''मैं उन्हें हर चीज़ के लिए क्षमा करता हूँ।'' अगर आप घटना याद आने पर उन्हें हर बार क्षमा करते रहेंगे, तो कुछ समय बाद आप उस अनुभव के बारे में बग़ैर किसी नकारात्मक भावना के सोच सकेंगे। आख़िरकार आप उसे पूरी तरह भूल जाएँगे। आप मुक्त हो जाएँगे।

अपने माता-पिता को क्षमा करने का दूसरा तरीक़ा उनसे मिलना या उन्हें फ़ोन करना है। हमारे सेमिनारों में आने वाले कई लोग जाकर अपने माता-पिता से मिलते हैं और बातचीत करते हैं कि उन्होंने क्या किया था और वे अब भी क्यों ग़ुस्सा है।

फिर से अपने माता-पिता से कहते थे, ''मैं बस आपको बताना चाहता हूँ कि मैं आपको हर उस ग़लती के लिए क्षमा करता हूँ, जो आपने मुझे पालते समय की थी और मैं आपसे प्यार करता हूँ। ''उन्हें क्षमा करके आप उन्हें आज़ाद कर देते हैं और ख़ुद को भी आज़ाद कर लेते हैं।

अपने माता-पिता को क्षमा करने का तीसरा तरीक़ा उन्हें चिट्ठी लिखना है। इस चिट्ठी में आप उनकी हर ग़लती के लिए उन्हें क्षमा करें। इसे आप जितने विस्तार से चाहें, लिख सकते हैं। कम आत्मसम्मान वाले कई माता-पिता उम्मीद करते हैँ कि किसी दिन उनके बच्चे उन्हें ग़लतियों के लिए क्षमा कर देंगे, जिन्हें स्वीकारने की उनमें शक्ति नहीं है।

जब आप अपने माता-पिता को पूरी तरह क्षमा कर देते हैं, तभी आप सचमुच और पूरी तरह वयस्क बन पाते हैं। तब तक आप भीतर से बच्चे बने रहते हैं। तब तक आप भावनात्मक रूप से उन पर निर्भर बने रहते हैं। जब आप बचपन के अप्रिय अनुभवों को छोड़ देते हैं, तब कहीं जाकर आप अपने माता-पिता से परिपक्व संबंध बना सकते हैं। ज़्यादातर लोगों का अपने माता-पिता के साथ सर्वश्रेष्ठ समय उस दिन शुरू होता है, जब वे बचपन की नकारात्मक बातों को पीछे छोड़ देते है और अपने माता-पिता को क्षमा कर देते हैं।

दूसरा व्यक्ति जिसे आपको क्षमा करना होगा, वह है अन्य कोई भी व्यक्ति। आपको बिना शर्त अपने जीवन के हर व्यक्ति को क्षमा करना होगा, जिसने आपको किसी भी तरीक़े से कोई भी चोट पहुँचाई है। आपको हर बुरी, मूर्खतापूर्ण, आलोचनात्मक और क्रूर बात को क्षमा करना होगा, जो किसी ने आपके बारे में कभी कही या की है। इस बारे में एक भी अपवाद नहीं होना चाहिए। अगर आप एक भी व्यक्ति को क्षमा करने से इंकार कर देते हैं, तो यह आपकी भावी खुशी को कम करने के लिए या शायद नष्ट करने के लिए काफ़ी है।

आपको उस व्यक्ति को पसंद करने की ज़रूरत नहीं है। आपको तो बस उसे क्षमा करने के ज़रूरत है। क्षमा पूर्णतः स्वार्थपूर्ण काम है। इसका दूसरे व्यक्ति से कोई लेना देना नहीं है। इसका लेना-देना तो आपकी मानसिक शांति, आपकी खुशी आपकी सफलता और आपके भविष्य से है। शायद दुनिया में आपका सबसे मूर्खतापूर्ण काम यह होता है कि आप किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति ग़ुस्सा या द्वेष रखते हैं, जिसे

आपकी ज़रा भी परवाह नहीं है। जैसे किसी ने कहा है, ''मैं कोई द्वेष नहीं पालता, क्योंकि जब आप द्वेष पालते हैं, तो वे नाचते-गाते हैं।''

स्थिति चाहे जो हो, आप शायद किसी न किसी तरह से उसके लिए ज़िम्मेदार हैं। चाहे वह कोई व्यवसाय संबंधी सौदा हो, निवेश हो, नौकरी हो या संबंध हो आपने विकल्प चुने और निर्णय लिए, तभी यह संभव हुआ। आपकी सक्रिय सहभागिता के बिना यह शायद हो ही नहीं सकता था, इसलिए आप इसे रोक सकते थे। आप जिम्मेदार थे। आप विकल्प चुनने के लिए स्वतंत्र थे और दुर्भाग्य से आपने ग़लत चुनाव किया। इसे जाने दें।

भले ही आप इस बारे में कुछ नहीं कर सकते थे, भले ही आपकी कोई ग़लती नहीं थी, भले ही आप पूरी तरह निष्क्रिय थे, लेकिन फिर भी आप इस बात के लिए तो जिम्मेदार हैं कि आप किस तरह प्रतिक्रिया करते हैं। आप अपने और अपनी भावनाओं के प्रभारी हैं। आप यह फ़ैसला करने के लिए स्वतंत्र हैं कि आप इस पल के बाद क्या करते हैं। सबसे अच्छी नीति क्षमा करना है।

पत्र

अगर आप बुरे संबंध या बुरे वैवाहिक जीवन का दुखद अनुभव झेल चुके हों, और अब तक उससे न उबर पाए हों, तो इस तकनीक का इस्तेमाल करके आप मुक्त हो सकते हैं। इसे ''पत्र'' विधि कहा जाता है। इसे अब कई जगहों पर सिखाया जाने लगा है और यह अविश्वसनीय रूप से शक्तिशाली तथा मुक्तिदायक है।

आप सामने वाले को एक पत्र लिखते है। पत्र के तीन हिस्से होते हैं, जिन्हें आप जितना लंबा या छोटा रखना चाहें रख सकते हैं। पहले हिस्सें में आप कहते हैं, ''मैं हमारे संबंध के लिए पूरी तरह ज़िम्मेदारी स्वीकार करता हूँ। मैंने यह संबंध खुद चुना था और मैं कोई बहाना नहीं बनाना चाहता।'' आप यह ज़िक्र नहीं करते कि आप कितने मासूम और दुखी हैं, जैसा शायद आपने अपने अतीत में किया हो।

पत्र के दूसरे हिस्से में आप लिखते हैं, ''मैं आपकी हर उस चीज़ के लिए क्षमा करता हूँ जो आपने मुझे चोट पहुँचाने के लिए की है।'' कई बार यह एक अच्छा विचार होता है कि आप उन सभी चीज़ों को स्पष्टता से गिना दें, जिनके लिए आपने सामने वाले को क्षमा किया है। मैं एक महिला को जानता हूँ, जिसने इस

तकनीक का इस्तेमाल करते हुए अपने पूर्व-पति को क्षमा करने के लिए आठ पन्नों की सूची बनाई।

पत्र के आखिरी हिस्से में आप अंत में यह कहते हैं, ''मैं उम्मीद करता हूँ कि आपका कल्याण हो।'' फिर आप पत्र को लिफ़ाफे में डालकर पता लिखते हैं, टिकट चिपकाते हैं और डाक के डिब्बे में डाल देते हैं।

जिस पल आप लिफ़ाफा डाक के डिब्बे में छोड़ते हैं, उसी पल आपको मुक्ति और आनंद का ऐसा जबर्दस्त एहसास होगा, जिसकी आप इस वक़्त कल्पना भी नहीं कर सकते। उस पल संबंध ख़त्म हो जाएगा और आप नया भावनात्मक जीवन जीने के लिए तैयार होंगे। बहरहाल, उस पल आप अनसुलझे क्रोध और द्वेष के दलदल में फँसे हुए थे, जिसके रूमानी संबंध के साथ जुड़ जाने पर अंजाम तबाही के सिवाय कुछ नहीं होता।

हमारे सेमिनार में आने वाले बिज़नेसमैन ने ''पत्र'' और क्षमा के बारे में मुझे एक उल्लेखनीय आपबीती घटना बताई। वह विवाहित था और उसके चार बच्चे थे। उसने और उसके पार्टनर ने दस वर्ष की मेहनत के बाद सफल बिज़नेस खड़ा किया था। एक दिन उसका पार्टनर ऑफिस नहीं आया। उस रात जब वह घर पहुँचा, तो उसने देखा कि उसकी पत्नी भी ग़ायब है। उसे बाद में पता चला कि उसकी पत्नी और उसके पार्टनर के बीच कुछ समय से विवाहेतर प्रेम-प्रसंग चल रहा था। वे दोनों मिलकर यह साज़िश कर रहे थे कि कंपनी से लाखों डॉलर का गबन करके एक साथ कहीं भाग जाएँ। और अब वे भाग गए थे। बेचारे बिज़नेसमैन को लगा कि उसकी पूरी जिंदगी तबाह हो गई है। अब उसके पास चार बच्चे बचे थे...और गुस्से तथा धोखाधड़ी का अविश्वसनीय एहसास भी।

चार साल तक वह कटुता और द्वेष से पगलाता रहा। उसकी पत्नी और पार्टनर दूसरे देश में जाकर रहने लगे थे और क़ानूनी रूप से उन्हें सज़ा दिलवाना बहुत महँगा काम था। उसने अपना पूरा ध्यान दिवालिएपन से बचने पर केंद्रित कर लिया। बच्चों के साथ उसके संबंध ख़राब होते चले गए। दिन-रात वह इसी बारे में सोचता था कि उसके साथ कितना बुरा, अन्यापूर्ण और धोखाधड़ी भरा सलूक किया गया है।

हमारे सेमिनार के पहले दिन जब हमने क्षमा की अवधारणा स्पष्ट की, तो वह बिलकुल ख़ामोश बैठा रहा। शाम को वह एक भी शब्द बोले बिना उठकर चला गया।

बहरहाल, अगले दिन जब वह कमरे में वापस लौटा, तो एक अलग ही इंसान लग रहा था। वह शांत और मुस्करा रहा था। उसने बाक़ी लोगों का अभिवादन किया और अपना परिचय दिया। उसने मुझे अकेले में बताया कि उसने पिछली रात तीन घंटे तक बैठकर पत्र लिखा। फिर वह उसे लेटर बॉक्स में डालने के लिए कई ब्लॉक दूर गया। उसने कहा कि इसका वही असर हुआ, जिसका वर्णन मैंने अपने सेमिनार में किया था। जिस पल उसने वह पत्र लेटर बॉक्स में डाला, उसे महसूस हुआ कि वह पूरी तरह अलग व्यक्ति बन गया है।

सेमिनार के बाद वह चार साल में पहली बार डेटिंग पर गया- एक महिला के साथ, जिसे वह क्लास में मिला था। बाद में उसने मुझे बताया कि बच्चों के साथ उसके संबंधों का भी कायाकल्प हो गया है। उन सभी ने माँ को छोड़कर जाने के लिए क्षमा कर दिया और यह संकल्प किया कि वे बाक़ी जिंदगी मिलकर गुजारेंगे। वे बरसों बाद पहली बार खुश थे। तीसरा व्यक्ति जिसे आपको क्षमा करना होगा, वो हैं आप खुद। आपको हर मूर्खतापूर्ण चोट पहुँचाने वाले चीज़ के लिए खुद को क्षमा करना होगा, जो आपने कभी कही या की है।

याद रखें आप आदर्श नहीं हैं, गलतियाँ करते हैं। बड़े होते समय और परिपक्व होते समय आप बहुत सारी मूर्खतापूर्ण बातें कहते और करते हैं। अगर आपको दोबारा वही काम करने का अवसर मिले, तो आप उसे अलग तरीक़े से करेंगे। लेकिन पुरानी ग़लतियों पर पश्चाताप और अफ़सोस करने से कोई फ़ायदा नहीं होता। यह कमज़ोर चरित्र की निशानी है। पश्चाताप का इस्तेमाल अक्सर आगे न बढ़ने के बहाने के रूप में किया जाता है। सभी समझदार और परिपक्व लोगों ने मूर्खतापूर्ण ग़लतियाँ की है। इसी तरह वे समझदार और परिपक्व बने हैं। और अब आपको हर ग़लती के लिए खुद को क्षमा करना होगा।

क्षमा मानसिक और आध्यात्मिक विकास के साम्राज्य की कुंजी है । जब आप पूर्ण क्षमावान् व्यक्ति बनने का अभ्यास करते हैं तो आप इस धरती पर रहने वाले महानतम लोगों के चारित्रिक गुणों का अनुसरण कर रहे होते हैं। आप ख़ुद को देवदूतों की जमात में शामिल कर रहे है। क्षमा आपके अवचेतन मन में नकारात्मक भावनाएँ पैदा करने वाले अपराधबोध, क्रोध और द्वेष के संगृहीत अवशेष को धो डालने की प्रक्रिया शुरू करती है। हर चीज़ के लिए हर एक को उदारता से क्षमा करने का

नियमित अभ्यास आपको ज्यादा शांत, दयालु, करुण और आशावादी बना देगा।

आत्मा के लिए अच्छा

आखिरकार, अगर आपने किसी दूसरे को चोट पहुँचाने के लिए कुछ किया हो और आपको इसके बारे में अफ़सोस हो, तो जाकर क्षमा माँग लें। कहें, ''मुझे अफ़सोस है।'' प्रायश्चित आत्म के लिए अच्छा होता है। इससे अपराधबोध और नाक़ाबलियत की भावनाओं से छुटकारा मिलता है, जो अवश्यंभावी हैं, क्योंकि आपने एक ऐसी चीज़ की है, जो आपके सर्वोच्च आदर्शों के सामंजस्य में नहीं है।

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि सामने वाला कैसे प्रतिक्रिया करता है। फर्क तो इससे पड़ता है कि आपमें अपने कार्यों की जिम्मेदारी लेने, क्षमा माँगने और अफ़सोस करने का चारित्रिक बल तथा साहस है। फिर आप जिंदगी में आगे बढ़ सकते हैं और सामने वाले व्यक्ति को उसकी जिंदगी में आगे बढ़ने दे सकते हैं।

सिद्धांत को अभ्यास में बदलना

यहाँ एक अभ्यास है, : पहली बात, एक कागज़ उठाकर उस व्यक्ति की सूची बनाएँ। जिसके बारे में आप सोचते हैं कि उसने आपको किसी तरीक़े से चोट पहुँचाई है। दूसरी बात, सूची को पढ़े, नाम पढ़े, सोचें और याद करें कि क्या हुआ था और फिर कहें, ''मैं उस हर चीज़ के लिए क्षमा करता हूँ; मैं अब इसे जाने देता हूँ।'' अपनी सूची के हर व्यक्ति के लिए इन शब्दों को दो-तीन बार दोहराएँ । फिर उस सूची को दूर रख दें। इसके बाद जब भी आप उस व्यक्ति या स्थिति के बारे में सोचें,तो तत्काल उससे जुड़े नकारात्मक भाव को यह कहकर रद्द कर लें, मैं उसे हर चीज़ के लिए क्षमा करता हूँ, मैं उसे हर चीज़ के लिए क्षमा करता हूँ,'' और अपने दिमाग़ को किसी दूसरी जगह व्यस्त कर लें।

जब आप आख़िरकार क्षमा कर देते हैं और छोड़ देते हैं, आपको मुक्ति का एहसास होता है। क्षमा ही मन की शांति के साम्राज्य की कुंजी है। क्षमा आपके द्वारा किया जाने वाला सबसे मुश्किल काम है...और सबसे महत्वपूर्ण भी

(विजयी निर्णय, ब्रायन ट्रेसी)

मोहात्मक ''मैं''-''मेरा'' व आध्यात्मिक ''मैं'' ''मेरा''

(मोही कुज्ञानी के ''मैं'' ''मेरा'' से पूर्ण विपरीत आध्यात्मिक 'मैं' 'मेरा')

(चाल : 1. बता मेरे यार सुदामा रे .... 2. सायोनारा ... 3. भातुकली...)

क्या तू 'मैं' 'मैं' करता रे! तू तो 'मैं' को जाना ही नहीं।
'मेरा' 'मेरा' तू क्या करता रे! तू तो 'मेरा' को जाना ही नहीं।। (ध्रुव)

'मैं' को जानना ही रे! अनादि से किया ही नहीं।
'मैं' को मानना ही रे! सम्यग्दृष्टि बनोंगे तू ही।।
तू तो चेतन आत्मा रे! तन-मन-इन्द्रिय नहीं।
ऐसा जब तू जानोगे रे! तब ही जानोगे 'मैं' को सही।।
'मेरा' ही तेरा स्वगुण रे! आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र।
अनन्तसुख वीर्यादि गुण! तुझ में अविनाभाव में रहे।।
इससे अतिरिक्त सभी ही! नहीं है तेरा कोई भी।
तन-मन-इन्द्रिय भी न तेरे! अन्य कोई तेरे न होंगे।।
तन तो रज-वीर्य से जात! हड्डी-माँस-चर्म व रक्त।
भोजन-पानी से पोषित! ये सभी तो जड़मय तत्त्व।।
तथाहि इन्द्रियाँ व मन भी! जड़ भौतिक से निर्मित रे।
आयु भी कर्म जनीत रे! ये सभी न तेरे स्वरूप रे।।
माता-पिता भाई बन्धु भी! पत्नी या पति-पुत्र-पुत्री।
शत्रु-मित्रादि समाज जन भी! नहीं तेरे-निज स्वभाव।
जब ये तरे नहीं होते! धन-धान्य-मकान-यान (वाहन)।
स्पष्ट से पृथक् निर्जीव! तेरे कैसे हो सकते मूढ।।
हिन्दु कुज्ञान मोहासक्त तू! न जानता सत्य असत्य।
हिताहित विवेक हीन तू! 'मैं' 'मेरा' में हो रहे आसक्त।।
अभी तू जागो रे! भव्य! मोहमद्यनाश को त्यज।
पान करो स्व अमृत रस! जिससे बनोगे शुद्ध-बुद्ध।।
इस हेतु ही 'कनक सूरी'! करे ध्यान आत्मिक 'मैं' मेरा।
स्व उपलब्धि हेतु ही! चाहे 'मैं' व 'मेरा' ही।।